स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAAH-114 (N)

प्राचीन भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख

Ancient Indian Palaeography and Epigraphy

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013
www.uprtou.ac.in
टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

सन्देश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति श्रीमती आनंदीबेन पटेल जी की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। कोविड-19 संक्रमण काल ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जबकि कोविड-19 के संक्रमण काल में तथा कोविड-19 के बाद भी मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश, परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, बेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी है। वर्तमान की विषम परिस्थितियों के दृष्टिगत विश्वविद्यालय ने मुख्यमंत्री तथा प्रधानमंत्री राहत कोष में अंशदान देने का भी प्रयास किया है।

भौतिक अधिसंरचना की दृष्टि से विश्वविद्यालय निजी स्रोतों से ही निरन्तर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा है। विश्वविद्यालय के शिक्षकों, परामर्शदाताओं, क्षेत्रीय समन्वयकगण, अध्ययन केन्द्र समन्वयकगण तथा कर्मचारियों की एकता व कर्मठता ही वह ऊर्जा पिण्ड है जिसके बल पर विश्वविद्यालय जीवंत व प्रकाशवान है। मुझे विश्वास है कि इसी ऊर्जा पिण्ड की सहायता से यह विश्वविद्यालय देश, प्रदेश तथा समाज को अपनी सेवाओं व योगदान प्रदान कर और अधिक समृद्ध, सुदृढ़ और गौरवशाली बनाने में अपनी भूमिका अदा कर सकेगा। मैं समस्त विश्वविद्यालय परिवार के प्रति आदर व आभार व्यक्त करती हूँ।

प्रो. सीमा सिंह
कुलपति

MAAH-114N

प्राचीन भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख

Ancient Indian Palaeography and Epigraphy

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई	पाठ्यक्रम	पृ.
इकाई 1.	पुरालिपि : अध्ययन एवं महत्व	3
इकाई 2.	प्राचीन भारत में लेखन की प्राचीनता एवं उत्पत्ति	7
इकाई 3.	सैन्धव लिपि–प्रकृति एवं इसके लिपयांतरण की समस्या	22
इकाई 4.	ब्राह्मी लिपि का उद्भव एवं विकास	32
इकाई 5.	खरोष्ठी लिपि का उद्भव एवं विकास	46
इकाई 6.	मौर्य एवं शुंग कालीन ब्राह्मी लिपि की विशेषताएं	53
इकाई 7.	कुषाण एवं गुप्त कालीन ब्राह्मी लिपि की विशेषताएं	62
इकाई 8.	अभिलेखों के प्रकार एवं महत्व, अभिलेखीय साक्ष्य : इसका महत्व एवं सीमाएं	68
इकाई 9.	अशोक का लघु स्तम्भ लेख (रुम्मिनदेई)	95
इकाई10.	पिपरहवा बौद्धपत्र अभिलेख	100
इकाई11.	सौहगौरा अभिलेख	106
इकाई12.	हेलियोडोरस का बेसनगर स्तम्भ अभिलेख	113
इकाई13.	खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख	124
इकाई14.	हुविष्क का मथुरा प्रस्तर अभिलेख	139
इकाई15.	समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख (प्रयाग प्रशस्ति)	146
	छायाचित्र	147

MAAH-114 N

प्राचीन भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख

(Ancient Indian Palaeography and Epigraphy)

परामर्श समिति

प्रो.सीमा सिंह,	कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.जे.एन.पाल	पूर्व आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.हर्ष कुमार	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.राजकुमार गुप्ता	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, प्रो.राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यलय,प्रयागराज
डॉ.सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

लेखक

डॉ.नितेश कुमार मिश्र — वरिष्ठ सहायक आचार्य
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला
पं..रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़ (इकाई 1–15)

सम्पादक

प्रो.हर्ष कुमार — आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ.सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2023

ISBN : 978-81-19530-29-8 **November -2023 (मुद्रित)**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेष राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार सिंह उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2023

मुद्रकः– चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज

इकाई 1 : पुरालिपि, अध्ययन एवं महत्व

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पुरालिपि विद्या का महत्व

1.4 प्राचीन स्रोतों के अध्ययन में पुरालिपि शास्त्र का महत्व

1.4.1 अभिलेखों का अध्ययन

1.4.2 साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन

1.5 सारांश

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.7 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास के स्रोतों के रूप में अभिलेखों का विशेष महत्व है। ये अभिलेख सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैले हुए है, जिनका साक्ष्य 3 सदी ई.पू. से आरंभ होता है। ये अभिलेख विभिन्नन कालों में अलग–अलग भाषा व अलग–अलग लिपियों में उत्कीर्ण किये गए हैं। भारत के इतिहास के अध्ययन के लिए इन अभिलेखों का अध्ययन आवश्यक है। ऐसे में इन्हें पढ़ने के लिए प्राचीन भाषाओं व प्राचीन लिपियों का ज्ञान आवश्यक है जिसका अध्ययन आगे करेंगे।

पुरालिपि दो शब्दों से मिलकर बना है "पुरा" एवं "लिपि", पुरा का अर्थ होता है प्राचीन तथा लिपि का अर्थ होता है लिखावट अर्थात अतः पुरालिपि का अर्थ होता है प्राचीन लिपि एवं लेखों का अध्ययन करना पुरालिपि अध्ययन या पुरालिपि शास्त्र **[Greek word Epigraphy& Epi (on or upon) + graphie (write)]** कहलाता है। इसके अंतर्गत लेखन कला की प्राचीनता, उत्पत्ति, लिपियों का विकास एवं उसके विभिन्नन शैलियों का अध्ययन, विभिन्न काल के प्राचीन लिपि सामग्रियों को पढ़ना, समझना, उनके अर्थ को परिभाषित करना, उनके काल का अध्ययन आदि किया जाता है। प्राचीन लिपियों का अध्ययन करने वालों को पुरालिपिशास्त्री (Epigraphist) कहा जाता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य पुरालिपि विद्या की परिभाषा तथा उसके महत्व का अध्ययन करना है।

1.3 पुरालिपि विद्या का महत्व

पुरालिपि अध्ययन का इतिहास के अध्ययन में विशेष महत्व है। इतिहास के अध्ययन के लिए हमें मुख्यतः तीन स्रोत प्राप्त होते है –

1. पुरातात्विक अवशेष।
2. साहित्यिक स्रोत।
3. विदेशी यात्रियों के विवरण।

कुछ विद्वान यात्रा विवरणों को साहित्यिक स्रोतों के अंतर्गत रखते हैं। इस आधार पर इतिहास के स्रोतों को मुख्यतः दो स्रोतों से प्राप्त होता है –

1. पुरातात्विक।
2. साहित्यिक।

इसी प्रकार साहित्यिक स्रोतों के अंतर्गत दो प्रकार के साक्ष्य प्राप्त होते हैं–

1. भारतीय साहित्यिक स्रोत (ब्राह्मण साहित्य, बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य व लौकिक साहित्य)
2. विदेशी यात्रियों के यात्रा विवरण तथा विदेशी स्रोत (रोमन, चीनी व अरबी स्रोत)

1.4 प्राचीन स्रोतों के अध्ययन में पुरालिपि शास्त्र का महत्व

1.4.1 अभिलेखों का अध्ययन

पुरातात्विक अभिलेखीय साक्ष्यों में सबसे अधिक महत्व प्रस्तर अभिलेख, गुहा अभिलेख, स्तम्भ अभिलेख, ताम्रपत्र, मुद्रा व सिक्के तथा प्रतिमाओं के अभिलेख का है। इन अभिलेखों के अध्ययन से हमें इतिहास निर्माण मे विशेष सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए मध्य एशिया से प्राप्त 1400 ई.पू. के **बोगाजकोई** अभिलेख में हत्ती नरेश **सप्पीलूलयुमा** तथा **मित्तानि** नरेश मतिवजा के बीच संधि का उल्लेख मिलता है जिसके साक्षी के रूप में वैदिक

देवता इन्द्र, वरुण, मित्र तथा नासत्य (अश्विनी कुमार) आदि का उल्लेख किया गया है। इस अभिलेख की सहायता से **ऋग्वेद** की तिथि ज्ञात करने में सहायता मिलती है। मौर्य शासक अशोक के बारे में जानकारी उसके अभिलेखों से प्राप्त होती है। कलिंग नरेश खारवेल के इतिहास का एक मात्र स्रोत उसका **हाथीगुम्फा अभिलेख** है। इसी प्रकार विभिन्नन कालों में विभिन्नन शासकों द्वारा उत्कीर्ण अभिलेख हमें उनके तथा तत्कालीन इतिहास की जानकारी देती है। मुहरों व मुद्राओं का भी विशेष महत्व है। वैसे तो भारतीय इतिहास में हमें अभिलिखित मुहरों व लेखन कला के प्रमाण सिंधु–सरस्वती सभ्यता से मिलने लगते हैं किन्तु सैन्धव लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। अतः पढ़ने योग्य मुहर व मुद्राएं लगभग 5–6 सदी ई.पू.– महाजनपद काल के समय प्राप्त होते हैं जिनमें विभिन्नन जनपदों, गणराज्यों व सम्राज्यों की मुद्राएं प्राप्त होती है, जिनमें उनके शासक, जनपद अथवा राज्य से जुड़ी जानकारियाँ अभिलिखित होती है। इसके बाद लगातार हमें कई राजवंशों द्वारा जारी किए गए सिक्कों, अभिलेखों व ताम्रपत्रों में प्राचीन लिपियों इतिहास के स्रोत के रूप में प्राप्त होते हैं, इनमें इंडो–ग्रीक, सातवाहन, शुंग, कुषाण, शक, गुप्त, चालुक्य आदि अनेक राजवंश रहे हैं।

इन सभी के काल में अलग अलग लिपियों व उनकी शैलियों का महत्व तथा उपयोग हुआ तथा उनका विकास हुआ जिसका अध्ययन आवश्यक है। इन सभी अभिलेखीय साक्ष्यों से प्राप्त लिपियों को पढ़ने के लिए पुरालिपि शास्त्र का ज्ञान होना अति आवश्यक है। बिना इन प्राप्त पुरातात्विक अभिलेखीय साक्ष्यों के अध्ययन के हम प्राचीन इतिहास का निर्माण नहीं कर सकते।

1.4.2 साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन

यद्यपि साहित्यिक स्रोत पूर्ण रूप से विश्वसनीय नहीं माने जाते, इसमें कल्पना, अतिरंजना व अतिशयोक्ति के भाव भी दिखते हैं, किन्तु इतिहास के अध्ययन में इनका विशेष महत्व है। प्राचीन काल में रचित विभिन्नन साहित्यों की रचना उस काल मे उपयोग में रही लिपियों व भाषाओं में हुई थी। इनकी कई प्रतियां व पाण्डुलिपियाँ आज भी विभिन्नन मठ, मंदिरों व विहारों से प्राप्त होती रहती हैं, जिनमें तात्कालिक इतिहास के बारे में जानकारियाँ मिलती है। उदाहरण के लिए मौर्यकालीन राज्यव्यवस्था के बारे में हमें जानकारी प्रसिद्ध ग्रंथ अर्थशास्त्र से प्राप्त होती है जिसके रचनाकार प्रथम मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु व महामात्य आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य/कौटिल्य) को माना जाता है। यह ग्रंथ लुप्त हो चुका था किन्तु ब्रिटिश काल में भट्टस्वामी के अपूर्ण भाष्य की एक पांडुलिपि 1904–5ई में तंजौर के एक पं.डित ने मैसूर राज्य पुस्तकालय में जमा की जिसके

देवता इन्द्र, वरुण, मित्र तथा नासत्य (अश्विनी कुमार) आदि का उल्लेख किया गया है। इस अभिलेख की सहायता से **ऋग्वेद** की तिथि ज्ञात करने में सहायता मिलती है। मौर्य शासक अशोक के बारे में जानकारी उसके अभिलेखों से प्राप्त होती है। कलिंग नरेश खारवेल के इतिहास का एक मात्र स्रोत उसका **हाथीगुम्फा अभिलेख** है। इसी प्रकार विभिन्नन कालों में विभिन्नन शासकों द्वारा उत्कीर्ण अभिलेख हमें उनके तथा तत्कालीन इतिहास की जानकारी देती है। मुहरों व मुद्राओं का भी विशेष महत्व है। वैसे तो भारतीय इतिहास में हमें अभिलिखित मुहरों व लेखन कला के प्रमाण सिंधु–सरस्वती सभ्यता से मिलने लगते हैं किन्तु सैन्धव लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। अतः पढ़ने योग्य मुहर व मुद्राएं लगभग 5–6 सदी ई.पू.– महाजनपद काल के समय प्राप्त होते हैं जिनमें विभिन्नन जनपदों, गणराज्यों व सम्राज्यों की मुद्राएं प्राप्त होती है, जिनमें उनके शासक, जनपद अथवा राज्य से जुड़ी जानकारियाँ अभिलिखित होती है। इसके बाद लगातार हमें कई राजवंशों द्वारा जारी किए गए सिक्कों, अभिलेखों व ताम्रपत्रों में प्राचीन लिपियों इतिहास के स्रोत के रूप में प्राप्त होते हैं, इनमें इंडो–ग्रीक, सातवाहन, शुंग, कुषाण, शक, गुप्त, चालुक्य आदि अनेक राजवंश रहे हैं।

इन सभी के काल में अलग अलग लिपियों व उनकी शैलियों का महत्व तथा उपयोग हुआ तथा उनका विकास हुआ जिसका अध्ययन आवश्यक है। इन सभी अभिलेखीय साक्ष्यों से प्राप्त लिपियों को पढ़ने के लिए पुरालिपि शास्त्र का ज्ञान होना अति आवश्यक है। बिना इन प्राप्त पुरातात्विक अभिलेखीय साक्ष्यों के अध्ययन के हम प्राचीन इतिहास का निर्माण नहीं कर सकते।

1.4.2 साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन

यद्यपि साहित्यिक स्रोत पूर्ण रूप से विश्वसनीय नहीं माने जाते, इसमें कल्पना, अतिरंजना व अतिशयोक्ति के भाव भी दिखते हैं, किन्तु इतिहास के अध्ययन में इनका विशेष महत्व है। प्राचीन काल में रचित विभिन्नन साहित्यों की रचना उस काल मे उपयोग में रही लिपियों व भाषाओं में हुई थी। इनकी कई प्रतियां व पाण्डुलिपियाँ आज भी विभिन्नन मठ, मंदिरों व विहारों से प्राप्त होती रहती हैं, जिनमें तात्कालिक इतिहास के बारे में जानकारियाँ मिलती है। उदाहरण के लिए मौर्यकालीन राज्यव्यवस्था के बारे में हमें जानकारी प्रसिद्ध ग्रंथ अर्थशास्त्र से प्राप्त होती है जिसके रचनाकार प्रथम मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु व महामात्य आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य/कौटिल्य) को माना जाता है। यह ग्रंथ लुप्त हो चुका था किन्तु ब्रिटिश काल में भट्टस्वामी के अपूर्ण भाष्य की एक पांडुलिपि 1904–5ई में तंजौर के एक पं.डित ने मैसूर राज्य पुस्तकालय में जमा की जिसके

भाषांतर का प्रकाशन 1905ई. में इंडियन एंटिक्वेरी तथा मैसूर रिव्यू (1906–09ई.) में हुआ कश्मीर के इतिहास पर रचित कल्हण की राजतरंगिणी, बाणभट्ट का हर्षचरित आदि अनेक प्राचीन ब्राह्मण, बौद्ध व जैन पाण्डुलिपियों का अध्ययन व उनका भाषांतर भी इसी प्रकारकिया गया तथा इतिहास के प्रमुख स्रोतों के रूप में उनका उपयोग किया जाता है। यह सब बिना भाषा व लिपि के ज्ञान के नहीं हो सकता क्योंकि प्राचीन पांडुलिपियों व साहित्यों के भाषांतर के लिए सबसे पहले उनकी लिपि को पढ़ना आना आवश्यक है।

1.5 सारांश

लेखन कला मानव सभ्यता के विकासक्रम में सबसे महत्वपूर्ण आविष्कारों में से एक है, जिसके बाद मानव ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में अपना इतिहास संकलित किया। सम्पूर्ण विश्व में लेखन की प्राचीनता अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग काल तक जाती है। प्राचीन मानवों व सभ्यताओं के अध्ययन के लिए, उनके इतिहास का अध्ययन करने के साधन के रूप में जिन दो प्रमुख स्रोतों का अध्ययन किया जाता है उसमें एक है पुरातत्व (पुरावशेष, मुद्राएं, जीवाश्म आदि) व दूसरा है लिखित स्रोत (अभिलखिय व साहित्यिक स्रोत)। लिखित स्रोतों के अध्ययन के लिए लेखन व पुरालिपि विद्या का ज्ञान होना आवश्यक है। लेखनकला व उसके विकास का अध्ययन करना ही पुरालिपि शास्त्र कहलाता है। अतः हम यह कह सकते हैं की वह विद्या जिसमें प्राचीन भारत के अभिलेखों की लिपियों व अभिलेख लिखने की प्रक्रिया, उनके विषय व उनके उद्देश्यों तथा उनके माध्यम से इतिहास का अध्ययन करना पुरालिपि व पुरालेख विद्या कहलाती है।

1.6 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन – डॉ.शिवस्वरुप सहाय,
2. भारतीय पुरालिपि – डॉ. राजबलीपाण्डेय

1.7 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. पुरालिपिशास्त्र से क्या तात्पर्य है ?
2. पुराभिलेख विद्या क्या है ?
3. पुरालिपि विद्या का क्या महत्व है ?
4. प्राचीन लिपियों को पढ़ने की विद्या क्या कहलाती है ?

इकाई 2 : प्राचीन भारत में लेखन की प्राचीनता एवं उत्पत्ति

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 लेखन की प्राचीनता

2.4 लेखन कला का उद्भव

2.4.1 विदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

2.4.2 भारतीय उत्पत्ति का सिद्धांत

6.2.1 परंपरिक एवं अनुश्रौतिक प्रमाण

6.2.2 विदेशी अनुश्रुतियों के प्रमाण

2.5 साहित्यिक स्रोत

2.6 पुरातात्विक स्रोत

2.7 सारांश

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

लेखन कला मानव के विकास क्रम के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। लेखन के माध्यम से ही मानव ने अपने ज्ञान–विज्ञान व तकनीक की परम्परा को विकसित तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया है। अतः इस कला के विकास का अध्ययन करना आवश्यक है ताकि हम अपने इतिहास का अध्ययन कर सके।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य विश्व व विशेषकर भारत में लेखन कला के इतिहास व उसकी उद्भव का अध्ययन करना है। जिसके लिए विदेशी अनुश्रुतियों, साहित्यों के साथ साथ भारतीय अनुश्रुतियों, साहित्यों व पुरातात्विक

स्रोतों का अध्ययन करेंगे।

2.3 भारत में लेखन कला की प्राचीनता

वैश्विक दृष्टि से लेखन के प्रारम्भिक साक्ष्य मेसोपोटामिया व मिस्र की सभ्यताओं में मिलते हैं किन्तु भारतीय उपमहाद्वीप की दृष्टि से लेखन कला के सबसे प्राचीन साक्ष्य सिंधु–सरस्वती (हड़प्पा) सभ्यता से प्राप्त होती है जिसकी तिथि 3000 ई.पू. मानी जाती है। सिंधु–सरस्वती सभ्यता से प्राप्त मिट्टी के मुहरों में चित्रात्मक शैली में विभिन्नन प्रतीक उकेरे गए हैं जिन्हे विद्वानों ने अक्षर स्वीकार किया है। किन्तु दुर्भाग्य से सैन्धव लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। पं.. प्राणनाथ विद्यालंकार जैसे विद्वानों ने इसे पढ़ने का प्रयास किया किन्तु कोई निष्कर्ष नहीं मिला।

भारत में लेखन कला का इतिहास अस्थिर है तथा विद्वानों में परस्पर विरोधी मत हैं। प्राचीन भारत में लेखन कला को दैवीय कृति की तरह माना जाता था इसी कारण इसे ब्रह्मा द्वारा निर्मित बताई जाती है। बादामी से प्राप्त 580 ई. के एक प्रस्तर खंड में ब्रह्म की आकृति बनी हुई है जिनके हाथों में तड़पत्रों का समूह है जो दर्शाता है की प्राचीन काल में लेखन को ब्रह्म से जोड़ा जाता था।

भारत में लेखन कला की उत्पत्ति के लिए मुख्यतः दो विचारधराएं हैं –

विदेशी विचारधारा

20 वीं सदी के आरंभ तक लगभग सभी पश्चिमी विद्वान भारत में लेखन के इतिहास को ई.पू. 6ठी सदी से प्राचीन नहीं मानते थे, इनमें बर्नेल, ब्यूलर, डेविड डीरिन्जर व मैक्समूलर आदि विद्वान आते है।

मैक्स म्यूलर के अनुसार– क्योंकि पाणिनी (ई.पू. चौथी सदी) द्वारा संस्कृत व्याकरण अष्टाध्यायी में एक भी सूत्र लेखन कला की ओर संकेत नहीं करता।

बर्नेल के अनुसार– ब्राह्मी सबसे प्राचीन लिपि है और इसका उद्भव ई. पू. चौथी–पाँचवीं सदी के लगभग फिनिशियन लिपि से हुआ है।

डॉ.. डेविड डीरिन्जर के अनुसार– ब्राह्मी भारत की आदि लिपि है तथा इसकी तिथि किसी उपलब्ध तर्क के आधार पर पाँचवी सदी ई.पू. से पहले निर्धारित नहीं की जा सकती। डीरिन्जर के अनुसार सुदूर अतीत में लेखन के प्रति जनरुची थी जिसकी पुष्टि के लिए डीरिन्जर ने पाणिनीय शिक्षा के

निम्नलिखित श्लोक को आधार बनाया –

गीति शीघ्री शिरः कंपी तथा लिखित–पाठकः।

अनर्थज्ञोअल्पकण्ठश्च षडेते पथकधमः।।32।।

इस श्लोक में पाठकों के दोषों का विवेचन किया गया है पर कहीं लेखक का वर्णन यही है। अतः लेखन कला का विकास बाद हुआ, पहले लोगों ने पढ़ना सीखा फिर लिखना।

डॉ. ब्यूलर के अनुसार–चीन के विश्वकोश 'फा–वान–शू–लिन' के अनुसार ब्रह्म ने एक ऐसी लिपि का अन्वेषण किया था जो बाएं से दायें लिखी जाती थी। 'ललित विस्तर' में एक ऐसी लिपि का उल्लेख है जिसे ब्राह्मी या बम्मी कहा गया है। इस ग्रंथ के अनुसार बुद्ध के समय 64 कलाओं का विकास हो चुका था। पुनः पाणिनी के अष्टाध्यायी से ज्ञात होता है की पाणिनी से पूर्व व्याकरण का अध्ययन 'यावनीय' (ग्रीक या यवन भाषा) भाषा में होता था।

क्योंकि पहले की अन्वेषणों के परिणामस्वरूप ब्राह्मी का विस्तार 500 ई.पू. या इससे पहले पूर्ण हो चुका था अतः ई.पू. 800 सेमेटिक वर्णों के भारत में प्रवेश की वास्तविक तिथि मानी जा सकती है। यह निरूपण समयिक है जो भारतवर्ष या सेमेटिक देशों में नवीन शिलालेखों के प्रकाश में आने पर परिवर्तित किया जा सकता है। यदि इस प्रकार का परिवर्तन आवश्यक हो तो नूतन अनुसंधानों के परिणाम मुझे इस विश्वास के लिए प्रेरित करते हैं की लेखन कला का प्रवेश काल **पुरवेत्तार** प्रामाणिक होगा और उसे ई.पू. 1000 या इससे भी पूर्व रखना होगा।

उपरोक्त विचार 19 वीं सदी या 20वीं सदी के आरंभ में रखे गए थे किन्तु 20वीं सदी के तीसरे दशक में प्रकाश में आई सिंधु–सरस्वती सभ्यता से प्राप्त लेखन के प्रमाणों के बाद भारत में लेखन कला की प्राचीनता और पीछे चली गई।

आलोचना

विदेशी विद्वानों के इन मतों का भारतीय विचारकों ने एक स्वर में खंडन किया है जिसमें डॉ. गौरीशंकर ओझा, डॉ. राजबली पांडे व डॉ. ए. सी. दास आदि प्रमुख हैं।

डीरिन्जर द्वारा पाणिनीय शिक्षा के श्लोक के आधार पर प्रतिपादित मत का खंडन करते हुए डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने तर्क दिया है कि जहाँ

पाठकः शब्द पाठकों के स्थिति का अनुमान करते हैं, वहीं **लिखितः** शब्द इस बात का। द्योतक है कि पाठक लिखे हुआ पढ़ता था अथवा बोल–बोल कर लिखता था। यह कथन सटीक प्रतीत होता है क्योंकि श्लोक में गीती, शीघ्री, शिरः कंपी, अनर्थक एवं अल्प कंठ आदि पाठकों के दोष बताए गए हैं। क्योंकि पाठक का अभिप्राय पढ़ने वाले से है, तो बिना लेखन के प्रसंग के पाठन का प्रसंग आना अस्वाभाविक है अतः निश्चित रूप से उस समय लेखन का विकास हो चुका था।

इसी प्रकार डॉ. दास ने बर्नेल के फोनएशियन लिपियों से भारतीय लिपियों के विकास के मत का खंडन करते हुए कहा है, कि लेखन के कौशल का विकास वेदों के समय से हो चुका था। इस बात का समर्थन पं.. गौरीशंकर ओझा ने भी किया है। उनके अनुसार वेदों को श्रुति इसलिए नहीं कहा जाता कि उन्हे सुनकर कंठस्थ किया जाता था, बल्कि इसलिए कहा जाता था की पाठक को अपनी मेधा से इसे ग्रहण के लिए पड़ने इस प्रकार बनानी चाहिए की उन्हे सुनकर ही याद कर लें ताकि आवश्यकता पड़ने पर प्रमाणों का समुचित प्रयोग कर सकें क्योंकि भारतीय विचारधारा में कंठस्थ की हुई विद्या का महत्व रहा है।

फोनएशियन उत्पत्ति पर यह मत दिया गया की फोनएशियन व्यापारी थे तथा व्यापारिक उपयोग के लिए बेबीलोनीयन से लिखने की कला सीखकर उसमें कुछ बदलाव किए यह इनकी स्वयं की भाषा नहीं थी। जबकि बेबीलोनीयन से पहले ही सिंधु घाटी में लेखन कला का प्रचलन हमें देखने को मिलता है। अतः भारतीय विचारकों के अनुसार भारत में लेखन कला के विदेशी उत्पत्ति का मत निराधार सिद्ध होता है।

भारतीय विवरण

उपर्युक्त विरोधाभासी तथ्यों के समक्ष वास्तविक ज्ञान के लिए हम निम्न लिखित स्रोतों को आधार मानकर यदि अध्ययन करें तो तथ्यों का स्पष्टीकरण हो सकता है–

1. पारंपरिक एवं अनुश्रौतिक प्रमाण।
2. साहित्यिक स्रोत।
3. पुरातात्विक स्रोत।

पारंपरिक एवं अनुश्रौतिक प्रमाण

भारतीय लिपि के अध्ययन के लिए केवल भारतीय स्रोतों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता इसका कारण है, कि अनेकों विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा विनष्ट कर दिए गए तथा कुछ का विनाश अन्यमनस्क पीढ़ियों द्वारा कर दिया गया। इनके कुछ अंश आज बहु पड़ोसी व देशों के साहित्यों से प्राप्त होता है। अतः हमें निम्नलिखित सभ्यताओं के स्रोतों का भी अध्ययन करना होगा –

1. भारतीय,
2. चीनी,
3. अरबी,
4. यूनानी तथा
5. लंका की परम्परा व अनुश्रुतियाँ।

भारतीय परम्परा व अनुश्रुतियाँ –

अधिकांश विदेशी विद्वानों के विरुद्ध भारतीय अनुश्रुतियाँ भारत में लेखन कला को अत्यंत प्राचीन सिद्ध करतीं हैं। उदाहरण के लिए –

नारद–स्मृति (5 वीं सदी) के अनुसार –

ना करिष्यति ब्रह्म लिखितं चक्षुरुत्तमम्।

तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यत् शुभांगतिः।।

अर्थात –"यदि ब्रह्म उत्तम नेत्रतुल्य लेखन–कला की सृष्टि न करते तो इस लोक की यह शुभ गति न होती।

वृहस्पति–स्मृति के अनुसार –

षाण्मासीके तु समये भ्रांतिः सञ्जायते यतः।

धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढ़ाण्यतः पुरा।।

– आह्निक–तत्त्व से उद्धृत।

पहले स्मृति में भी इसी प्रकार लिखा है की पहले सृष्टिकर्ता ने अक्षरों को पत्तों पर अंकित का विधान किया। चूँकि 6 मास के अनंतर किसी घटना के विषय में भ्रांति उत्पन्न हो जाती है?

बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तर के अनुसार–बुद्ध के समय 64 लिपियों का विकास हो चुका था जिनमें सबसे पहले ब्राह्मी लिपि का उल्लेख है।

जैन ग्रंथों में एक प्रसंग आता है की ऋषभनाथ ने अपनी पुत्री बम्पी को पढ़ाने के लिए एक लिपि विकसित की थी इसी कारण इस लिपि का नाम बम्पी पड़ा। यहीं समवायण सूत्र व पणवणासूत्र में 18 लिपियों का वर्णन मिलता है जिसमें प्रथम नाम ब्राह्मी का है।

बादामी के उत्खनन से ब्रह्म व सरस्वती की खड़ी युगल मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें ब्रह्म के हाथों में ताड़पत्र तथा सरस्वती के हाथ में मुड़ी पुस्तक है। इससे स्पष्ट होता है की सरस्वती व ब्रह्म को लेखन कला के उद्‌भव से संबंधित किया गया है।

लेखन कला के प्राचीनता का प्रमाण कालिदास के इस कथन से स्पष्ट है की लिपि ही वह माध्यम है जिसे व्यंग्यमय की प्राप्ति होती है जैसे–नदी के मुख से चलने पर उसके उद्‌गम तक हम पहुंच सकते हैं (**कियेर्यथा वदग्रहणेन व्यंग्यमय नदी मुखेनेव समुद्रभाविशत**)।

यूरोपीय विद्वानों के मत की भारतीय प्राचीन साहित्य लेखन की सहायता के बिना ही मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता था, कालिदास साहित्य के यथोचित अध्ययन के लिए लिपि–ज्ञान अति आवश्यक है।

विदेशी अनुश्रुतियाँ

प्राचीन भारत में अनेक विदेशी यात्री समय–समय पर भारत की यात्रा में आते रहे है तथा उन्होंने यात्रा वृतांतों में भारत की कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक घटनाओं, प्रथाओं व परम्पराओं का उल्लेख किया है। इनमें हमें प्राचीन भारत में लेखन कला के होने के भी प्रमाण मिलते हैं।

चीनी परम्परा एवं अनुश्रुति

भौगोलिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आदि संपर्कों में भारत व चीन एक दूसरे के अत्यंत समीप रहे हैं। कई भारतीय साहित्यों के संकेत व उनके संदर्भ चीनी साहित्यों में प्राप्त होते हैं। चीनी साहित्यों ज्ञात होता है की भारत में लेखन कला का विकास अत्यंत प्राचीन है। चीन के प्राचीन विश्वकोश फा–वान–शू–लिन में लिखा है कि पुरातन विश्व में केवल तीन लिपियाँ प्रचलित थी। इनमें से एक ब्राह्मी थी। यह फान (ब्रह्म) द्वारा आविष्कृत थी तथा बाएं से दायें लिखी जाती थी तथा यह सर्वोत्तम लिपि थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि लेखन कला की उत्पत्ति सबसे पहले भारत में ही हुआ था। ह्वेनसांग लिखता है की भारत की लिपियाँ सभी लिपियों से

प्राचीन है। वह यह से लौटते समय बड़ी मात्रा में साहित्यों का भंडार ले गया था। उसके अनुसार भारत में जन्मपत्री का प्रचलन था, सड़कों के किनारे अंक लिखे हुए मील स्तम्भ थे।

अरबी परम्परा एवं अनुश्रुति

भारत तथा अरब देशों के मध्य संपर्क प्राचीन काल से ही रहा है। 11वीं सदी के अरबी इतिहासकार अल–बरूनी के अनुसार भारतीय लोग पराशर से पहले लिखना भूल चुके थे फिर कलियुग दैवयोग से पराशर ने कलियुग के आरंभ में हिन्दू धर्म–ग्रंथों–वेद, महाभारत तथा पुराणों आदि के संचयन एवं लेखन के लिए लेखन कला का पुनरान्वेषण किया और टीवी से क्रमित लेखन कला का प्रचलन हुआ। यह कथन स्वतः इस बात को प्रमाणित करता है की कलियुग के पहले के युगों में भी लेखन–कला से भारतीय परिचित थे। दूसरा यहाँ उल्लिखित व्यास वेदों के संकलनकर्ता तथा पुराण व महाभारत के रचयिता बताए गए हैं जिससे यह स्पष्ट होता है की वैदिक काल में भी लेखन की व्यवस्था भी अवश्य रही होगी।

युनानी परम्परा एवं अनुश्रुति

सिकंदर के अभियान में उसके साथ भारत आए तथा उसके बाद भारत का भ्रमण करने आए कई यूनानी इतिहासकारों व लेखकों की रचनाओं में भारत में लेखन की प्राचीनता के बारें में जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। उन्होंने यहाँ की कतिपय परम्परा व अनुश्रुति को अपने साहित्य में स्थान दिया है।

नियार्कस – सिकंदर का एक सेनापति था। वह पं.जाब में सिकंदर के साथ रहा था तथा सिंधु डेल्टा पर सेना का नेतृत्व किया था। वह लिखता है–"यहाँ के निवासी कपास व चिथड़ों से कागज बनाया करते थे। इन कागजों का प्रयोग संभवतः लिखने के लिए किया जाता रहा होगा जो की लेखन कला के प्रचलन की ओर संकेत करता है।

कर्टियस – कर्टियस जो एक यूनानी यात्री था लिखता है की भारतीय वृक्ष की छाल पर लिखते हैं। निश्चित ही वह भोजपत्र का उल्लेख कर रहा था। आज भी भारतीय सन्यासी इनका प्रयोग जंत्र–मंत्र के लिए करते हैं।

ब्यूलर के अनुसार – ये दोनों डॉ.. विभिन्नन लेखन सामग्रियों की ओर संकेत करते हैं, इससे ज्ञात होता है कि लेखन–कला इस समय ज्ञात थी वह बिल्कुल नई नहीं थी।

मेगस्थनीज– मेगस्थनीज प्रथम मौर्य सम्राट के दरबार में यूनानी राजदूत

था। मेगस्थनीज के विवरणों से ज्ञात होता है कि सडक़ों के किनारे मील के पत्थर 10–10 स्टेडिया की निश्चित दूरी पर लगे हुए थे जिससे डसड़को की दूरी व ठहराव की जगह ज्ञात होती है। इससे यह स्पष्ट होता है की भारतीय गणना से परिचित थे तथा वे अक्षरों के साथ गिनती करते थे। मेगस्थनीज के वृतांत में भारतीयों द्वारा कुंडली देखकर वर्षफल बताने तथा विभिन्नन स्मृतियों के आधार पर न्यायिक मसलों का निर्णय करने का वर्णन है। जिससे यह स्पष्ट होता है की भारतीयों के पास गणना की सुव्यवस्थित और उच्चतम व्यवस्था थी। कुछ लोगों ने स्मृति का अर्थ 'स्मरण शक्ति' लगाया है जबकि ब्यूलर व राजबली पांडे आदि विद्वानों ने इसका अर्थ स्मृतिग्रंथों से लिए है।

अरबी परम्परा एवं अनुश्रुति

लंका त्रिपिटिक साहित्य में 'लेख' शब्द का प्रयोग मिलता है। अपितु 'लेखक' शब्द का भी उल्लेख है। जिससे यह स्पष्ट होता है की लेखन परम्परा का विकास अति प्राचीन है तथा लेखन कला में पारंगत हुए लोगों के लिए 'लेखक' कहा जाता था।

साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोतों से हमें भारत में लेखन कला की प्राचीनता का ज्ञान मिलता है। भारतीय साहित्यों को मुख्यतः निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

1. **वेद** –
   - 1.1 ऋग्वेद
   - 1.2 यजुर्वेद
   - 1.3 अथर्ववेद
2. उत्तर वैदिक साहित्य (ब्राह्मण साहित्य)
3. बौद्ध साहित्य
4. जैन साहित्य

1.– वेद

ऋग्वेद –

वेद विश्व साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रंथों में से एक हैं। पं.. गौरीशंकर ओझा के अनुसार श्रुति वेदों को इसलिए श्रुति कहा जाता था क्योंकि वेदों को केवल सुनकर याद करना अधिक सुविधाजनक था। क्योंकि उस समय कंठस्थ

विद्या का अधिक महत्व था, अतः यह असंभव है इनके लिखित रूप में होने के बिना इन पर भाष्य किये गए हों; तथा इनके ब्राह्मण ग्रंथों की रचना की जा सकती। ऋग्वेद में गायत्री, वृहती, विराज, अनुष्टुप आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया गया है अर्थात ऋचाओं को छंदों में बांधने के लिए मात्राओं का उपयोग होता था इससे यह संकेत मिलता है की लेखन कला अवश्य रही होगी। ऋग्वेद में ही एक विवरण आता है की जुआ के एक पासे पर अंकित था तथा इसी ग्रंथ में लखड़ान्कित (आंकित) गायों का उल्लेख भी आता है। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार वैदिक काल में किसी न किसी प्रकार की लेखन कला का प्रचलन अवश्य रहा होगा। इस ग्रंथ में राजा सावर्णी द्वारा 1000 गौओं की भिक्षा में देने का उल्लेख है जिनके कानों पर आठ का चिन्ह अंकित था। इससे यह स्पष्ट होता है की लेखन कला के साथ–साथ अंक लेखन का भी प्रचलन था।

यजुर्वेद –

यजुर्वेद मे भी अनेकों छंदों का प्रयोग मिलता है जैसे क्षुरश, भ्राजश आदि। क्षुरश का अर्थ होता है छुरे की तरह किसी कठोर वस्तु से तथा भ्राजश का अर्थ है चमकने वाले वस्तु से लिखते थे। इससे यह संकेत मिलता है की संभवतः छंद तकुए से लिखे जाते रहे होंगे, जिनके अक्षरों पर चमकने के लिए रंगों का प्रयोग किया जाता रहा होगा जैसा आजकल के निमांत्रण पत्रों पर किया जाता है। एक अन्य स्थान पर 'गणक' का उल्लेख है जो गिनने का काम करते थे। यहाँ गिनना तभी संभव होगा जब गिनती लिखने का चलन हो।

अथर्ववेद –

अथर्ववेद में एक स्थान पर उल्लेख आता है की एक स्नातक कहता है 'मैं वेद को वहीं रख देता हूँ जहाँ से मैंने इसे लिए था।' इस विवरण से यह स्पष्ट संकेत मिलता है की वेद का अवश्य ही लिखित स्वरूप रहा होगा। एक अन्य उद्धरण में यह उल्लेख आता है की 'हे पृथ्वी, हम तुम्हें भौतिक बंधनों से आबद्ध कर देंगे। तुम्हारा शरीर दो योग का है–कृसमानी और वित्त – जो कुछ भी तुम पर लिखा गया है जिससे यह अर्जित ज्ञान शीघ्र ही लुप्त न हो जाय'।

2.– उत्तर वैदिक साहित्य (ब्राह्मण साहित्य)

उत्तर वैदिक साहित्यों से भी लेखन कला के अस्तित्व में होने के अनेकों प्रमाण मिलते हैं। इसके लिए सर्वप्रथम हम उत्तर वैदिक साहित्य को 4 भागों में विभक्त कर लेते हैं –

1. वेदांग

2. उपनिषद, ब्राह्मण एवं आरण्यक
3. महाकाव्य
4. अन्य ग्रंथ

वेदांग –

वेदांग में व्याकरण का स्थान प्रमुख है। पाणिनी (चौथी सदी ई.पू.) में संस्कृत व्याकरण का अध्ययन का संग्रह अष्टाध्यायी में किया। इस जैसा व्याकरण ग्रंथ आज तक संभव नहीं हुआ है। बिना लिखित सामग्री के व्याकरण का अध्ययन संभव ही नहीं है जिससे यह स्पष्ट होता है, कि पाणिनी के पूर्व से ही लेखन कला का विकास हो चुका था। पाणिनी अपने अष्टाध्यायी में लिपि शब्द का प्रयोग लिखने के संबंध में करते हैं। इसके अतिरिक्त 'लिपिकार' एवं 'ग्रंथ' शब्द का भी उल्लेख मिलता है जो लेखन कला के स्पष्ट प्रमाण है। अष्टाध्यायी में अंकों का भी उल्लेख मिलता है कुछ उदाहरणों में पशुओं के कानों में 5 तथा 8 लिखने का उल्लेख है। पाणिनी ने स्वयं से पूर्व भारद्वाज तथा कश्यप आदि वैयाकरणों का उल्लेख किया है जो पूर्व में ही वैयाकरण के अध्यापक थे। पणिनी से पहले ही यास्क ने निरुक्त लिखा था जिसमें कई अन्य वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है। अतः यह स्पष्ट है की 8वीं सदी ई.पू. में भी लेखन कला विकसित थी।

वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद तथा ज्योतिष) जो भारत में प्राचीनतम शास्त्रीय साहित्य का निर्माण करते हैं, विशिष्ट ज्ञान की सभी शाखाएं जो वर्गीकरण, व्यवस्थापन, अंतर्निर्देश, पुनरावृति तथा गुणन एवं विभाजन युक्त गणना को सूचित करते हैं निश्चित रूप से लेखन की पूर्व कल्पना करती है।

उपनिषद व आरण्यक –

छन्दोग्य उपनिषद में अक्षरों के लिखने का उल्लेख मिलता है। एतरेय ब्राह्मण में अक्षर उच्चारण का परिचय मिलता है। तैतरीय उपनिषद में वर्ण और मात्रा का उल्लेख मिलता है। उपनिषद दार्शनिक तत्वों का विवेचन करते हैं जिन्हें बिना लिखे व्यवस्थित नहीं किया जा सकता।

महाकाव्य –

रामायण व महाभारत प्राचीन भारत के दो प्रमुख महाकाव्य हैं। इनमें भी विभिन्नन प्रसंगों में लेखन कला के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। उदाहरण के लिए रामायण में जब हनुमान सीता की खोज में लंका जाते हैं तब राम उन्हें अपनी मुद्रिका देते हैं जिसमें "राम" नाम अंकित होता है। इसी मुद्रिका को हनुमान

लंका में अशोक वाटिका में सीता को देते हैं। जब सीता ने हनुमान से इस मुद्रिका के बारे में पूछा तब हनुमान कहते हैं –

'रामनामांकितं चेदि पश्य देवि अंकगुलियम। वाल्मीकि रामायण

(तब देखि मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर–मानस)

अर्थात ही देवी ! राम नाम अंकित इस अंगूठी को देखो ! इस कथन से स्पष्ट हो जाता है की रामायण काल में भी लिखने की कला प्रचलित थी। रामायण में ही एक स्थान पर उल्लेख है की संस्कार से हिन होने पर शब्द का अर्थ बदल जाता है।

'संस्कारेण यथा हीनां वाच्यमर्थान्तरंगतम्। वाल्मीकि रामायण 5–15–39

यहाँ उल्लेखित संस्कार के संदर्भ में आचार्य बलदेव उपाध्याय जी का विचार है की किसी–न–किसी प्रकार के व्याकरण के सिद्धांतों की ओर संकेत किया गया है अर्थात जो साहित्य को संस्कारित करता है। इसी प्रकार महाभारत में भी लिख, लेखन, लेखक आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। आदि पर्व में उल्लिखित है की व्यास जी ने महाभारत को लिखने के लिए लेखन कला में कुशल 'गणेश' को चुना था। डॉ.. राजबली पाण्डेय तथा ब्यूलर आदि के अनुसार यह लेखन कला के प्रचलन के प्रमाण हैं।

अन्य वेदोत्तर ब्राह्मण साहित्य –

इसके अतिरिक्त अन्य वेदोत्तर संस्कृत साहित्य जिनमें काव्य नाटक, स्मृतियाँ, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, आख्यायिका, दर्शन तथा अन्य शास्त्र सम्मिलित हैं विषय की प्रकृति, शैली, आकार तथा लेखन के कई प्रमाण देते हैं। चुकी इसमें से अधिकांश अशोक के शिलालेखों के बाद के हैं इस कारण इनके साक्ष्य लेखन–कला के पूर्वतर अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर सकते। परवर्ती संस्कृत साहित्य के विपरीत पूर्वकालीन संस्कृत साहित्य के प्रमाण अधिक मूल्यवान हैं। इस साहित्य का एक अंश बौद्ध साहित्य के समकालीन है किन्तु अधिकांश बौद्ध धर्म के उदय के पूर्व के हैं। प्राक् बौद्ध कालीन ब्राह्मण साहित्यों को मैक्स–मूलर ने भी ई.पू. 8वीं से ई.पू. 14 वी सदी के मध्य रखा है। किन्तु ब्यूलर वे विंटरनिट्ज इन्हें ई.पू. 3–4 सदी का मानते हैं।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र ब्राह्मण साहित्य का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह अशोक के पूर्व लगभग ई.पू. 4 सदी का है तथा इसमें भी लेखन कला से जुड़े अनेक प्रमाण हैं जैसे –

वृत्तचौलकर्मा लिपिं. संख्यानं चोपयुञ्जीत्। 1.05.02

चूड़ाकर्म के उपरांत लेखन और गणना सिखनी चाहिए।

पँचमें मंत्रिपरिषदा पत्रसंप्रेषणेन मंत्रयेत। 1.19.06

पं.चवे पहर में राजा को पत्र सम्प्रेषण द्वारा मंत्रिपरिषद से मंत्रणा करनी चाहिए।

संज्ञालिपिभिश्चारसञ्चारंकुर्युः। 9.12.08

संज्ञा और लिपि के साथ अपने गुप्तचरों को भेजना चाहिए।

अमात्यसम्पदाउपेताःसर्वाध्यक्षाःशक्तितःकर्मसुनियोज्याः। 2.09.28

लेखक लिखने और पढ़ने में समर्थ तथा रचना कुशल होना चाहिए।

सूत्र साहित्य – श्रौत, गृह एवं धर्म सूत्रों का समय ई.पू. दूसरी – 8वीं सदी के मध्य माना जाता है। इनमें भी लेखन कला से जुड़े अनेकों उदाहरण हैं। जैसे वशिष्ठ धर्मसूत्र में व्यावहारिक प्रमाण के लिए लिखित पत्रकों का उल्लेख है।

3. बौद्ध साहित्य

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्यों की रचना तथा संकलन निःसंदेह सिकंदर के भारतीय अभियान के पश्चात् ही हुआ था। किन्तु इनमें ई.पू. की 5वीं–6ठी शताब्दी के पूर्व के इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है। इनमें लेखन कला के अतिरिक्त लेखन के व्यवसाय, विषय, पद्धति एवं प्रयुक्त होने वाली सामग्रियों का भी उल्लेख मिलता है।

उदाहरण के लिए बौद्ध ग्रंथ सूत्तान्त में भिक्षुओं के आचरण पर उपदेश देते हुए 'अक्खारिक' नामक एक खेल का निषेध किया गया है। इस खेल में एक बौद्ध भिक्षु दूसरे बौद्ध भिक्षु की पीठ पर चढ़कर हवा में अक्षर बनाता था जिसे दूसरा पढ़ता था। विनय पिटक में उल्लेख आता है की भिक्षुओं को अक्षर लिखने का व्यसन था तथा कुछ गृहस्थ इसके माध्यम से अपनी जीविका भी अर्जित करते थे। इसमें लेख, गणना, रूप आदि की शिक्षा का विधान मिलता है। इसी ग्रंथ में लेखन कला को भिक्षुओं के लिए निर्दोष तथा सराहनीय बताकर उसकी प्रशंसा की गई है।इसके अतिरिक्त कई प्रसंगों में जातक कथाओं में लेखन कला का संकेत करती हैं जैसे –

1. व्यक्तिगत और आधिकारिक पत्र,

2. राजकीय घोषणा,

3. कौटुंबिक कार्य,

4. धार्मिक एवं राजनीतिक सुभाषित,

5. ब्याज एवं ऋण, पांडुलिपियाँ (पत्रक)

महावग्ग एवं जातक में ई.पू. 5वीं सदी के पूर्व उन संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है जहाँ लेखन कला की शिक्षा दी जाती थी। पाठ्य–विषय पर लिखित समग्री तथा लिखने की विधि एवं उपकरणों का भी उल्लेख मिलता है। महावग्ग लेख (लेखन), गणना (गणित) और रूप(मुख्यतः मुद्राशास्त्र विषयक व्यावहारिक गणित) आदि का उल्लेख करते हैं जो प्राचीन भारतीय पाठ्यशलाओं के पाठ्यक्रम के अंग थे। जातक में लेखन के उपकरण के रूप में फलक (पट्टिका) और वर्णक (काष्ठ–लेखनी) का भी वर्णन मिलता है। विनय पिटक में 'लिखितक्र चोर' का उल्लेख मिलता है जिसका अर्थ होता है राज्य के लिखित विवरण चुराने वाला। बौद्ध साहित्य में लेखन संबंधी शब्द जैसे 'छिंदन्ति', 'लिखति', 'लेख', 'लेखक' 'अक्खर' आदि तथा लेखन उपकरणों में काष्ठ, बांस पत्र एवं स्वर्ण पट्ट का भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त 'लिख' तथा 'लिखावित' जिसका अर्थ है लिखना तथा लिखने के लिए बाधित करना। उदान में लेखाशिल्प का उल्लेख मिलता है। अंगुत्तर निकाय में 'लेखनी' (कलम), जातकों में अपपोतथक (आपकी पुस्तक), पोत्थक (पुस्तक), इण्ण पोथक (ऋण की पुस्तक) आदि का उल्लेख आता है। परवर्ती ग्रंथ ललितविस्तर में बुद्ध की लिपिशाला में जाने तथा उनके शिक्षक विश्वामित्र के द्वरा चंदन–फलक पर स्वर्ण–लेखनी से उनको वर्ण परिचय कराने का उल्लेख मिलता है तथा इसी ग्रंथ में 64 लिपियों के अस्तित्व में होने का उल्लेख मिलता है जिसमें ब्राह्मी सर्वोपरि थी। जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है की लेखन कला ई.पू. 5वीं–6ठी शताब्दी में प्रचलन में थी। तथा यह कोई नई वस्तु नहीं थी जिसे विकसित हुए समय हो चुका था।

4. जैन साहित्य

जैन साहित्यों के अनुसार जैन भिक्षुओं का लिखना वर्जित था। यदि कोई भिक्षु लिखता तो पश्चाताप करना पड़ता था। जैन परम्परा लिपियों की दो तालिका प्रस्तुत करती है –

1. 12 अक्षरों की लिपि

2. 18 अक्षरों की लिपिं.

जैन ग्रंथ भगवती सुत्त ब्राह्मी की वंदना 'नमो वम्यिये लिखिए' से ही आरंभ होती है। इस प्रकार से जैन साहित्य भी प्राचीन भारत में लेखन कला का प्रमाण देते हैं।

पुरातात्विक स्रोत

साहित्यिक व पारम्परिक स्रोत परोक्ष साक्ष्य हैं इनकों प्रामाणिक बनान के लिए पुरातात्त्विक स्रोतों की आवश्यकता होती है। डॉ.. भंडारकर ने पाषाण काल के पत्थरों पर रेखांकित कुछ आकृतियों को लिपि के आरंभ से जोड़ने का प्रयास किया था, किन्तु बाद में यह मत गलत सिद्ध हुआ क्योंकि इन्हें रोमन लिपि पाया गया। पं.. गौरीशंकर ओझा ने अशोक कालीन अभिलेखों के पूर्व के अभिलेखों का विवरण प्रस्तुत किया जिसमें से एक अजमेर का था तथा दूसरा नेपाल घाटी का। प्रथम अभिलेख तीर्थंकरों के 84 वर्ष पूर्व लगभग ई.पू. 443 के तहत दूसरा अभिलेख डॉ.. ब्यूलर के अनुसार ई.पू. 487 का है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है की अशोक ने अपने लेखों को पत्थरों पर इसलिए खुदवाया था ताकि वे स्थाई बने रहे अर्थात अशोक से पूर्व में लेखन की परम्परा थी पर क्योंकि पूर्व काल में पेड़ों की छाल, भोजपत्र, कपड़ों और कागज जैसे नाशवान पदार्थों पर लिखे जाते थे इसलिए वे समय के साथ नष्ट हो जाते थे। साहगौर, महाथानगढ़ व पिपरहवा से प्राप्त अभिलेख भी अशोक के पूर्व के माने गए हैं यद्यपि इन पर आज भी एक मत नहीं है।

किन्तु इन सभी प्रमाणों से अधिक महत्वपूर्ण प्रमाण है सिंधु–सरस्वती सभ्यता से प्राप्त मिट्टी के मुहरों पर अंकित प्रतीक चिन्ह जिन्हे कई विद्वानों ने चित्रात्मक अक्षर माना है जो भारत में लेखन कला की प्राचीनता को लगभग ई. पू. 3000 तक ले जाता है।

2.7 सारांश

वैश्विक दृष्टि से लेखन कला का इतिहास लगभग तीसरी शताब्दी ई.पू. के आसपास तक जाता है। भारत में भी इसके समकालीन लेखन कला के प्रमाण सिंधु–सरस्वती सभ्यता से मिलते है, किन्तु अभी तक कोई इस लिपि को पढ़ने में समर्थ नहीं हो सका है। किन्तु भारत में पढ़े जाने वाली लिपि का इतिहास लगभग 4–3 शताब्दी ई.पू. तक जाता है। किन्तु विद्वानों में भारत में लेखन कला के उसके उद्‌भव व विकासक्रम पर मतभिन्नता है। कुछ के अनुसार भारत में लेखन कला का उद्‌भव विदेशी परम्परा से प्रेरित है जबकि कुछ के अनुसार यह पूर्णतः भारतीय मूल की है। जिसका अध्ययन करना आवश्यक है।

अतः इन सभी प्रमाणों व स्रोतों पर आधारित विवेचना से यह कहना कठिन है की भारत में लेखन कला निश्चित रूप से कब से आरंभ हुई थी उसका प्रारम्भिक रूप कैसा था। किन्तु यह तो अवश्य सिद्ध होता है की वैदिक काल से ही भारत में लेखन कला विद्यमान थी यद्यपि इसके निश्चित प्रत्यक्ष रूप के बारे में अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। विंटरनिट्ज का कहना है की लेखन कला का आरंभ भारत में ई.पू. 18वीं सदी से हो चुका था। किन्तु यह विचार भी अंतिम नहीं माना जा सकता क्योंकि अभी वेदों के रचना काल निश्चित नहीं हो सकी है। अतः यह माना जा सकता है कि वैदिक काल में भारत में लेखन कला पूर्ण विकसित थी। सिंधु–सरस्वती सभ्यता के काल से लेखन कला के इतिहास का आरंभ माना जा सकता है, जो धीरे–धीरे समय के प्रवाह के साथ क्रमशः विकसित हुआ।

2.8 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ. शिवस्वरुप सहाय
2. भारतीय पुरालिपि, डॉ. राजबली पाण्डेय

2.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. लेखनकला की प्राचीनता पर लेख लिखिए।
2. भारतीय उपमहाद्वीप में लेखनकला कितनी प्राचीन है ?
3. भारत की सबसे प्राचीन लेखन कला के प्रमाण कहाँ प्राप्त होते हैं ?
4. लेखन कला की उत्पत्ति पर लेख लिखिए।

इकाई 3 : सैन्धव लिपि–प्रकृति एवं इसके लिप्यांतरण की समस्या

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 सैन्धव सभ्यता का इतिहास

3.4 सैन्धव सभ्यता में लेखनकला के साक्ष्य

3.5 सैन्धव लिपि की उत्पत्ति

3.5.1 सुमेरियन, मिस्र व एलम सभ्यता से उत्पत्ति के सिद्धांत

3.5.2 द्रविड़ उत्पत्ति का सिद्धांत

3.5.3 स्वदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

3.6 सैन्धव लिपि की प्रकृति

3.7 सैन्धव लिपि के लेखन की दिशा

3.8 सारांश

3.9 सदंर्भ ग्रन्थ

3.10 आदर्श अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारत में लेखन कला के प्राचीनतम् प्रमाण सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त होते हैं, जिसे कुछ विद्वानों के अक्षर तो कुछ चित्रात्मक लिपि मानते हैं। अभी तक इस लिपि या प्रतीक समूहों को समझा या पढ़ा नहीं जा सका है जिसके कारण सैन्धव सभ्यता के इतिहास का एक बड़ा भाग अभी भी रहस्य बना हुआ है। अतः भारत में लेखन कला के इतिहास के अध्ययन के लिए सबसे प्रथम चरण सैन्धव सभ्यता से प्राप्त इन प्रतीकों का अध्ययन करना आवश्यक है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य प्राचीन सैन्धव (हड़प्पा) सभ्यता की लिपि की प्राचीनता, उसकी उत्पत्ति, उसकी प्रकृति तथा ऊसके लिपयांतरण में आने वाली समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

3.3 सैन्धव सभ्यता का इतिहास

सैन्धव लिपि के लिपयांतरण की समस्या सैन्धव 'सभ्यता जिसे हड़प्पा सभ्यता अथवा सिंधु–सरस्वती सभ्यता भी कहा जाता है भारतीय उपमहाद्वीप की आरंम्भिक सभ्यताओं तथा विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। इस सभ्यता की खोज 20वीं सदी के तीसरे दशक में हुई थी। जब दो प्रसिद्ध पुरातत्वशास्त्रियों दयाराम साहनी तथा राखलदास बैनर्जी ने हड़प्पा (पं.जाब के मॉन्टगोमरी जिले में स्थित) तथा मोहनजोदड़ों (सिंध के लरकाना जिले में स्थित) के प्राचीन स्थलों से पुरावस्तुएं प्राप्त करके यह सिद्ध किया की ये दोनों नगर कभी किसी प्राचीन सभ्यता के केंद्र रहे होंगे। इस सभ्यता की खोज के बाद भारत का इतिहास भी मेसोंपोटामिया और मिस्र के काल की प्राचीन सिद्ध हो गई जिसे एक समय तक सिकंदर के आक्रमण ई.पू. 326 जितनी प्राचीन माना जाता था। इस सभ्यता की कई विशेषताएं जैसे नगर शैली, व्यापारिक गतिविधियों के प्रमाण तथा यहाँ से प्राप्त सेलखड़ी की मुहरें आदि एक विकसित सभ्यता होने के प्रमाण देती है। विद्वानों के अनुसार इस सभ्यता का आरंम्भिक काल लगभग ई.पू. 3300 था जो ई.पू. 2500 के आसपास अपने पूर्ण विकसित स्वरूप में था तथा लगभग ई.पू. 1300 के आते आते यह सभ्यता विलुप्त हो गई। कुछ नए शोधों के अनुसार इस सभ्यता की तिथि ई.पू. 5500–7500 वर्ष पूर्व तक होने के प्रमाण मिले हैं। इस सभ्यता का विस्तार उत्तर में पाकिस्तान के पं.जाब प्रांत में स्थित रहमान ढेरी से दक्षिण में गुजरात के भोगत्रार तक लगभग 1400 किमी तथा पूर्व में आलमगीरपुर (मेरठ) से पश्चिम सूत्कागेनडोर तक लगभग 1600 किमी तक था। इस सभ्यता के अबतक 2000 से 2500 स्थलों की खोज हो चुकी है जो आज के बलूचिस्तान, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, पश्चिमी पं. जाब, राजस्थान, हरियाणा, गंगा–यमुना दोआब, जम्मू, गुजरात, उत्तरी अफगानिस्तान आदि में फैले हुए हैं। इस सभ्यता की खोज सर्वप्रथम हड़प्पा की खोज से हुई इस कारण इसे हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है। इसी तरह चुकी इस सभ्यता के अधिकांश पुरास्थल सिंधु नदी घाटी के क्षेत्रों में फैले हुए थे इसलिए इसे सिंधु घाटी की सभ्यता भी कहा जाता था, किन्तु अब इस सभ्यता के अधिकांश पुरास्थल भारत में प्रवाहित होने वाली घग्गर–हाकरा नदी के क्षेत्र से प्राप्त हो रहे हैं जिसकी पहचान ऋग्वैदिक सरस्वती नदी जो अब विलुप्त हो चुकी, से की गई है। इसके आधार पर अब विद्वान इसे सिंधु–सरस्वती सभ्यता भी कहते हैं।

परवर्ती भारतीय सभ्यता के अधिकांश तत्वों के मूल हमें भारत की इस प्राचीनतम सभ्यता में दिखाई देते हैं। भारतीय सभ्यता के सामाजिक, आर्थिक,

धार्मिक, कलात्मक पक्षों का भान हमें सैन्धव सभ्यता में ही मिलता है।

3.4 सैन्धव सभ्यता में लेखनकला के साक्ष्य

उपरोक्त वर्णित पक्षों के अतिरिक्त लेखन कला के प्रारम्भिक साक्ष्य भी हमें सैन्धव सभ्यता में देखने को मिलते हैं। सैन्धव पुरास्थलों से अबतक 3700 के लगभग उत्कीर्ण सामग्रियाँ जिनमें ताम्र, कांस्य की सामग्रियाँ तथा मृतभाण्ड आदि है तथा 2000 से भी अधिक मुहरें प्राप्त हो चुकी हैं जो सेलखड़ी, कांचली मिट्टी, चर्ट, गोमेट आदि से निर्मित हैं। सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त पुरावशेषों में सबसे विशेष है यहाँ से प्राप्त मिट्टी (सेलखड़ी) की मुहरें, जिनमें अनेकों प्रकार की आकृतियों के साथ–साथ चित्रात्मक शैली अंकित किये हुए कुछ प्रतीक चिन्ह मिलते हैं। इन मुहरों का आकार चौकोर व वर्गाकार है तथा ये सामान्यतः 2–8 वर्ग सेमी आकार के हैं। इनमें मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि का अंकन मिलता है। इन मुहरों पर कुछ रेखाओं के माध्यम से अनेक प्रतीक चिन्ह बने हुए हैं। विद्वान इसे लेखन की आरंम्भिक अवस्था तथा इसे चीनी लिपि की तरह चित्रात्मक लिपि (Pictographic) मानते हैं। सिंधु सभ्यता से प्राप्त लिपि के ये प्रमाण भारतवर्ष के सबसे प्राचीन ज्ञात लिपि है। किन्तु दुर्भाग्य से अभी तक इस लिपि को संतोषजनक रूप से पढ़ा नहीं जा सका है।

सैन्धव पुरावस्थलों से प्राप्त इन मुहरों को न पढ़ पाने के कारण इस सभ्यता के बौद्धिक पक्ष के विषय में बहुत कम ज्ञात है। अब तक प्राप्त मुहरों के अध्ययन से लगभग 400 प्रकार के चित्रात्मक अक्षरों का आकलन किया गया है। इन लिपि चिन्हों में स्पष्टता, विस्तार तथा विभिन्ननता है। सामान्यतः यह बाएं से दायें लिखी जाती थी लेकिन डॉ. बी.बी. लाल ने कालीबंगन की खुदाई से ऐसे मृत्पिण्ड प्राप्त किये जिनमें सैन्धव लिपि में लघु लेख खुदे हुए थे जिनके माध्यम से यह सिद्ध हुआ की यह लिपि दायें से बाएं थी। कहीं–कहीं लिपि की दिशा बताना कठिन हो जाता है।

3.5 सैन्धव लिपि की उत्पत्ति

अनेक विद्वान सैन्धव लिपि की उत्पत्ति के लिए अलग अलग मतों का समर्थन करते हैं तथा उसके मूल का संबंध अलग अलग लिपियों तथा भाषा से जोड़ते हैं। कुछ के अनुसार यह प्राचीन ब्राह्मी का आरंम्भिक रूप हैं, कुछ के अनुसार ये द्रविड़ लिपियों के आरंम्भिक रूप हैं वहीं कुछ विद्वान सैन्धव लिपि को मेसोपोटामिया तथा सुमेरियन लिपियों से जोड़ते हैं। किन्तु द्रविड़ अथवा मेसोपोटामिया से इस लिपी को जोड़ने का तर्क स्वीकार करने में यह आपत्ति है

की इस लिपि के लेखन के परवर्ती लेखन के उदाहरण उत्तर भारत में मिलते हैं न तो दक्षिण भारत में न ही मेसोपोटामिया आदि सभ्यताओं में। सुमेर व एलाम की लिपियों के समय के आधार पर कुछ विद्वानो की यह धारणा है की या लिपि पश्चिमी एशिया से भारत लाई गई है। किन्तु यह निर्णय करना कठिन है की कौन सी लिपि किसका अनुकरण कर रही थी।

3.5.1 सुमेरियन, मिस्र व एलम सभ्यता से उत्पत्ति सिद्धांत

एल.ए. वैडेल के अनुसार चतुर्थ सहस्त्राब्दी ई.पू. में सुमेर के लोग सिंधु घाटी में आकर बस गए थे और उन्हीं ने अपनी भाषा व लिपि का वहाँ प्रसार किया। उनके अनुसार आर्य सुमेर मूल के थे। उन्होंने मुद्राओं पर प्राचीन भारतीय साहित्य में उल्लेखित राजाओं और राजधानियों के नाम को भी पढ़ने का दावा किया। वैडेल के अनुसार सैन्धव लिपि सुमेर लिपि से ही निकली है। वैडेल के इस मत का समर्थन डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकार जी भी करते हैं। चुकी भारत, पश्चिमी एशिया, मिस्र आदि की प्राचीन लिपियों में चित्रात्मकता तथा व्यापार द्वारा उनके मध्य संबंध के कारण समानता दिखती है, किन्तु यह कहना कठिन है इनमें से किसने लेखन कला का सबसे पहले आविष्कार किया तथा किसने उसका अनुकरण किया। मेसोपोटामिया की ऐतिहासिक जन श्रुतियों के अनुसार सुमेर सभ्यता के जन्मदाता बाहर से आए थे तथा अपने साथ कृषि, लेखन, धातुकर्म आदि लेकर आए थे। सुमेर सभ्यता में लेखन कला के उत्तरदायी देवताओं व महापुरुषों के नाम सेमेटिक होने की अपेक्षा भारतीय लगते हैं। ऐसे में सुमेर लिपि से सैन्धव लिपि की उत्पत्ति का वैडेल का मत निराधार प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों ने सैन्धव लिपि का संबंध प्राक–ईरानी सभ्यता एलम के आद्य–एलामाइट लिपि से जोड़ने का प्रयास किया है क्योंकि ये दोनों सभ्यताएं समकालीन थी। ईरान के सुसा से लगभग 2600–1700 ई.पू. के प्राप्त एक सिलिन्डर में चित्रित आकृतियाँ सैन्धव लिपि से बहुत सीमा तक मेल खाती हैं।

3.5.2 द्रविड़ उत्पत्ति का सिद्धांत

कुछ विद्वानों के अनुसार सैन्धव लिपि आर्यों से पूर्व ही प्रचलित थी अतः यह आर्येत्तर लोगो की लिपि थी। हेनरी हेरास के अनुसार सैन्धव लोगों की भाषा व लिपि आदि द्रविड़ थी। सर जॉन मार्शल व उनके सहकर्मियों का भी लगभग यही मत था। हेरास सैन्धव लिपि को बाई से दाई ओर पढ़ते तथा तमिल में उसका लिप्यांतरण करते थे। रूसी विद्वान यूरी नोरोजोव तथा फिनिशियन विद्वान अस्को परपोला भी इसी मत के समर्थक है। किन्तु इस मत

से आपत्ति यह है की चतुर्थ सहस्त्राब्दी में तमिल भाषा के होने के अथवा उसके स्वरूप का हमें कोई ज्ञान नहीं है। अतः हेरास का यह प्रस्तावित पाठ प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। यदि सैन्धव लिपि में प्रयुक्त कथाओं का प्रश्न है तो यह चित्रात्मक शैली में लिखे गए है अतः यह किसी भी भाषा में गढ़े गए हो सकते हैं।

3.5.3 स्वदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

कुछ विद्वानों का मत है की वैदिक आर्य ही सैन्धव सभ्यता के जनक थे जो बाद में मेसोपोटामिया और पश्चिमी एशिया की ओर विस्तृत हुए। इनके अनुसार सैन्धव लिपि का आविष्कार इसी सभ्यता लोगों द्वारा किया गया था। सैन्धव लिपि संभवतः मौलिक थी तथा सैन्धव लोगों द्वारा अन्य सभ्यताओं तक फैली।

जी.आर. हंटर के अनुसार "अनेक चिन्हों में मिस्र की लिपि से विशिष्ट समानता है। मानव–शरीरात्मक चिन्हों के समस्त समुदाय के अनुरूप चिन्ह (समूह) मिस्र की लिपि में भी उपलब्ध है जो वस्तुतः वैसी ही है। इस संबंध में यह स्मरणीय है की इन मानवाकृति चिन्हों में से एक का भी प्राचीन समानांतर सुमेर या पूर्व एलम (एलामाइट) की लिपियों में नहीं है। इसके विपरीत अनेक सैन्धव चिन्हों के ठीक समानरूप पूर्व–एलम और जेम्देत–नस्त्र की ताबीजों में मिलते हैं, इन जीवरूपात्मक (मॉर्फोग्राफिक) प्रतिरूप मिस्र की लिपि में नहीं मिलते। कोई भी इन्हे देखकर इसी निष्कर्ष पर पँहुचेगा की सैन्धव लिपि अंशतः मिस्र व मेसोपोटामिया की लिपियों से निकली होगी। यह सत्य है की सैन्धव लिपि के अधिकांश चिन्ह जैसे वृक्ष, मछली, चिड़िया इत्यादि इन बाह्य सभ्यताओं की लिपियों से समानता रखते हैं किन्तु यह आकस्मिक समता–पात्र है जबकि वास्तव में चित्रलिपी की अवस्था में अपरिहार्य है। कारणपरक संबंध का निराकरण तब होता है जब अपेक्षाकृत अधिक रूढ़ व कम स्पष्ट विचार–चित्रों में (आइडियोग्राम) किसी आशय या कल्पना के लिए विशेष संकेत, विशेषतः उन विचार–चित्रों में जो इतने रूढ़ हो गए हो की उनकी चित्रात्मक (पिक्टोग्राफिक) मूल का पता नहीं चले, विशिष्ट संबंध लक्षित हो तथा अंशतः जहाँ आसानी से पहचाने जाने योग्य चित्र इसी प्रकार की विविधता प्रकट करते हैं, वहाँ दूसरा प्रकार हमारी लिपि तथा पूर्व–एलामाइट लिपि के बीच बहुत स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। तुलनात्मक फलकों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। निश्चय ही यह संभव है की तीनों का मूल एक ही रहा हो और सैन्धव लिपि में मिस्र तत्व लिए गए हो। यह भी संभव है की चारों लिपियों का मूल है की हो, किन्तु यह

एक गवेषणा का विषय है। मानवशास्त्रीय प्रमाणों के बिना रूप लिपि की अवस्था में इस मत का समाधान करना कठिन है, कि प्रागैतिहासिक काल में नील, फरात तथा सिंधु नदी की घाटी के निवासियों में जातीय समानता थी या नहीं।"

डेविड डीरिन्जर के अनुसार "इस संबंध में अन्य समस्याओं का निर्देश भी आवश्यक है कि लिपि का मूल तथा अन्य लिपियों के अविष्कार पर इसका प्रभाव। यह स्पष्ट प्रतीत होता है की सैन्धव लिपि जो प्राप्त लेखों में अपेक्षाकृत अधिक योजनाबद्ध और पं.क्तिबद्ध है प्रारंभ में चित्रलिपि–परक थी, किन्तु यह निर्णय करना असंभव है की वास्तव में यह स्वदेशी है या विदेशी। कीलाक्षर (क्यूनीफार्म) लेखन एवं प्राचीन एलम के पूर्व रूप में इस लिपि का संबंध संभव है। किन्तु यह निश्चय करना कठिन है की उस संबंध का स्वरूप कैसा था।

3.6 सैन्धव लिपि की प्रकृति

सैन्धव लिपि प्रमुख रूप से चित्रात्मक व प्रतीकात्मक शैली की है जिसमें विभिन्नन प्रकार की आड़ी–तिरछी रेखाओं व आकृतियों का प्रयोग किया गया है। सैन्धव सभेत के पुरास्थलों से प्राप्त मुहरों व कुछ अन्य पुरावस्तुओं में इन प्रतीकात्मक आकृतियों का प्रयोग किया गया है। प्रतीक अक्षर छोटे छोटे समूहों में अंकित हैं जिनमें लगभग 5 अक्षरों तक का अंकन मिलता हैं। किन्तु पाकिस्तान से विकसित हड़प्पा के काल से संबंधित प्राप्त एक नए ताम्रपत्र में अब तक के सबसे अधिकतम 34 अक्षर प्राप्त हुए हैं। इन प्रतीक अक्षरों के प्रमाण हमें आरंम्भिक हड़प्पा सभ्यता से ही मिलने लगते हैं जिनमें कुछ मृदभांडों तथा मुहरों में अभिलिखित हैं। इस लिपि के अधिकांश अक्षर चित्रात्मक है, जिनमें तात्कालिक आम जन जीवन से जुड़ी वस्तुओं से जुड़ी हुई लगती है किन्तु कुछ प्रतीक व आकृतियाँ पहचानी नहीं जा सकी हैं। कुछ चिन्ह दो या दो से अधिक चिन्हों से मिलकर बने है जबकि कुछ बिल्कुल अलग हैं।

इन चित्रात्मक अक्षरों की संख्या लगभग 400–450 के आसपास आँकी गई है। यह एक बड़ी संख्या है जो किसी एक वर्ण या अक्षर के लिए फोनोंग्राम होने की ओर संकेत करता है अर्थात प्रत्येक आकृति या अक्षर एक निश्चित ध्वनि या शब्द संयोजन का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे चीनी या मिस्र के हेरोग्लिफ। 1970 में भारतीय पुरालिपि शास्त्री इरावथम महादेवन ने एक लेख में सैन्धव लिपि के 419 प्रतीकों का एक क्रम प्रस्तुत किया था। बाद में 2015 में पुरतत्वशास्त्री एवं पुरालिपि शास्त्री ब्रायन वेल्स ने इनकी संख्या लगभग 694 तक होने का दावा किया। महादेवन के शोध के अनुसार 113 प्रतीक चिन्ह ऐसे हैं जो किसी लेख अथवा लेख समूह में केवल एक बार आयें, 47 प्रतीक चिन्ह 2

बार तथा 59 ऐसे प्रतीक चिन्ह है जो 5 या उससे कम बार एक लेख समूह में आए हैं। सैन्धव लिपि में 80 प्रतिशत लेखों में केवल 67 प्रतीक चिन्हों का प्रयोग किया गया है। अधिकांश सैन्धव अभिलेख मुहरों पर मिले हैं इसलिए इनके आधार पर लेखन की उपयोगिता का अनुमान लगाया जा सकता है। वस्त्रों के अवशेषों का मुहर से उदय होना ये इशारा करता है, कि व्यापार की सामग्रियों को इनके द्वारा प्रामाणिकता दी जाती रही होगी। ऐसे भी संभव है की वस्तुओं के क्रय विक्रय के लिए टोकन में इनका प्रयोग होता रहा हो। सेलखड़ी, टेरकोटा व फेयन्स के छोटे छोटे गोटी पर भी यह लिखावट मिलती है। मुहर की तरह क्यूंकी इनका उपयोग किसी वस्तु पर निशान लगाने के लिए नहीं होता था, इसलिए इन पर मौजूद लिखावट प्रतिबिंब शैली में नहीं है। तांबे की चौकोर गोटी जिस पर पशु चिन्ह के साथ लिखावट है मोहन जोदड़ों से प्राप्त हुई है। मृदभांड़ो पर पाए गए अभिलेखों से उनके व्यावसायिक महत्व का प्रमाण मिलता है। उनको मृदभांड़ो पर अंकित करने वाले शिल्पकार साक्षर भी न हों, किन्तु निश्चित रूप से ये उन प्रतीकों को पहचानते थे। धौलावीरा के साइन–बोर्ड से उच्च स्तरीय नागरिक साक्षरता का बोध हो अथवा न हो, किन्तु इससे सैन्धव सभ्यता में लेखन के नागरिक बोध की संभावना अवश्य दिखाई देती है। इन सबसे अधिक सम्पूर्ण हड़प्पा सभ्यता में एक ही लिपि का प्रयोग उच्च स्तरीय सांस्कृतिक एकीकरण का भी प्रमाण देता है। सैन्धव सभ्यता के विशाल सांस्कृतिक क्षेत्र में विविध भाषाओं व बोलियों के अस्तित्व में होने की भी संभावनाएं बनती है तथा हड़प्पा की मुहरों में पाए गए अभिलेख किसी कुलीन शासक वर्ग की भाषा भी हो सकती है।

3.7 सैन्धव लिपि के लेखन की दिशा

अधिकांश विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि सैन्धव लिपि दायें से बाएं लिखी जाती थी, किन्तु कुछ उदाहरणों में बाएं से दायें लिखे जाने के भी प्रमाण मिले हैं। हालांकि अभी तक यह लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है इसलिए इसके लेखन की दिशा का अनुमान बाह्य प्रमाणों से लगाया जाता है जैसे लेखों में बाएं ओर के प्रतीक चिन्ह दबे हुए या कहीं–कहीं नीचे लिखे हुए मिलते हैं। जबकि जिन मुहरों पर जिनपर लेख की उल्टी छवि होती है उनमें यह दायें भाग में देखने को मिलता है। लंबे अभिलेख वुस्ट्रोफिडॉ.न शैली में लिखे हुए लगते हैं जिसमें प्रत्येक पं.क्ति विपरीत दिशा में लिखी जाती है।

सैन्धव लिपि के लिप्यांतरण का प्रयास व लिप्यांतरण में समस्या

कई विद्वानों के अनुसार यह कोई भाषाई लिपि न होकर एक संकेतात्मक

लिपि है। चुकी अभी तक हमें हड़प्पन लोगों की भाषा के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इस लिपि की प्रकृति क्या थी तथा अंकित किये हुए प्रतीक चिन्ह किस शब्द अथवा विषय को परिभाषित करते हैं। फिर भी समय समय पर कई विद्वानों ने इस लिपि को पढ़ने का प्रयत्न किया है।

डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकार जैसे विद्वानों ने भी इसे पढ़ने का प्रयास किया किन्तु कोई निर्णय नहीं निकला। भारतीय पुरातत्वविद डॉ.. एस. आर. राव के अनुसार सैन्धव लिपि प्राचीन इंडो–आर्यन भाषा की लिपि है। उन्होंने इस लिपि को पढ़ने का दावा भी किया है किन्तु बी. बी. लाल आदि विद्वान इस पाठ को संदिग्ध मानते हैं।

साधनों की अनुपलब्धता

जैसे की हमें ऊपर जाना की सैन्धव लिपि भारत वर्ष की सबसे प्राचीन लिपि है फिर भी इसे आज तक पढ़ा नहीं जा सका है। कई विद्वानों ने इसे पढ़ने का प्रयास किया है किन्तु वे सभी असफल रहे। इसका एक कारण यह भी है की हमें सैन्धव लिपि के साथ किसी भी ऐसी पढ़ी जा सकने वाली लिपि के प्रमाण नहीं मिलते जिसमें इस लिपि को किसी अन्य भाषा में लिखा गया हो। उदाहरण के लिए जब नेपोलियन 1798 में मिस्र पर आक्रमण करने गए तो वह अपने साथ 167 तकनिक व कलाविदों को लेकर गया था। नेपोलियन की सेना को मिस्र के एक बंदरगाह शहर रोसेटा (रशीद) से पत्थर का एकाश्म पुरावशेष प्राप्त हुए जिस पर प्राचीन मिस्री लिपि में अभिलेख लिखा हुआ था जो की एलेक्जेंडर के काल के आसपास का था। इस एकाश्म पर तीन लिपियों में एक ही अभिलेख को लिखा गया था, पहले मिस्री हेरोग्लिफ लिपि में, दूसरा यूनानी (ग्रीक) लिपि और तीसरी डोमेटिक लिपिं. चूँकि ग्रीक लिपि अभी भी पढ़ी जा सकती थी इसलिए इसकी सहायता से पुरालिपिशास्त्रियों ने मिस्र की प्राचीन लिपि को भी पढ़ने में सफल रहे। किन्तु सैन्धव लिपि को पढ़ने का कोई साधन अभी तक विद्वानों को नहीं मिला है।

किसी समकालीन सभ्यता में भी सैन्धव लिपि से जुड़े कोई प्रमाण नहीं मिलते जिससे दूसरी भाषा में भी पढ़ा जा सके। वैदिक संस्कृति जो सैन्धव सभ्यता के बाद विकसित हुई का इतिहास हमें ऋग्वेद से मिलता है किन्तु उस काल में ऋग्वेद किस लिपि में लिखी गई थी इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता अतः हम यह नहीं बता सकते की क्या ऋग्वेदिक जन भी सैन्धव लिपि का प्रयोग करते थे अथवा नहीं। ऋग्वेद में किसी ऐसी लिपि का वर्णन अथवा

संकेत नहीं मिलता जो सैन्धव लिपि पर संकेत करती हो। वैदिक के बाद हमें लेखन कला ब्राह्मी के आरंम्भिक प्रमाण स्पष्ट रूप से मिलने लगते हैं।

3.8 सारांश

भारतीय सभ्यता में लेखन का इतिहास विश्व की अन्य सभ्यताओं की ही तरह अत्यंत प्राचीन है। भारत में लेखन कला के प्राचीनतम साक्ष्य सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से मिलते हैं। सैन्धव पुरास्थलों से प्राप्त पुरावशेषों जैसे मृदभांड व मुहरों पर अनेक प्रकार की आकृतियों के साथ कुछ चिन्ह प्राप्त होते हैं जिसे विद्वानों के अनुसार लेखन कला का आरंम्भिक रूप माना है तथा इसे सैन्धव लिपि कहकर संबोधित किया है। सैन्धव लिपि की प्रकृति, इसकी उत्पत्ति तथा उसका आरंम्भिक ब्राह्मी से इसके संबंध पर विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। कुछ इसे केवल प्रतीक मानते हैं, कुछ इसे चित्रात्मक लिपि मानते हैं। कुछ इस लिपि की उत्पत्ति भारतीय मानते हैं, जबकि कुछ इसका संबंध विदेशी लिपियों से जोड़ते हैं। इस लिपि का प्रसार सम्पूर्ण सैन्धव सभ्यता में मिलता हैं। किन्तु सैन्धव लिपि का विकास आगे चलकर हुआ या नहीं तथा मौर्यकाल में प्रयुक्त ब्राह्मी का इससे कितना संबंध है इस पर भी विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। इसे पढ़ने के अनेक प्रयास हो चुके हैं किन्तु अभी तक कोई इसमें सफल नहीं हुआ है।

जैसा की हमने पिछले अध्यायों में जाना की विद्वान इस मत को नकारते हैं की वैदिक आर्यों जैसे सुसंस्कृत जन लेखन कला से अनभिज्ञ थे। भले ही हमें उनके लेखन कला के स्वरूप का ज्ञान न हो किन्तु यह निश्चित है लेखन कला भारत में कम से कम वैदिक काल में अवश्य विकसित थी। ऐसे में सैन्धव लिपि भारत में लेखन कला के उद्‌भव व प्राचीनता के मूल के रूप में सर्वाधिक संभव स्रोत माना जा सकता है। क्योंकि सैन्धव काल के बाद हमें लेखन कला का व्यवस्थित प्रमाण मौर्य काल से दिखने लगता है। ऐसे मंन यह संभव नहीं की हड़प्पा सभ्यता से लेकर मौर्य काल के बीच के काल में लोग लिखना न जानते हो। भले ही हमें इसके प्रमाण नहीं मिलते जिसका कारण संभवतः नश्वर लेखन सामग्रियों का प्रयोग हो सकता है, किन्तु यह संभव है कि ब्राह्मी का स्वरूप कहीं न कहीं सैन्धव लिपि से विकसित हुआ हो।

3.9 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ. शिवस्वरुप सहाय,
2. भारतीय पुरालिपि, डॉ. राजबली पाण्डेय
3. प्राचीन एवं पूर्व–मध्यकालीन भारत का इतिहास, डॉ. उपिन्दर सिंह

4. The Indo&Sumeria-n seals deciphered &L.A.Waidel

5. Prehistoric civilization of the Indus Valley&KN Dixit

6. The script of HarappaAnd Mohenjo Daro & it's connection with other scripts

7. https://ancient&asia-&journal.com/articles/10.5334/aa.12317, Vasant Shinde, Rick J Wills

8. The Origin, ContextAnd Function of the Indus Script: Recent Insights from Harappa.JM Kenoyer

9. Mahadevan, Iravatham (1977). The Indus Script: Text, ConcordanceAnd Tables. New Delhi:Archaeological Survey of India-

10. TheArchaeologyAnd Epigraphy of Indus Writing. Oxford,2015 BK Wells

11. The Indus Civilization:A Contemporary Perspective. 2002, Possehl,Gregory L

3.10 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. भारत में लेखन कला के सबसे प्राचीन प्रमाण किस सभ्यता से प्राप्त होते हैं ?

2. सैन्धव सभ्यता के पुरावशेषों मे प्राप्त संकेतो के लिपि होने के समर्थन में दिए गए मतों पर लेख लिखिए।

3. सैन्धवलिपि के विदेशी मूलों से उत्पत्ति के तर्कों पर प्रकाश डालिए।

4. सैन्धवलिपि की भारतीय मूल से उत्पत्ति के तर्कों पर प्रकाश डालिए।

5. सैन्धवलिपि की प्रकृति व उसके लेखन की दिशा आदि पर लेख लिखिए।

6. सैन्धवलिपि के लिपयांतरण व उसे पढ़ने में आने वाली समस्या पर लेख लिखिए।

इकाई 4 : ब्राह्मी लिपि का उद्‌भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्‌देश्य

4.3 ब्राह्मी की प्राचीनता

4.4 ब्राह्मी का उद्‌भव

4.4.1 विदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

4.4.2 यूनानी उद्‌भव

4.4.3 सेमेटिक उत्पत्ति

4.4.4 स्वदेशी (भारतीय) उत्पत्ति का सिद्धांत

4.5 ब्राह्मी का विकास

4.6 सारांश

4.7 सदंर्भ ग्रन्थ

4.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

ब्राह्मी भारतीय इतिहास में सफलतापूर्वक पढ़ी जा सकने वाली सबसे प्राचीन भाषाओं में से सबसे प्राचीन है। इस लिपि का इतिहास सर्वमान्य रूप से ई.पू. तीसरी सदी (मौर्यकाल) तक जाता है। 19 वीं शताब्दी में जब ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल में यूरोपीय विद्वानों व शोधकर्ताओं की रुचि भारतीय इतिहास तथा भारतीय संस्कृति में बढ़ने लागी थी तब उन्होंने भारतीय इतिहास पर शोध करना आरंभ करना आरंभ कर दिया। कई पुरतत्ववेत्ताओं ने अनेकों पुरास्थलों की खोज की थी जिसमें तक्षशिला से लेकर बोध गया, नालंदा आदि कई प्राचीन पुरास्थल प्रकाश में आए। कई पांडुलिपियों, व साहित्यों का अनुवाद करवाया गया। इन्हीं खोजों में कई अभिलेखों की भी खोज हुई जिसमें प्राचीन ब्राह्मी लिपि के प्रमाण मिले इस लिपि का पूर्ण विकसित रूप में व्यापक रूप में प्रयोग अशोक के अभिलेखों में हुआ है जो की लगभग ई.पू. 3री सदी के माने गए हैं। इसके अतिरिक्त पिपरहवा एवं सोहगौरा आदि अभिलेख भी प्राप्त हुए है

जो अनिश्चित रूप से अशोक के काल के आसपास के हैं। ब्राह्मी आज के प्रचलित लगभग सभी उत्तर भारतीय लिपियों की जननी मानी जाती है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय में हम ब्राह्मी की प्राचीनता, उसके उद्भव के अलग–अलग स्रोतों पर विद्वानों के अलग–अलग मतांतरों का अध्ययन करेंगे।

4.3 ब्राह्मी की प्राचीनता

जब प्राचीन लेखन कला की प्राचीनता के संबंध शोध किया जाता है तो हमें ज्ञात होता है की जहाँ पारंपरिक एवं अनुश्रौतिक स्रोत लेखन कला की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हैं, वहीं वे ब्राह्मी लिपि का उल्लेख भी करते हैं। चीनी विश्वकोश फा–वान–शू–लिन तीन लिपियों का उल्लेख करते हैं – ब्राह्मी, कइअलू तथा तनसकी। महमूद गजनी के साथ भारत आया अरबी लेखक व इतिहासकार अलबरूनी लिखता है की ब्रह्मा ने एक लिपि का आविष्कार किया था जिसका नाम ब्राह्मी था तथा वह बाएं से दायें लिखी जाती थी।

जैन परम्परा के अनुसार आदि पुराण में लिखा है की ऋषभनाथ ने एक लिपि का आविष्कार अपनी पुत्री को लिखना सीखाने के लिए किया था। चूँकि उनकी पुत्री का नाम बम्पी था इसलिए इस लिपि का नाम भी ब्राह्मी पड़ा।

4.4 ब्राह्मी का उद्भव

ब्राह्मी के उद्भव को लेकर विद्वानों में अनेक मत प्रचलित हैं। जिसमें हम सबसे पहले परम्पराओं का अध्ययन करेंगे। प्रायः भारतीय तथा विदेशी प्रत्येक परम्परा इस लिपि का संबंध भारत से जोड़ती है। किन्तु कुछ विदेशी विद्वानों ने तर्कों के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है की ब्राह्मी के उद्भव का मूल स्रोत भारतीय न होकर विदेशी है। जबकि भारतीय विचारक इस मत को नहीं मानते। भारत में लेखन के आविष्कार की प्रेरणा सुमेर व बेबीलोन की भांति व्यापारिक न होकर धार्मिक थी ऐसे में यह नितांत असंभव है की आर्य संस्कृति के मूल भूमि उत्तरी भारत के ब्राह्मणों ने अपनी पवित्र ब्राह्मी लिपि के सूत्र सिंधु और सुराष्ट्र के बंदरगाहों से ग्रहण किए हों। ब्राह्मी लिपि के मूल की समस्या के समाधान के मार्ग में विद्वानों के सामने सबसे बड़ी कठिनाई है। ई.पू. 5वीं सदी से पूर्व ब्राह्मी लेखन के प्रमाण। इस कारण ब्राह्मी के मूल के लिए अनेकों मतों की स्थापना की गई है जिन्हे मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. ब्राह्मी के विदेशी स्रोत से उत्पत्ति का मत,
2. ब्राह्मी के स्वदेशी उत्पत्ति का मत।

अध्ययन की दृष्टि से ब्राह्मी के उद्‌भव के सभी मतों को निम्नांकित क्रमरूप रखा जा सकता है –

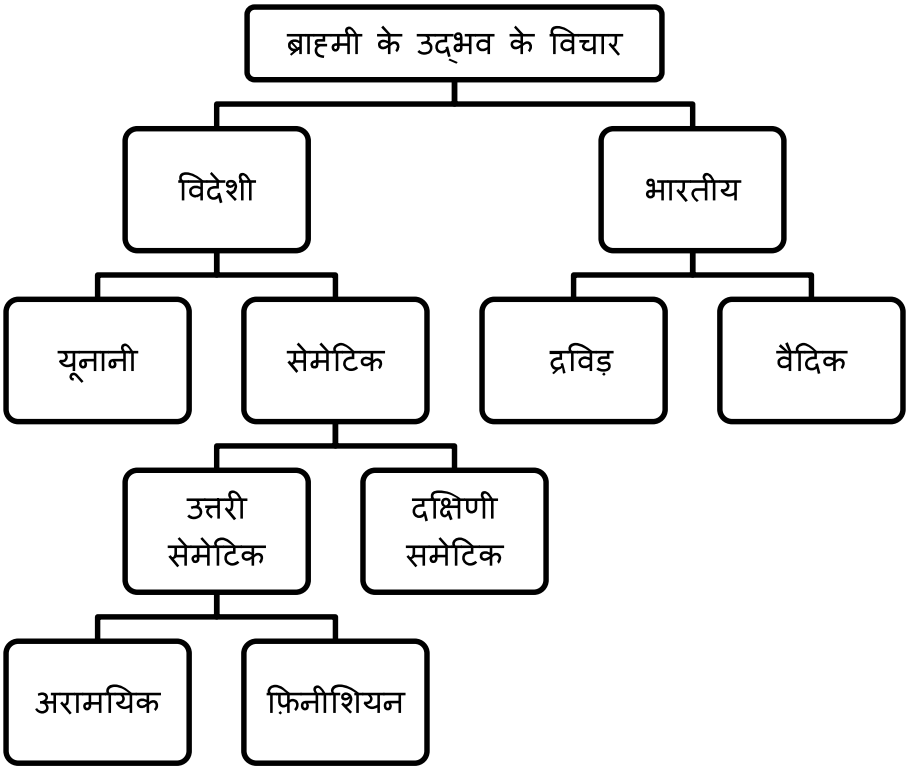

4.4.1 ब्राह्मी के विदेशी उत्पत्ति का मत

कई विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति विदेशी लिपियों के प्रभाव से हुई है। किन्तु इस मत में भी कई विभाजन है। विद्वानों में ब्राह्मी की उत्पत्ति को लेकर भी कई मत हैं कुछ इसे यूनानी प्रभाव से निकला हुआ मानते हैं जबकि कुछ इसे समेटिक लिपियों से निकला हुआ मानते हैं। इन मतों पर विद्वानों में मत निम्नानुसार हैं –

4.4.2 यूनानी उद्‌भव

ओर्टफीड म्वेलर, स्माइल सेनार्ट, जेम्स प्रिंसेप, रावेल डी रोशे आदि विद्वानों ने भारतीय ब्राह्मी तथा यूनानी लिपि में समता स्थापित करने का प्रयास किया है। इनके अनुसार ब्राह्मी लिपि का उद्‌भव यूनानी लिपि के भारत आगमन से हुई है। इस मत के समर्थन में विद्वानों का तर्क है कि यूनानी लिपि

फिनीशियन व्यापारियों द्वारा भारत लाई गई थी। उन्होंने यह संभावना भी दी कि सिकंदर के आगमन के बाद यूनानी लिपि का संपर्क भारत से हुआ और तब भारतीयों ने ब्राह्मी का प्रचलन आरंभ किया।

डॉ.ब्यूलर के अनुसार भारत में लेखन कला का प्रचलन सिकंदर से भी पहले ई.पू. 8 वी–9 वी सदी से था, यह तर्क भी की फोनेशियन व्यापारियों के माध्यम से यह लिपि भारत आयी कहना भी उचित नहीं है क्योंकि फोनेशिया में लिपि का प्रचलन यूनानी लिपि से भी पहले से था। ऋग्वेद में फोनेशियन व्यापारियों को पणी कहा गया है। ये भारतीय मूल के थे जो बाद में भूमध्यसागर के तट पर जाकर बस गए और वहां अपनी बस्तियां स्थापित की। इससे यह माना जा सकता है की यह लिपि भारत से पश्चिमी विश्व में गई होगी। यह भी संभव है की इस लिपि का अनुकरण करके यूनानियों ने लेखन कला सीखी हो।

4.4.3 सेमेटिक मूल

सर विल्यम जोन्स आदि विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है की ब्राह्मी का उद्‌भव सेमेटिक लिपि से हुआ है किन्तु इन विद्वानों में भी एक मत भिन्नता है। कुछ इसे उत्तरी सेमेटिक से निकली मानते हैं, कुछ दक्षिणी सेमेटिक लिपि से और कुछ फोनेशियन लिपि से

उत्तरी सेमेटिक मूल से उत्पत्ति

ब्यूलर, डेविड, डिरिन्जर आदि विद्वान मानते है की ब्राह्मी अक्षरों का उद्‌भव उत्तरी सेमेटिक लिपि से हुआ है। ब्यूलर के अनुसार "सीधे प्राचीन उतात्री स्मेतिक वर्णों से जिनका फोनेशिया से लेकर मेसोपोटामिया तक समान रूप दिखाई पड़ता है, ब्राह्मी वर्णों का दुभाव मन्नते पर ये कठिनाइयाँ दूर हो जाती है। वेबर द्वारा प्रस्तुत कतिपय मान्य स्पक्ष्यों का हाल ही में प्रकाश में आये हुए रूपों की सहायता से बड़ी आसानी से निराकरण किया जा सकता है, और उन सिद्धांतों को मान्यता देना कठिन नहीं है कि जिनके अनुसार सेमेटिक चिन्ह भारतीय चिन्हों में परिवर्तित हो गए हैं।"

उत्तरी स्मेतिक वर्णों से ब्राह्मी की व्युत्पत्ति दर्शाने के लिए डॉ..ब्युलर ने प्राचीन भारतीय वर्णों की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है –

1. वर्ण यथासंभव सीधे रखे जाते हैं तथा ट, ठ, व, ब चिन्हों के अपवादों को छोड़कर उनकी ऊंचाई समान रखी जाती है।
2. अधिकांश वर्ण खड़ी रेखाओं से बने होते हैं। इनमें जोड़ की रेखाएं

अधिकांशतः नीचे की ओर लगी है और कभी कभी नीचे व् ऊपर दोनों में लगी है तथा बहुत कम मध्य में प्रयोग हुई है किन्तु केवल शीर्ष भाग में योग नहीं है।

3. वर्णों के शिरोभाग पर अधिकतर खड़ी रेखा का सिरा पाया जाता है इससे कम छोटी आड़ी पाई, और उससे भी कम अधोमुखी कोणों के शीर्ष भाग पर वक्ररेखा व् अपवाद स्वरुप म (४) व् झ (१)के रूप में ऊपर जाने वाली रेखाएं। कहीं भी लटकती हुई रेखा के साथ त्रिभुज या वृत्त के ऊपर लटकती हुई खड़ी या तिरछी रेखा की सहायता से अगल–बगल रखे गए अनेक कोणों से युक्त शीर्ष भाग नहीं मिलता।

4. यदि उत्तरी सेमेटिक अक्षरों के भारी शिरों को नीचे कर उनका स्वरूप उल्टा कर दिया जाए तथा उनके किनारों को खुला छोड़ दिया जाए तो ब्राह्मी अक्षरों की समता में उन्हे लाया जा सकता है तथा लेखन क्रम की दिशा में परिवर्तन करने के कारण प्रायः चिन्ह दायें से बाएं हो जाएंगे।

5. ब्राह्मी लिपि में प्रयुक्त 22 अक्षर उत्तरी सेमेटिक अक्षरों से बने हैं, कुछ प्राचीन फोनेशियन अभिलेखों के अक्षरों से बने है, बहुत कम अक्षर मेसा के प्रस्तर अभिलेखों के अक्षरों से लिए गए हैं। इनके पाँच अक्षर असीरिया के बट खरे पर अंकित अक्षरों के अननुकरण पर बने हैं।

इसके विचार की पुष्टि के लिए उनके तर्क हैं –

1. ब्राह्मी स्वतंत्र रूप से भारतीयों का आविष्कार नहीं है यह व्यापारिक सुविधाओं के लिए सेमेटिक लिपियों से भारतीयों ने लिया है।

2. अक्षरों के सहारे स्वर व व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण की भावना बिना किसी संदेह के ब्राह्मी में पश्चिमी एशिया से अनुकरण की गई है।

ब्राह्मी के उत्तरी सेमेटिक लिपि से उत्पत्ति सिद्ध करने के लिए डॉ. डेविड डीरिन्जर ने निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं –

1. आरंभ में ब्राह्मी दायें से बाएं लिखी जाती थी व इसके चिन्ह पूर्णतयः सेमेटिक अक्षरों की तरह हैं।

2. विद्वानों के अनुसार भारतीय परम्परा में बोलचाल कुछ दूसरे प्रकार की थी। अक्षरों का विकास निर्धारित करना कठिन है। सेमेटिक अक्षरों में स्वरचिन्हों का अभाव था। इन स्वरचिन्हों की रचना सेमेटिक अक्षरों में भारतीयों ने नहीं पर यूनानियों ने की।

उत्तरी सेमेटिक अक्षरों के संबंध में प्रस्तुत तर्कों को सुव्यवस्थित रूप में हम इस प्रकार रख सकते हैं –

1. ब्राह्मी व सेमेटिक अक्षरों की निर्माण कला में समता दिखती है।
2. आरंम्भिक अक्षरों के लिखने की परम्परा सेमेटिक थी। भारत मे चित्रकारी भाषा में पहले लेखन कला विकसित हुई। किसी भी चित्रकारी लिपि से अक्षरों का विकास संभव नहीं हो सकता।
3. ई.पू. 5 वीं सदी के पहले भारतीयों में इतिहास लिखने की परम्परा का कोई प्रमाण प्रत्यक्ष रूप से नहीं मिलता। इस समय भारत का संपर्क पश्चिमी विश्व से हुआ था जिसके बाद पश्चिमी एशिया की देन के परिणामस्वरूप भारतीयों ने अक्षरों का विकास किया।
4. प्राचीन काल में भारतीय दायें से बाएं की ओर लिखते थे जैसे सेमेटिक लिपियाँ लिखी जाती है।

इन मतों के विरोध में भारतीय विद्वानों ने निम्नांकित तर्क प्रस्तुत किया है।

1. डॉ. ब्यूलर के अनुसार ब्राह्मी अक्षरों का उद्‌भव सेमेटिक अक्षरों से निकालना कठिन है, अतः उत्तरी सेमेटिक लिपियों से ब्राह्मी की उत्पत्ति की बात चौथे तर्क के आधार पर पूर्वानुग्रह से एक धारणा को सिद्ध करने के लिए ही प्रतिपादित किया गया है। डॉ. ब्यूलर के तर्कों के आधार पर किसी भी पश्चिमी लिपि से भारतीय लिपियों की समानता दिखाई जा सकती है।
2. ब्राह्मी तथा अरामयिक लिपि में कोई एकरूपता नहीं दिखती। यहाँ एक रूपट दिखने के लिए अनेकों परिवर्तनों की आवश्यकता बताई गई है। जबकि इस प्रकार के परिवर्तनों के माध्यम से किसी भी लिपि के अक्षरों की संत दूसरी लिपि से स्थापित की जा सकती है। डॉ.. गौरीशंकर ओझा के अनुसार उपरोक्त तर्कों के माध्यम से अंग्रेजी के अक्षरों से ब्राह्मी की उत्पत्ति दिखाई जा सकती है और साथ ही इसके उलट ब्राह्मी से किसी भी लिपि की उत्पत्ति दिखाई जा सकती है।
3. फोनेशियन वास्तव में भारतीय लोग ही थे जो व्यापार करते हुए पश्चिमी विश्व में जाकर रूके थे, ऋग्वेद में इन्हें पणी कहा गया है। वे अपने साथ अपनी लिपि लेकर गए जो की ब्राह्मी थी। पश्चिमी देशों के लोग इस लिपि को ठीक से अपना नहीं सके तथा बाएं से दायें लिखने के स्थान पर दायें से बाएं लिखने की परम्परा का आरंभ हुआ। कुछ अक्षर

अपने वास्तविक स्वरूप की अपेक्षा कुछ परिवर्तन कर अपना लिए गए। इसी कारण पश्चिमी लिपि के अक्षर ब्राह्मी अक्षरों की अपेक्षा उल्टे–सीधे दिखते हैं।

4. चित्रकारी लिपि से अक्षरों का विकास नहीं हो सकता यह तर्क सही नहीं लगता। प्राचीन काल में प्रायः सभी सभ्यताओं में सर्वप्रथम चित्रकारी अक्षरों का ही विकास हुआ था। बाद में विभिन्नन अक्षर उन्हीं से निकले। जहाँ तक भारतीय अक्षरों आदि का प्रश्न है इसे सैन्धव सभ्यता से जोड़ा जा सकता है। सैन्धव लिपि को पूर्णतः चित्रकारी लिपि कहना उचित नहीं लगता। सैन्धव लिपि से अक्षरों के विकास का क्रम स्पष्ट दिखाई पड़ता है इसलिए यह संभव है की सैन्धव लिपि के अक्षरों से हुआ हो। हालांकि सैन्धव लिपि से विकसित होकर किन सोपानों से होकर अशोक कालीन ब्राह्मी तक पहुँची यह कहना कठिन है।

5. ब्यूलर ने ब्राह्मी के दायें से बाएं लिखे जाने के समर्थन में अशोक के अभिलेखों के अक्षर, एरागुडी शिलालेख के अक्षर और एरण के सिक्के पर अंकित अक्षरों का उल्लेख किया है।

ब्यूलर के इन तर्कों के विरुद्ध डॉ.. गौरीशंकर ओझा ने कहा कि अभिलेखों में लिखे हुए उल्टे अक्षर लेखकों की गलती हो सकती है। हुल्श तथा प्लीट भी ब्यूलर के मतों का समर्थन नहीं करते। डॉ.. राजबली पाण्डेय ने इस संबंध में यह तर्क दिया की एरागुडी के अभिलेख में संभवतः नवीन प्रयोग किया गया था। वहाँ अभिलेख की सम्पूर्ण पं.क्तियाँ दायें से बाएं नहीं चलती पर एक बाएं से दायें चलती है तो दूसरी दायें से बाएं चलती है। अशोक के अभिलेखों में अंकित उल्टे अक्षर संभवतः लेखकों के दोष के कारण अक्षरों में दिखाई पड़ता है। यही कारण एरण से प्राप्त सिक्कों के संबंध में भी सत्य प्रतीत होता है।

श्री अहमद हसन दानी ने उत्तरी सेमेटिक अक्षरों से ब्राह्मी की उत्पत्ति के मत के समर्थक हैं जिसके संबंध में उनके तर्क निम्न है –

1. ब्राह्मी अक्षरों की संख्या भारतीय वर्णमाला से कम है यह वर्णमाला ब्राह्मी की उपज नहीं।

2. ब्राह्मी के चिन्ह मूलतः दो भागों में बाटें जा सकते हैं – मूल स्वर और मूल व्यंजन। 3 मूल स्वर चिन्ह है और 19 मूल व्यंजन चिन्ह। इस तरह 22 सेमेटिक अक्षरों के बराबर है।

3. ब्राह्मी की उत्पत्ति कोई अलग घटना नहीं है, इसका विचार करते समय

तत्कालीन सभ्य विश्व की संस्कृतियों के परस्पर संपर्कों की अवहेलना नहीं की जा सकती।

श्री दानी ने उपरोक्त तर्क निर्बल प्रतीत होते हैं। ब्राह्मी का प्रयोग प्राकृत भाषाओं के लिखने के लिए किया जाता था जिसमें संस्कृत के अक्षर कम है। दूसरे तर्क में जिन 22 अक्षरों का चुनाव कर ब्राह्मी का उत्तरी सेमेटिक अक्षरों से समता दिखाने का प्रयास किया गया है उसमें कोई आधार नहीं मिलता जैसे यह चुनाव मनमाने ढंग से किया गया हो। तीसरा तर्क भी निर्बल प्रतीत होता है क्योंकि अशोक द्वारा प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि के अक्षरों के बाह्य आकारों तथा ध्वनियों की संत किन्हीं फोनेशियन अक्षरों से नहीं की जा सकती। अतः डॉ.. बर्मा का विचार है की ब्राह्मी को किसी अन्य संस्कृति का मुखापेक्षी नहीं बनना पड़ा।

अतः उपरोक्त तर्कों ये यही निश्चित होता है की ब्राह्मी का उद्‌भव उत्तरी सेमेटिक लिपि से नहीं हो सकता।

4.4.3 दक्षिणी सेमेटिक मूल से उत्पत्ति

टेलर, डीके व कैनन आदि विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी का उद्‌भव दक्षिणी सेमेटिक लिपि से हुआ है। उनके इस मत का भी कोई आधार नहीं दिखता क्योंकि अरब तथा भारत के बीच किसी व्यापारिक संबंध भले ही प्राचीन काल से हों किन्तु भारतीय लिपि में अरबों का कोई भी प्रभाव भारत में तब तक नहीं दिखता जब तक इस्लाम के प्रचार के लिए अरब भारतीय सीमा में नहीं आते। अतः अरबी अक्षरों से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति का मत निराधार सिद्ध होता है।

4.4.3 फोएनेशियन मूल से उत्पत्ति

वेबरम् बेन्फे, जेन्सन, ब्यूलर जैसे कई विद्वानों का मत है की ब्राह्मी की उत्पत्ति फोनेशियन लिपि से हुई है। इस मत के समर्थन में उनके तर्क है की लगभग एक–तिहाई फोनेशियन वर्ण अपने अनुरूप ब्राह्मी चिन्हों के प्राचीनतम रूप के समान थे तथा एक–तिहाई अन्य वर्ण कुछ–कुछ मिलते जुलते थे शेष में न्यूनाधिक समता दिखती है।

इस मत में आपत्ति यह है की ब्राह्मी लिपि के प्रादुर्भाव के समय भारतियों तथा फोनेशियन लोगों में कोई सीधा संबंध नहीं था। इसके अतिरिक्त फोनेशियन लिपि का प्रभाव पश्चिमी एशिया की पड़ोसी लिपियों पर भी नगण्य है। डॉ.. राजबली पाण्डेय के अनुसार भारत तथा भूमध्यसागर के पूर्वी तट के मध्य ई.पू. 1500 से ई.पू. 400 के मध्य संबंध रहा होगा। किन्तु इसमें प्रश्न उठता है की कौन सी लिपि किसकी ऋणी है ? और यह प्रश्न फोनेशियन लोगों के मूल से

संबंधित है। विद्वान तथा यूनानी इतिहासकार भी यह बात स्वीकार करते हैं की फोनेशियन लोग समुद्री मार्ग से पूर्व की दिशा से आए थे। ऋग्वैदिक प्रमाणों से भी फोनेशियन लोगों का मूल भारत की लक्षित होता है। फोनेशियन तथा पश्चिमी एशिया के सेमेटिक वर्णों में साम्य का अभाव यह दर्शाता है की फोनेशियन लोग पश्चिमी एशिया के मूल निवासी न होकर बाहर से आए हुए थे। अतः यह कहना पूर्णतः निराधार सिद्ध होता है की ब्राह्मी लिपि का उद्भव फोनेशियन लिपि से हुआ है।

ब्राह्मी के स्वदेशी उत्पत्ति का मत

पारंपरिक स्रोत से ब्राह्मी का ज्ञान

साधारणतया यह धारणा प्रचलित है की लिपि का आविष्कार ब्राह्मणों द्वारा किया गया था। इसकी स्थापना आर्यों द्वारा वेदों की सुरक्षा के लिए किया गया था। इसका प्रयोग वैदिक साहित्यों की प्रतिलिपि बनाना एवं अध्यापन द्वारा वैदिक साहित्यों को स्थायी बनाने के लिए करते थे। बाद के काल में बौद्ध व जैन लेखकों ने भी इसे स्वीकारा। आधुनिक लेखक भी जो इसे सेमेटिक लिपियों से निकला बताते हैं यह स्वीकार करते हैं की प्राचीन भारतीय ब्राह्मणों ने इस लिपि को पश्चिमी एशिया से व्यापार के माध्यम से प्राप्त कर इसे पूर्णता प्रदान की।

जैन परम्परा से यह ज्ञात होता है की जैन तीर्थंकर आदिनाथ ने अपनी पुत्री जिसका नाम बम्पी था उसे पढ़ाने के लिए एक लिपि का अविष्कार किया था। जिसके कारण आदिनाथ की पुत्री के नाम पर ही इस लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा। जैन ग्रन्थ भगवतीसुत्त का आरंभ ही इस कथन से होता है –'नमो बम्पिएलिखिए'।

पूर्णः ऋग्वेद में 'ब्रह्मि' शब्द का उल्लेख आता है जो की पाणिनि के अनुसार अशुद्ध है तथा उसका शुद्ध रूप 'ब्राह्मी' है।

चीन के विश्वकोश फा–वा–लिन में प्राचीन काल की तीन लिपियों का उल्लेख है जिसमें सबसे पहली ब्राह्मी है। इसके अनुसार ब्राह्मी पूर्ण रूप से स्वतंत्र लिपि थी तथाइसे फान (ब्रह्मा) ने बनाया था तथा यह बाएं से दायें लिखी जाती थी।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है की ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति का मूल भारत ही है।

ब्राह्मी के भारतीय उत्पत्ति पर भी विद्वानों के विभिन्नन मत हैं कुछ

इसकी उत्पत्ति द्रविड़ लोगों द्वारा मानते हैं तो कुछ इसे वैदिक आर्यों द्वारा विकसित मानते हैं जिन पर विद्वानों के विचार निम्न हैं –

द्रविड़ मूल से उत्पत्ति

एडवर्ड टॉमस तथा इनके मत के अन्य विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी लिपि का अविष्कार द्रविड़ लोगों द्वारा किया गया था। इस मत के लिए उनका आधार है कि आर्यों के तथाकथित आक्रमण के पूर्व द्रविड़ों का सम्पूर्ण भूमि पर निवास करते थे। वे सांस्कृतिक रूप से अधिक उन्नत थे इस कारण संभव है की ब्राह्मी का अविष्कार द्रविड़ लोगों ने ही किया होगा।

भारतीय उत्पत्ति के मत के समर्थक विद्वानों के अनुसार यह कल्पना मूलतः असत्य है क्योंकि द्रविड़ लोगों का मूल स्थान दक्षिण भारत में था और वैदिक आर्यों का उत्तर भारत में,जबकि ब्राह्मी के अत्यधिक प्रमाण उत्तर भारत में मिलते हैं न की दक्षिण भारत में। इसके अतिरिक्त द्रविड़ भाषा में केवल प्रथम एवं पं.चम अक्षरों का प्रयोग होता है, जबकि वैदिक आर्यों की भाषा में पांचों अक्षरों का प्रयोग होता है। ध्वनिशास्त्र के आधार पर भी यही सिद्ध होता है की ब्राह्मी से तमिल लिपि का विकास हुआ है अर्थात दक्षिण की लिपियों में अल्पसंख्यक वर्ण ब्राह्मी वर्णों से लिए गए हैं।

वैदिक आर्य मूल से उत्पत्ति

कनिंघम, डाउस, लैसेन जैसे विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी का उपविष्कार वैदिक आर्यों ने किया है। आर्य पुरोहितों ने देशीय भारतीय चित्रलिपि से ही ब्राह्मी अक्षरों का विकास किया। कनिघम के अनुसार मानव जाति के लेखन का प्रथम प्रयास भावाभिव्यक्ति के लिए चित्रों के मध्य से किया गया होगा। इस आधार पर उनका मानना था की ब्राह्मी का आरंम्भिक रूप भी चित्रात्मक रहा होगा जो बाद में पदात्मक और फिर अक्षरों के रूप में विकसित हुआ होगा। उनका यह भी विश्वास है की भारतीय अक्षर दुभाव पूर्णतः भारतीय हैं किन्तु भारतीयों ने अपनी इस व्यवस्था का मिस्र से अनुकरण किया है, किन्तु यह मत भ्रामक है। ब्युलर इस मत का वरोध करते हैं ब्युलर के अनुसार भारतीय अक्षरों के विकास में कहीं भी चित्रात्मक लिपि का इतिहास नहीं है।

डॉ.. प्राणनाथ विद्यालंकार जी के अनुसार सिन्धु घटी से प्राप्त पुरावशेषों से उत्कीर्ण अक्षरों के आधार पर भले ही हम यह मान ले कि यह चित्रात्मक लिपि है किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि यह अक्षर न तो चित्रकारी लिपि में हैं न गुढ़ाक्षर में। सभवतः डॉ.. मार्शल ने सैन्धव लिपि को ही ब्राह्मी का

मूल माना है।

डॉ.. आर. श्यामशास्त्री जी के अनुसार ब्राह्मी के वर्ण देवों को व्यक्त करने वाले चिन्हों व् प्रतीकों से निकले हैं जिन्हें देवनगर कहा जाता था जिसकी पुष्टि तांत्रिक ग्रन्थ करते हैं। किन्तु इस मत को निर्बल हैं क्योंकि शामशास्त्री जी द्वारा प्रस्तावित मतों का आधार परवर्ती ग्रंथों से है, तथापि इस मत को पूर्णतः अमान्य भी नहीं किया जा सकता क्योंकि यह ब्राह्मी वर्णों के चित्रात्मक लिपिपरक मूल के अत्यंत समीप है।

डॉ.. डीरिन्जर ने ब्राह्मी के स्वदेशी मूल होने के मत पर निम्न मत दिए हैं –

1. एक ही समय पर किसी देश में दो विभिन्नन लिपियों का प्रचलन यह सिद्ध नहीं करता की दोनों एक–दूसरे पर निर्भर है।
2. यदि सैन्धव लिपि और ब्राह्मी के आकार प्रकार में साम्य सिद्ध हो भी जाए तब भी ब्राह्मी का सैन्धव लिपि से निकलने का तर्क तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक दोनों लिपियों के समान चिन्हों के लिए लिए प्रयुक्त ध्वनि भी समान सिद्ध ना हो जाए। सैन्धव लिपि में अक्षरों में अक्षरों का पर्ययोग नहीं हुआ है, सैन्धव लिपि संभवतः सांकेतिक पद्धति या मिश्रित अक्षर– भावपरक लिपि थी जब की ब्राह्मी अर्धाक्षरी लिपि है।
3. सैन्धव लिपि में अक्षरों का प्रयोग नहीं हुआ है, सैन्धव लिपि संभवतः सांकेतिक पद्धति या मिश्रित अक्षर–भाववपरक थी जब की ब्राह्मी अर्धाक्षरी लिपि है।
4. वैदिक काल में लेखन कला के कोई प्रमाण नहीं मिलते लेखन कला के प्रमाण बौद्ध काल से ही मिलते हैं।

अभिलेखों के आधार पर यह सिद्ध होता है की ब्राह्मी के लेखन की कला के प्रमाण ई.पू. छठी सदी से मिलता है।

ई.पू. 8वीं–6ठी सदी के लगभग भारतीय व्यापारिक जीवन में उन्नति कर ली थी और उनका संपर्क भारत के बाहरी सभ्यताओं से होने लगा था इसी संपर्क के बाद भारतीयों ने लेखनकला पश्चिमी विश्व से सीखी थी या उनका अनुकरण किया।

डॉ. डीरिन्जर के उपरोक्त तर्कों के विरोध में ब्राह्मी के भारतीय मूल के समर्थक विद्वानों ने निम्न तर्क दिए हैं –

1. दोनों लिपियाँ भले ही एक ही देश में प्रचलित थी परंतु दोनों का विकास दो विभिन्नन कालों में हुआ, इसलिए दोनों का संबंध एक दूसरे से स्थापित करना बड़ा स्वाभाविक है, और परवर्ती लिपि का पूर्ववर्ती लिपि से निकलने की संभावना तब तक बनी रहेगी जब तक इसे विरुद्ध न सिद्ध कर दिया जाए।

2. डॉ. गौरीशंकर ओझा के अनुसार प्रारंभ से ही वेद लिखित थे, इन्हे श्रुति केवल इसलिए कहा जाता है की क्योंकि इन्हे श्रवण करके कठस्थ किया जाता था। इसमें संदेह नहीं की बौद्ध व जैन धर्मों ने प्राकृत को व लेखन को लोकप्रिय बनाया किन्तु वे भी वैदिक व संस्कृत भाषा के लेखन की पूर्व कल्पना करते हैं, बुद्ध ने भी अपने शिष्यों को छंदों में अपने संवाद लिखने का निषेध किया था।

3. छठी सदी ई.पू. के पूर्व की एक युगल मूर्ति प्राप्त हुए है, जिसमें एक पुरुष व एक स्त्री साथ खड़े हैं तथा स्त्री के हाथों में मुड़ी हुई पुस्तक है जिससे यह स्पष्ट होता है की ई.पू. छठी सदी में लेखन कला का प्रचलन था।

4. सैन्धव लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है, इसलिए यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता की यह सांकेतिक पद्धति है या अर्धाक्षरी, और जब तक सैन्धव लिपि को पढ़ा नहीं जा सकता तब तक यह नहीं कहा जा सकता की उसके प्रतीकों से सम्बद्ध ध्वनि क्या थी।

5. यह कहना की "वैदिक काल में लेखन की कला नहीं थी तथा वैदिक देव मण्डल में लिपि का कोई देवता नहीं है किन्तु ज्ञान व विद्या की देवी सरस्वती है" ठीक नहीं है। वैदिक देवमण्डल में ब्रह्मा व सरस्वती को हाथों में वेदों को पुस्तक के रूप में लिए हुए दर्शाया जाता है। गणेश आदि देवता लेखन से सम्बद्ध किए गए हैं तथा वैदिक साहित्यों में लेखन के प्रमाण मिलते हैं जैसा की हमने पिछले अध्यायों में भी देखा।

6. पश्चिमी विश्व में लिपि के आविष्कार का कोई ठोस प्रमाण नहीं है जबकि कई अनुश्रुतियाँ यह सिद्ध करती है की उन्होंने लेखन कला बाहर से आए लोगों से सिखी थी। अतः यह कहना की भारतीयों ने लेखन कला पश्चिमी विश्व से सीखी गलत सिद्ध होता है।

7. ब्राह्मी लिपि का मूल भारतीय है इसकी अपनी अनेक विशेषताएं है जो किसी अन्य लिपि में नहीं है जैसे –

7.1 ब्राह्मी अक्षर उच्चारण के आधार पर लिखे जाते हैं।

7.2 यह एक स्वतंत्र लिपि है।

7.3 इसके 64 चिन्ह है।

7.4 इसमें दीर्घ व ह्रस्व मात्राओं का प्रयोग मिलता है।

7.5 इसमें अनुस्वार, अनुनासिक तथा विसर्ग का प्रयोग किया जाता है।

7.6 अक्षरों का ध्वनि संबंधी विभाजन उच्चारण के आधार पर हुआ है।

7.7 चिन्हों के द्वारा स्वरों का संबंध व्यंजन से किया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों व तर्कों के आधार पर डॉ. राजबली पाण्डेय व अन्य विद्वानों ने यह सिद्ध किया है की ब्राह्मी की उत्पत्ति किसी विदेशी लिपि से नहीं हुई है। ब्राह्मी एक विशिष्ट लिपि है जिसके उच्चारण तथा व्याकरण का अपना विशिष्ट स्वरूप है अतः ब्राह्मी का उद्‌भव पूर्णतः भारतीय है।

4.5 ब्राह्मी का विकास

जैसा की हमने पिछले भाग में जाना की भारतीयों ने लिपि का आविष्कार बहुत पहले ही कर लिया था। किन्तु इसके अध्ययन का आरंभ अशोक के उत्कीर्ण अभिलेखों से होता है जिसे अशोक ने धम्म लिपि कहा है। ये अभिलेख मुख्यतः ब्राह्मी व खरोष्ठी में लिखवाये गए हैं। कुछ अन्य अभिलेख जैसे सोहगौरा तथा पिपरहवा आदि अभिलेख अशोक के काल के आस पास के माने गाए हैं। किन्तु सैन्धव लोगों द्वारा विकसित सैन्धव लिपि से अशोक कालीन ब्राह्मी तक का विकास क्रम क्या था यह अभी भी रहस्य बना हुआ है। इस कारण ब्राह्मी के विकास की कड़ी को अशोक कालीन ब्राह्मी से ही करना होगा।

ब्राह्मी लिपी की कुछ मौलिक विशेषताएं सामान्यतया दृष्टिगोचर होती है, जैसे– इसका अन्य लिपियों की अपेक्षा अधिक कोणाकार होना, पीछे इनमें टेढ़े मेढ़े अक्षरों का प्रयोग भी किया जाना आदि। प्रारंभ में इनमें दीर्घ मात्राओं का कुछ अभाव दिखता है विशेषतः ई. आदि का। अनुस्वार का प्रयोग भी इसमें प्रारंभ में नहीं के बराबर दिखता है। इनमें दोहरे व्यंजनों का प्रयोग भी नहीं मिलता जैसे 'पक्का' के स्थान पर 'पका' अर्थात पूर्ण व्यंजन का ही प्रयोग मिलता है।

4.6 सारांश

ब्राह्मी सफलतापूर्वक पढ़ी जा सकने वाली भारत की सबसे प्राचीन लिपि है जिसका आरंम्भिक विकसित रूप मौर्यकाल में देखने को मिलता है। ब्राह्मी की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसका विकास सेमेटिक, यूनानी या फोनेशियन लिपियों से हुआ है जबकि कुछ विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति पूर्णतः भारतीय है। अपने मतों के समर्थन में इन विद्वानों ने अनेकों तर्क दिए हैं। किन्तु अनेक अध्ययनों व तर्कों के आधार पर यह सिद्ध होता है की ब्राह्मी की उत्पत्ति पूर्णतः भारतीय है। भारत सहित अन्य देशों के पारंपरिक व साहित्यिक स्रोतों में ब्राह्मी के इतिहास की जानकारी मिलती है। आगे चल कर भारत के अनेक क्षेत्रों में अनेक शैलियों में विकसित हुई। भारत में वर्तमान में प्रचलित देवनागरी सहित दक्षिण एशिया की कई लिपियों की यह जननी मानी जाती है।

अतः उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं की ब्राह्मी भारत की पढ़ी जा सकने वाली सबसे प्राचीन लिपि है जिसका उद्‌भव भारत में हुआ तथा समय के साथ इसका विकास भारत तथा भारत के बाहर भी अनेकों क्षेत्रीय प्रभावों के साथ जिससे आज के लगभग सभी उत्तर भारतीय लिपियों का विकास हुआ। अतः इस आधार पर ब्राह्मी भारतीय लिपियों की जननी भी कही जा सकती है।

4.7 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ. राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ. शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं.गौरीशंकर हीराचंद ओझा

4.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. भारत में लेखन कला की प्राचीनता के प्रमाणों का उल्लेख कीजिए।
2. ब्राह्मी लिपि की प्राचीनता पर लेख लिखिए।
3. ब्राह्मी के विदेशी उत्पत्ति के संबंध में क्या तर्क दिए जाते हैं।
4. ब्राह्मी के भारतीय उत्पत्ति के समर्थन में क्या तर्क दिए जाते हैं।

इकाई 5 : खरोष्ठी लिपि का उद्‌भव व विकास

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्‌देश्य

5.3 खरोष्ठी का इतिहास

5.4 नामकरण

5.5 प्रयोग काल व क्षेत्र

5.6 खरोष्ठी लिपि का उद्‌भव

5.6.1 विदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

5.6.1 भारतीय उत्पत्ति का सिद्धांत

5.7 सारांश

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

5.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय लिपियों में ब्राह्मी के बाद सफलतापूर्वक पढ़ी जा सकने वाली दूसरी सबसे प्राचीन लिपि खरोष्ठी है। खरोष्ठी लिपि का प्रयोग उत्तर–पश्चिमी भारत अर्थात अफगानिस्तान के क्षेत्र में उत्कीर्ण कराए गए अभिलेखों में मिलता हैं। इस लिपी का विकास तथा विस्तार भी मुख्यतः पश्चिमी देशों जैसे अफगानिस्तान, मध्य एशिया व पाकिस्तान के क्षेत्रों में हुआ जबकि अन्य भारतीय लिपियों का विस्तार भारतीय सीमा में ही मिलता है।

खरोष्ठी लिपि का प्रचलन अत्यंत अल्प काल के लिए ही हुआ जबकि इसके समकालीन लिपि ब्राह्मी का इतिहास लंबा रहा तथा इसका प्रयोग भी व्यापक रूप में हुआ। यह लिपि दाहिने से बाएं लिखी जाती थी।

5.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम खरोष्ठी के इतिहास, इसके नामकरण पर अलग अलग मतों, तथा उसके उद्‌भव के स्रोतों पर विद्वानों के बीच मतांतरों का अध्ययन करेंगे।

5.3 नामकरण

खरोष्ठी लिपि विभिन्नन नामों से जानी जाती है। पहले यह बैक्ट्रियन, इंडो–बैक्ट्रियन, आर्यन, बैकट्रो–पालि, गांधारी, एरियानों–पालि, उत्तर–पश्चिमी भारतीय, काबुली, आदि नामों से भी जाना जाता था। किन्तु जॉर्ज ब्यूलर ने इसे सर्वप्रथम खरोष्ठी नाम से संबोधित किया।

खरोष्ठी के नामकारण की अनेक धरणायें प्रचलित है –

1. कुछ के अनुसार इस लिपि का आविष्कारक खरोष्ठ नाम का व्यक्ति था (खऱओष्ठ = किया–लु–से–त = क–लु–से–तो = ख–रो–स–त = खरोष्ठ) अर्थात गधे के ओठ वाला।

2. कुछ के अनुसार इसका नाम खरोष्ठों द्वारा प्रयोग में लाए जाने के कारण हुई जो भारत की उत्तर–पश्चिमी सीमा में रहते थे जैसे यवन, शक, कुषाण, व मध्य एशिया के अन्य लोग।

3. कुछ के अनुसार खरोष्ठ मध्य एशिया के काशगर प्रांत का संस्कृत रूप है जो इस लिपि का परवर्ती केंद्र था। स्टेन कोनो का मत है की – "यह सत्य है की अनेक खरोष्ठी अभिलेख चीनी तुर्किस्तान में, विशेष रुप से पूर्वी ऑसेस के मरुस्थल के दक्षिण तक पाए गए है, तथा एकमात्र ज्ञात हस्तलिखित प्रति खोतान से प्राप्त हुई है फिर भी इस लिपि का प्रयोग भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए होता था। यह संभव है की यह लिपि भारतीयों द्वारा यहाँ लाए गए हों। हस्तलिखित प्रति व लेख परवर्ती काल के हैं जो कि दूसरी शताब्दी से पूर्व के नहीं है, जबकि भारत में यह ई.पू. तीसरी शताब्दी से प्रयोग में लाए जा रहे हैं।

4. एक वर्ग का यह मत है की खरोष्ठी ईरानी शब्द खरपोष्ट से बना है जिसका अर्थ गदहे की खाल होता है। संभवतः यह लिपि सर्वप्रथम गदहे की खाल पर लिखी जाती रही होगी जिस कारण इस लिपि का नाम खरोष्ठी पड़ा होगा।

5. एक मत यह भी है की यह अनियमित रूप से बढ़ाएं हुए व वक्र हैं तथा हिलते हुए गधे के ओठ के जैसे हैं इसलिए खरोष्ठ इसका नाम पड़ा।

6. डॉ. राजबली पाण्डेय का मानना है की संभवतः यह नामकरण व्यंग के रूप में किया गया हो जो बाद में प्रचलित हो गया।

5.4 प्रयोग का काल एवं क्षेत्र

पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार खरोष्ठी का प्रयोग अशोक के समय से मिलता है। इस लिपि का प्रयोग मुख्यतः पश्चिमोत्तर भारत के अशोककालीन अभिलेखों में किया गया है जो की ई.पू. तीसरी शताब्दी के आसपास के हैं। इस काल से लेकर कुषाणों के समय तक चौथी शताब्दी तक इस लिपि के अभिलेख मुद्रलेख स्फुट रूप में मिलते हैं। इसके बाद भारतीय सीमा में इस लिपि के प्रयोग के प्रमाण नहीं मिलते। लेकिन चीनी तुर्किस्तान के क्षेत्रों में इसके प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं।

इसका मूल विस्तार भारत की तत्कालीनपश्चिमोत्तर सीमा जो अब पश्चिमी पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के नाम से जानी जाती है। भारत के भीतरी क्षेत्रों पं.जाब, मथुरा तथा सिद्धपुर से भी खरोष्ठी के लेख उपलब्ध हुए हैं। इस लिपि का अंकन सिक्कों, प्रस्तर खंडों व बर्तनों में मिलता है। खोतान से धम्मपद की एक प्रति मिली है जो खरोष्ठी लिपि में लिखी गई है। ब्राह्मी की तरह इस लिपि का विकास नहीं हुआ और यह अपने मूल रूप में ही समाप्त होविलुप्त हो गई। ब्यूलर का तर्क है की क्योंकि यह कोई साहित्यिक लिपि नहीं थी तथा इसका प्रयोग केवल समाज के किसी प्रयोजन के लिए ही किया जा सकता था इसलिए यह उपयोग से बाहर हो गई। लेकिन डॉ.. ठाकुर प्रसाद के अनुसार यद्यपि प्राकृत भाषा के लिए खरोष्ठी का प्रयोग किया जाता था किन्तु संस्कृत साहित्य के लेखन के लिए किया जा सकता था। चुकी यह लिपि अत्यंत जटिल तथा दुरूह थी जिसके कारण इसका साधारण प्रयोग धीरे धीरे समाप्त हो गई।

5.6 खरोष्ठी लिपि का उद्‌भव

इस लिपि का प्रयोग मुख्यतः ई.पू. तीसरी शताब्दी के अशोक के अभिलेखों में मिलता है तथा अशोक के अभिलेखों से पूर्व हमें खरोष्ठी लिपि का प्रचलन देखने को नहीं मिलता।

खरोष्ठी का नाम विभिन्नन भारतीय तथा विदेशी ग्रंथों में मिलता है। चीनी विश्वकोश 'फा–वान–शु–लिन' में खरोष्ठीका उल्लेख मिलता है तथा चीनी ग्रंथों में 7 वीं शताब्दी तक इसका उल्लेख मिलता है। भारतीय ग्रंथों में बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' में भी लिपियों की सूची में खरोष्ठी का उल्लेख मिलता है।

ब्राह्मी की ही भांति खरोष्ठी के उद्‌भव पर भी विद्वानों में मतभेद हैं। खरोष्ठी के उद्‌भव पर विचार दो पक्षों में विभाजित है जिसमें एक वर्ग खरोष्ठी

के विदेशी उत्पत्ति को मानता है और दूसरा भारतीय उत्पत्ति के सिद्धांत को मानता है। इनके तर्क निम्न हैं –

5.6.1 विदेशी उत्पत्ति का मत

सभी भारतीय लिपियाँ बाएं से दायें लिखी जाती हैं। किन्तु भारत में अशोक के समय प्रयोग होने वाली ब्राह्मी लिपि जहाँ बाएं से लिखी जाती थी वहीं खरोष्ठी दायें से बाएं ओर लिखी जाती थी जिस प्रकार उत्तरी सेमेटिक शाखा की आरमेयिक लिपिं. ऐसे प्रमाणों के आधार पर जॉर्ज ब्यूलर व दानी महोदय ने खरोष्ठी की विदेशी उत्पत्ति के सिद्धांत का समर्थन करते हैं जिसके पक्ष में उनके तर्क निम्न हैं –

1. खरोष्ठी लिपि का प्रचलन भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में इरानियों के आक्रमण के बाद शुरू हुआ। इस क्षेत्र पर ईरानी आधिपत्य ई.पू. छठी शताब्दी से लेकर चतुर्थ शताब्दी तक था।
2. पारसिक शासकों ने इस लिपि का प्रयोग अपनी प्रशासनिक व्यवस्था के लिए किया था।
3. सेमेटिक व खरोष्ठी लिपि के अक्षरों में अनेकों साम्यतायें दिखती हैं जैसे दीर्घ स्वर का अभाव आदि।
4. आरमेयिक लिपि की तरह यह दायें से बाएं की ओर लिखी जाती है।
5. खरोष्ठी के अभिलेखों में कुछ ईरानी शब्द प्रयुक्त हैं, जैसे दृ लेखन या लेख के लिए 'दिपि' शब्द का उल्लेख।
6. ईरानी और भारतीय दफ्तरों में पत्र व्यवहार के लिए अरमेयिक अक्षरों का व्यवहार आरंभ हुआ और बाद में पुरानी ब्राह्मी के अनुसार इस लिपि में कुछ क्रम का परिवर्तन आरंभ हुआ जिससे खरोष्ठी लिपि निकली।
7. किन्तु ये सभी तर्कों का डॉ. पाण्डेय ने निम्न तर्कों द्वारा अस्वीकार कर दिए हैं –
8. पर्शियन सिग्लास में खरोष्ठी अक्षरों का प्रयोग सिद्ध करता है की ईरानी आक्रमण से पूर्व ही खरोष्ठी विकसित रूप में प्रचलित थी।
9. भारत के उत्तर–पश्चिमी के उन क्षेत्रों में जहाँ ईरानी शासकों का शासन था कोई भी ईरानी अभिलेख प्राप्त नहीं होता। डॉ.. मजूमदार ने इन क्षेत्रों में ईरानी शासकों के अधिकार की बात पर भी संशय व्यक्त किया है।

10. खरोष्ठी में दीर्घ स्वरों के अभाव का कारण संभवतः इस कारण रहा होगा की इसका आविष्कार प्राप्त भाषा में लिखने के लिए किया गया हो, जिसमें दीर्घ स्वर स्वतः नहीं मिलते।

11. किसी लिपि के दायें से बाएं लिखे जाने से यह सिद्ध यहीं होता की वह अरोमेयिक या सेमेटिक लिपि से ही निकली हो।

12. डॉ. ब्यूलर द्वारा 'दिपि' को ईरानी शब्द मानना उनकी गलती है, जबकि संस्कृत में 'दीप' शब्द का प्रयोग बहुलता में विभिन्नन रूपों में मिलता है जिसका अर्थ है 'चमकना' और चमकते हुए अक्षरों के लिए दीप व दिपि शब्द का प्रयोग स्वाभाविक है।

उपरोक्त तर्कों से स्पष्ट होता है की खरोष्ठी का उद्भव भारत में ही है। ईरानी प्रशासन में खरोष्ठी का प्रयोग पत्र–व्यवहार की बात कल्पना ही है। ब्राह्मी की भारतीय उत्पत्ति पहले ही सिद्ध की जा चुकी है ऐसे में खरोष्ठी की विदेशी उत्पत्ति का मत निराधार लगता है।

5.6.2 भारतीय उत्पत्ति का मत

खरोष्ठी के भारतीय मूल से उत्पत्ति के समर्थन में विद्वानों ने निम्न तर्क दिए हैं –

1. खरोष्ठी लिपि के आरंम्भिक अभिलेख उत्तरी–पश्चिमी भारत में ही पाए हैं हैं, पश्चिमी एशिया में इसका एक भी अभिलेख या लिखित प्रमाण नहीं मिला है।

2. जिन ईरानी शासकों को खरोष्ठी के उद्भव का स्रोत बताया जाता है उन्होंने अरमेयिक लिपि का प्रयोग अपने प्रशासनिक कार्यों के लिए नहीं किया।

3. मध्य एशिया में खरोष्ठी के कुछ अभिलेख तथा लिखित प्रमाण अवश्य मिले हैं किन्तु यह लिपि पहले वहाँ थी इसका कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि इसका प्रयोग सर्वप्रथम अशोक के काल में ही मिलता है जिसके बाद ही यह लिपि मध्य एशिया में पायी जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है की यह लिपि भारत से मध्य एशिया की ओर गयी होगी।

4. चीनी तुर्किस्तान से बौद्ध ग्रंथ धम्मपद की एक प्रति खरोष्ठी में मिली है जिससे यह प्रश्न उठता है कि यदि खरोष्ठी विदेशी लिपि होती तो इस लिपि में विदेशी ग्रंथ मिलते न की भारतीय ग्रंथ।

5. खरोष्ठी लिपि में अनुस्वार एवं संयुक्ताक्षरों का प्रयोग पाया जाता है। अनुस्वार का प्रयोग भारतीय देन है तथा संयुक्ताक्षरों के भी प्रयोग की भारतीयों की अपनी विधि है। इनका अनुसार खरोष्ठी का भारतीय उद्‌भव का समर्थन करता है।

6. खरोष्ठी लिपि का प्रचलन भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग में प्रचलित थी। इस क्षेत्र में सदा से विदेशी आक्रमणकारियों का आक्रमण होता रहा तथा उनके प्रभाव में रहा। संभव है की यह लिपि उनके साथ मध्य एशिया गई होगी। इस लिपि का प्रयोग भारतीय सीमा में बस्ने वाले यूनानी, बख्त्रि, शक, पह्लव जाति के लोगों ने किया है। ईरानी मुहरों पर इस लिपि का अंकन इसी बात को स्पष्ट करता है की इस मुद्रा का प्रचलन पश्चिमी भारत में था।

7. चीनी विश्वकोश 'फा–वान–शु–लिन' में भारतीय लिपियों में खरोष्ठी लिपि का उल्लेख मिलता है।

8. चूँकि एक मत के अनुसार खरोष्ठी लिपि का जन्मदाता 'खरोष्ठ' नामक व्यक्ति माना जाता है जो की पूर्णतया भारतीय प्रतीत होती है।

9. यदि खरोष्ठी विदेशी लिपि होती तो भारत में भले ही यह समाप्त हो जाती किन्तु भारत से बाहर अवश्य जीवित रहती तथा इसका विकास होता। किन्तु जैसे ही भारत में इस लिपि का चलन समाप्त हो गया, यह लिपि अचानक से विलुप्त हो गई।

10. विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा इस लिपि का प्रयोग किये जाने का एक मात्र कारण यह संभव है की उनका अधिकार उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में था तथा उन क्षेत्रों में यह लिपि प्रचलित थी।

5.7 सारांश

ब्राह्मी के अतिरिक्त खरोष्ठी प्राचीन भारत के सबसे प्राचीन लिपियों में से एक है। खरोष्ठी का प्रयोग मुख्यतः पश्चिमोत्तर भारत सहित मध्य एशिया में होता था। इसका प्रयोग भी ब्राह्मी के साथ ही शुरू हुआ तथा कुषाणों के काल तक प्रचलित था। खरोष्ठी का इतिहास अधिक लंबा नहीं रहा तथा यह शीघ्र ही प्रचलन से बाहर हो गई। इस लिपि का विकास नहीं हुआ तथा यह अपने आरंम्भिक रूप में ही लुप्त हो गई।

अतः उपरोक्त तर्कों से यह स्पष्ट होता है कि खरोष्ठी एक भारतीय लिपि

थी जिसका उद्‌भव, विकास तथा अंत सभी भारत में हुए। सभी परिस्थितियों को धन में रखते हुए निरापद रूप से माना जा सकता है की खरोष्ठी लिपि का भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग में प्रादुर्भाव हुआ, जैसा की चीनी परम्पराओं में सुरक्षित है की इसका आविष्कार भारतीय मनिषियों द्वारा किया गया था। देश के उस भाग में फारसी सीग्लोई खरोष्ठी स्वरों से अंकित है। जब मौर्यों ने उस भाग पर अधिकार किया तो उन्हे भी उस क्षेत्र में खरोष्ठी का प्रयोग करना पड़ा। तत्पश्चात यवनों, पह्लवों, शकों तथा कुषाणों ने ग्रीक के साथ–साथ खरोष्ठी का प्रयोग किया। कुषाणों के राज्यकाल में बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ खरोष्ठी पश्चिमी और उत्तरी प्रदेशों में पहुँच गई तथा चतुर्थ शताब्दी तक प्रचलित रही। विदेशी शक्तियों द्वारा इस लिपि का प्रयोग होना तथा गुप्त साम्राज्य के उदय के बाद ब्राह्मी को राजाश्रय मिलने के बाद इस लिपि का प्रचलन समाप्त हो गया।

5.8 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ.राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ.शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं.गौरीशंकर हीराचंद ओझा

5.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. खरोष्ठी की प्राचीनता पर लेख लिखिए।
2. खरोष्ठी की विदेशी मूल से उत्पत्ति पर दिए गए तर्कों पर लेख लिखिए।
3. खरोष्ठी की भारतीय मूल से उत्पत्ति पर दिए गए तर्कों पर लेख लिखिए।
4. खरोष्ठी की प्रकृति पर लेख लिखिए।
5. खरोष्ठी के लुप्त होने के क्या कारण हैं ?

इकाई 6 : मौर्य व शुंग कालीन ब्राह्मी

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 मौर्यकालीन ब्राह्मी व उसकी विशेषताएं

6.4 शुंगकालीन ब्राह्मी व उसकी विशेषताएं

6.5 ब्राह्मी लिपि के स्थानीय प्रकारों की विशेषताएं

6.6 सारांश

6.7 संदर्भ ग्रन्थ

6.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने ब्राह्मी की प्राचीनता तथा उसके उद्भव का अध्ययन किया। किन्तु ब्राह्मी का विकास अलग अलग काल में अलग अलग क्षेत्रों में लग अलग शैलियों में हुआ। जिससे आज की लिपियों व् लुप्त लिपियों का विकास हुआ। ब्राह्मी के विकासक्रम का अध्ययन भी ब्राह्मी के इतिहास में एक महत्वपूर्ण विषय है। ब्राह्मी का सबसे प्राचीनतम विकसित रूप में ई.पू. तीसरी शताब्दी में मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेखों में मिलता है। जिसके बाद इसका समय के साथ–साथ अलग–अलग क्षेत्रों में विकास हुआ। ई.पू. तीसरी शताब्दी से लेकर ई.पू. पहली शताब्दी में शुंगों के काल तक ब्राह्मी में थोड़े बहुत परिवर्तन आए जिनका अध्ययन हम इस अध्याय में करेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय में हम ब्राह्मी के विकास के प्रथम चरण ई.पू. तीसरी शताब्दी मौर्यकाल से लेकर ई.पू. पहली शताब्दी में शुंगकाल तक ब्राह्मी के विकास तथा उसमें आए परिवर्तनों व उनकी विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

अध्ययन की दृष्टि से ब्राह्मी के विकास के आरंम्भिक चरण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. ई.पू. तीसरी शताब्दी से ई.पू. पहली शताब्दी ई तक (मौर्यकाल–शुंगकाल तक)

2. ई.पू. पहली शताब्दी से छठी शताब्दी ई तक (कुषाणकाल–गुप्तकाल तक)

6.3 मौर्य कालीन ब्राह्मी एवं उसकी विशेषताएं

अशोक ने अपने राजत्व काल में अनेकों अभिलेखों को सम्पूर्ण भारत में उत्कीर्ण करवाया था। सम्पूर्ण भारत में इन अभिलेखों में मुख्यतः ब्राह्मी का प्रयोग किया गया है जबकि शहबाजगड़ी तथा मानसेहरा (जो अब पश्चिमी पाकिस्तान में स्थित है) के लेख खरोष्ठी लिपि में तथा अफगानिस्तान से प्राप्त अभिलेख अरमेयिक तथा यूनानी लिपि में अंकित किए गए हैं। ये लेख शिला, स्तम्भ, फलक व गुहाओं में उत्कीर्ण किए गए हैं। इनकी भाषा प्राकृत है। अशोक के अभिलेख मुख्यतः राजाज्ञायें हैं जो सर्वत्र एक ही रूप में पाई जाती है। विभिन्नन क्षेत्रों में उत्कीर्ण करवायें गए इन अभिलेखों में लेखन शैली में थोड़ा अंतर देखने को मिलता है। इस आधार पर डॉ. ब्यूलर तथा डॉ. पाण्डेय ने इसके लेखन की स्थानीय शैलियों का अनुमान लगाया है। किन्तु महा महोपाध्याय पं. गौरीशंकर ओझा ने स्थानीय शैली को आंशिक रूप से स्वीकार किया है तथा अक्षरों के अंतर को लेखकों के के हाथों का कौशल या सजावट की गति माना है। डॉ.. चंद्रिका सिंह उपासक आदि बाद के अन्वेषकों ने यह बताया है की अशोक कालीन ब्राह्मी के क्षेत्रीय प्रकार नहीं थे।

अक्षरों में भिन्नता का कारण लेखकों के लेखन शैली के कारण रहा होगा इस तर्क की पुष्टि अशोक के अभिलेखों के विभिन्नन वर्गों पर अंकित लिपि को देखने से ही मिलता है। अशोक के अभिलेखों की लिखावट भद्दी है, पं.क्तियाँ कुछ टेढ़ी है, अक्षरों की बनावट कुछ कोणाकार है आदि जिससे स्पष्ट होता है की पत्थरों पर लेख स्थानीय लेखकों द्वारा उत्कीर्ण करवाया जाता रहा होगा। यही बात गुहालेखों में भी देखने को मिलती है। किन्तु भ्रावा से प्राप्त एक मात्र फलक लेख शिलालेखों व गुहालेखों की अपेक्षा अधिक सुंदर, स्वच्छ व कलात्मक लगता है। इनसे भी स्वच्छ व सुंदर अक्षर स्तम्भ लेखों में देखने को मिलते हैं जो सीधी रेखाओं में लिखे गए हैं, साफ साफ कलात्मक ढंग से उत्कीर्ण किए गए हैं। इसका कारण संभवतः राजकीय कलाकारों द्वारा अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाना हो सकता है।

अशोक कालीन ब्राह्मी अक्षरों में निम्न विशेषताएं देखने को मिलती है –

1. इसके अक्षर सीधी रेखा में बने हैं तथा मोड़कर कोणाकार बनाए गए हैं, किन्तु कहीं कहीं इनमें गोलाकार आकृति भी दिखाई देती है।
2. अक्षरों की ऊंचाई लगभग समान है।

3. अक्षरों की ऊंचाई समान बनाए रखने के लिए संयुक्ताक्षरों के लेखन में अक्षरों के आकार छोटे करने का प्रयास किया गया है जैसे म्य 𑀬, स्य 𑀲 आदि।

4. पं.क्तियाँ पूर्णतया सीधी रखने का प्रयास किया गया है फिर भी कहीं कहीं उनमे टेढ़ापन देखने को मिलता है जैसे एरागुड़ी अभिलेख की पं. क्ति से स्पष्ट होता है।

5. इसकी लिखावट बाएं से दायें की ओर है। केवल एरागुड़ी अभिलेख में कुछ अंतर दिखाई देता है। जहाँ कहीं–कहीं एक ही पं.क्ति में कुछ शब्द बाएं से दायें लिखे गए हैं और कुछ दायें से बाएं।

6. **पहलीपं.क्ति ----------><---------- ---------->**

7. **दूसरीपं.क्ति ---------->><----------**

8. **तीसरीपं.क्ति ----------> ---------->**

9. किन्तु यह रीति आगे देखने आगे नहीं देखने को मिलता।

10. ये अक्षर सामान्यतया नीचे की ओर ही खुले हैं तथा ऊपर की ओर प्रायः सीधे उठते हुए 𑀕 𑀜, 𑀓 +, 𑀤 𑀺 दिखते हैं जैसे आदि। किन्तुम 𑀬 व 𑀜𑀜 ये दो अक्षर ऐसे दिखते हैं जो ऊपर की ओर मुंह खोले हुए हैं।

11. ऊपर के उदाहरणों से यह दृष्टव्य है की ये अक्षर सीधी रेखाओं से निर्मित है। इनके बीच में या नीचे दूसरी खड़ी या आड़ी रेखाएं जोड़कर विभिन्नन अक्षरों का निर्माण 𑀓 +व य 𑁆 किया गया है जैसे आदि।

12. इनमें ह्रस्व व दीर्घ तथा अनुनासिक का प्रयोग समुचित रूप से प्रचलित

'देवानंपिय पियदसिनो लाजा हेवं आहा'
𑀤𑁂𑀯𑀸𑀦𑀁𑀧𑀺𑀬 𑀧𑀺𑀬𑀤𑀲𑀺𑀦𑁄 𑀮𑀸𑀚𑀸 𑀳𑁂𑀯𑀁 𑀆𑀳𑀸

दिखाई पड़ता है जैसे –

13. इनके शिरो–भाग खुले हैं च 𑀘 छ 𑀙। इनमें किसी पर भी शिरोरेखा का अभाव है। ण 𑀡 में जो शिरोरेखा दिखती है वास्तव में वह वास्तव में शिरोरेखा नहीं है बल्कि ञ से भिन्नता दिखाने के लिए बनाई गई है।

14. ज्यामित आकृतियों की तरह अर्धवृत्त, 𑀝 𑀇, 𑀞 𑀏, 𑀕 𑀜, 𑀭 𑀮, 𑀂·

वृत्त, कोण, खड़ी रेखा, बिन्दु आदि के सहयोग से निम्न अक्षरों का निर्माण हुआ जैसे

15. प्रायः संयुक्ताक्षरों का प्रयोग बचाया गया है, किन्तु यदि कहीं हुआ है तो उनमें एक निश्चित सिद्धांत का प्रयोग किया गया है। पहले उच्चारण किए जाने वाले अक्षर को ऊपर लिखते थे तथा बाद में उच्चारण किए जाने वाले ↓ अक्षर को नीचे जैसा ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट होता है। किन्तु कहीं कहीं इसका अपवाद भी मिलता है। तथा व्र। किन्हीं स्थानों पर ऊपर नीचे संयुक्ताक्षर की टेढ़ी रेखा 'र' है और शेष 'ब' का भाग है। हो सकता है की यह लेखक की गलती रही हो।

16. लघु शिलालेख सिद्धपुर तथा एरागुड्डी में 'अ' अक्षर जो दृष्टव्य है वह इन दोनों से पहले अभिलेख में यह मोटा है तथा दूसरे में पतला है जैसे – । इसमें मोटाई और पतलाई सर्वत्र समान है ऐसा नहीं की एक ही अक्षर का एक सिरा मोटा हो एर दीसर भाग पतला हो। लगता है की किसी कतकटी कलम से नहीं अपितु शलाका से यह पहले चिन्हित करके पीछे टंकित किया गया होगा। डॉ.. नारायण तथा ठाकुर प्रसाद ने इसे 'शलाका प्रविधि' की संज्ञा दी है।

डॉ. ब्यूलर आदि विद्वानों का मत है की अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि मूलतः शैली के आधार पर दो कोटियों में विभक्त की जा सकती है। उत्तरी शैली और दक्षिणी शैली। यह अंतर कुछ अक्षरों के बनावट के आधार पर ढूँढने का प्रयास किया यह भी धारणा है की स्थानीय प्रभाव के कारण उत्तरी ब्राह्मी शैली के अक्षरों को तीन उप–कोटियों में भी विभक्त किया जा सकता है –

1. कौशांबी, निग्ली वासागर, रामपुरवा आदि के अभिलेखों के अक्षर,
2. भरहुत, सांची, सासाराम और बराबर आदि के अभिलेख आदि के अक्षर तथा
3. धौली, मेरठ, बैरठ तथा रानी द्वारा उत्कीर्ण कराए गए गुहालेखों के अक्षर।

किन्तु आधुनिक शोधकर्ता डॉ. ठाकुर प्रसाद इस वर्गीकरण को उचित नहीं मानते। डॉ..प्रसाद के अनुसार विभिन्नन अभिलेखों में अक्षरों में अंतर किसी क्षेत्रीय शैली की न होकर स्थानीय लेखकों के लेखन में अंतर के कारण है।

6.4 शुंगकालीन ब्राह्मी एवं उसकी विशेषताएं

अशोक के बाद उसके पौत्र दशरथ के समय के तीन अभिलेख नागार्जुनी पहाड़ी की गुफाओं से प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख आकार में छोटे हैं। डॉ. अन्य अभिलेख नेपाल की तराई में स्थित सोहगौरा तथा पिपरहवा से प्राप्त हुए थे जो 'देवनांपियदशि लाजा' से संबंधित हैं, किन्तु राजा का नाम अज्ञात है। इसकी लिपि मौर्य कालीन ब्राह्मी है किन्तु इनके अक्षर अशोक के अभिलेखों के अक्षरों से भिन्न है। डॉ. गौरीशंकर ओझा ने इन्हे बुद्ध के निर्वाण के तुरंत बाद का माना है। किन्तु इनमें व दशरथ के अभिलेखों में समानता दिखाई देती है इस आधार पर ये अभिलेख दशरथ के काल के भी कहे जा सकते हैं। यही मत 'एंटीक्विटीज ऑफ दी तराई ऑफ नेपाल' के लेखक पी. सी. मुखर्जी व डॉ. उपासक व डॉ. ठाकुर का भी है। इनके अक्षर पहले से छोटे तथा अपेक्षाकृत गोल हैं। 'स' अब 'ष' की तरह लिखा गया है। 'ओ' की मात्रा में भी सुधार दिखता है। जहाँ पहले ओ को दो अलग आड़ी रेखाओं नो ((न्+ओ =ा+ा) (एक सीधी रेखा के एक बाएं मध्य में तथा एक ऊपर दायें) द्वारा लिखा जाता था अब इसके लिए एक ही आड़ी रेखा T ऊपर दर्शाया गया है।

मौर्यों के बाद उत्तर व दक्षिण भारत में कई छोटे छोटे राज्य स्थापित हो गए थे। जिनमें उत्तर भारत में कुषाण जो की एक विदेशी राजवंश था प्रमुख शक्ति बनकर उभरा। यवन बख्त्री भी उत्तर पश्चिम भारत में अपने राज्य बना रहे थे। शक–क्षत्रप इसी समय पश्चिमी तथा उत्तर–पश्चिमी भारत में बने हुए थे। इनकी एक शाखा दक्षिण–पश्चिम में भी फैली थी। इनके समकालीन सातवाहन भी दक्कन के क्षेत्र पर शासन कर रहे थे। इन शासकों द्वारा अनेकों लेख इस काल की ब्राह्मी में लिखवाए गए थे जैसे शुंग शासकों के अभिलेख, सातवाहनों व कलिंग के शासक खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख। चूँकि ये अभिलेख विभिन्नन क्षेत्रों में उत्कीर्ण करवाए गए थें, तथा इनमें स्थानीय लेखकों के कौशल व चलन का प्रभाव दिखता है जो आगे चलकर स्थानीय शैलियों के रूप में विकसित हुआ। किन्तु इन अभिलेखों के अक्षर मौर्यकालीन ब्राह्मी में ही थोड़े बहुत अंतर के साथ अंकित की गई है जो की निम्न है –

1. मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में 'अ' H के ऊपर लकीर प्रायः 'आ' H̄ बनाता था किन्तु बाद में 'अ' H के दाईं ओर एक आड़ी–लकीर के रूप में इसे लगाकर आ लिखा जाने लगा।
2. 'इ' की मात्रा पहले कुछ गोलाकार होती थी किन्तु अब कुछ छिछलापन लिए गोलाकार दिखती है।
3. अनुस्वार के लिए विशेष रूप से अक्षरों के दायें किनारे पर बिन्दु ऊपर

की ओर लगाया जाने लगा जैसे तं ,धं आदि।

4. गिरनार के अभिलेख में कोणदार 'इ' का स्पष्ट प्रयोग मिलता है।

5. 'र' का प्रयोग संयुक्ताक्षर में करने के लिए अलग अलग नियमों का प्रयोग दिखता है। कभी यह बगल में तो काभी नीचे की ओर दिखता है।

6. जब दो अक्षरों को संयुक्त करना होता था तब जोड़ा जाने वाला अक्षर मूल अक्षर के नीचे जोड़ा जाता था लेकिन अक्षरों का अनुपात बनाए रखने के लिए मूल अक्षर की अपेक्षा संयुक्त अक्षर छोटा होता था जैसे – भ्य , म्ह आदि।

7. इस काल के अक्षर अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ व पुष्ट दिखाई पड़ते हैं।

8. डॉ. ठाकुर प्रसाद के अनुसार इन अभिलेखों के उत्कीर्णन में जिस लेखनी का प्रयोग होता था इसकी कत कटी होती थी जिससे अक्षरों की मोटाई व पतलाई इच्छानुसार दिखती है।

9. अक्षरों के आधार जो गोलाई लिए हुए थे सपाट हो गए व चपटे होने लगे थे जैसे म ४ – ℵ ।

10. एक प्रकार की त्रिकोणात्मक शिरोरेखा शीर्ष अक्षरों में दिखने लगी संभवतः यही आगे चलकर शिरोरेखा बन गई।

11. अशोक के काल में अक्षर अधिक लंबे और कम चौड़े होते थे। किन्तु अब लंबाई और चौड़ाई समान होने लगी थी।

12. दीर्घ स्वरों का प्रयोग अधिकाधिक होने लगा क्योंकि अब इसकी भाषा संस्कृत हो गई। स्वर में मात्रा जोड़कर दीर्घ स्वर बनाए जाते थे जैसे अ से ए Δ।

13. विसर्ग चिन्हों का प्रयोग मिलने लगता है। यह चिन्ह आजकल विसर्ग के लिए प्रयोग किए जाने वाले चिन्हों की तरह बनाए जाते थे।

14. व्यंजनों में ऋ का प्रयोग मिलता है, यथा – कृ ।

15. नए अक्षरों का चलन मिलता है जिन्हे संयुक्ताक्षरों के माध्यम से लिखा जाता था, यथा – क्ष (क + ष या ख) = या ज्ञ (ज + ञ) = ।

डॉ. ठाकुर प्रसाद के अनुसार इन परिवर्तनों के लिए दो तत्वों को उत्तरदायी बताया जा सकता है – एक अक्षरों का सरल स्वरूप तथा दूसरा उनका अधिक प्रयोग होना।

6.5 ब्राह्मी लिपि के स्थानीय प्रकारों की विशेषताएं

1. **गिरनार** – इन सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त जैसा की ऊपर कहा गया है, कुछ स्थानीय विशेषताएं भी विशेष क्षेत्रों में दिखती है। गिरनार के अभिलेखों में सामान्य लेखों की अपेक्षा अधिक अनियमितता दिखाई पड़ती है –

    1.1 संयुक्ताक्षरों में नीचे वाले अक्षर का चिन्ह अधिक कोणाकार बनाया जाने लगा।

    1.2 संयुक्ताक्षरों में संयुक्त किए जाने वाले अक्षर सुविधानुसार कभी–कभी मूल अक्षर के पहले भी रखे जाने लगे।

    1.3 'र' का स्वरूप सद्य परिवर्तित होता रहता था।

2. **उड़ीसा हाथी गुंफा** – खारवेल के हाथी गुंफा अभिलेख के अध्ययन से अक्षरों की बनावट में कुछ अन्य विशेषताएं दिखलाई पड़ती है। शुंगकालीन अभिलेखों से भी यही ज्ञात होता है –

    2.1 अक्षरों का निचला भाग पहले की अपेक्षा अधिक चौड़ा होने लगा जैसे त 𑀢।

    2.2 सीधी रेखा वाले अक्षरों का शिरोभाग कुछ मोटा होने लगा। पर जिनमें सीधी रेखा नहीं होती थी उनमें प्रारंभ तथा अंत वाले भाग ही मोटे होते थे।

    2.3 'अ' की मात्रा प्रायः अक्षर की बाईं ओर बिन्दु लगाकर व्यक्त किया था किन्तु यहाँ 'लिं' लिखने में बाईं ओर अनुस्वार लगाया गया है।

    2.4 'आ' की मात्रा प्रायः अक्षरों के बीच में लगी हुई दिखती जैसे – खा 𑀔, था 𑀣।

    2.5 खड़ी लकीरों वाले अक्षरों में खड़ी लकीरों नीचे की ओर बढ़ गई है।

3. **क्षत्रपों के अभिलेख** – क्षत्रपों के अभिलेखों के अक्षरों की बनावट में भी जो लगभग इसी समय के हैं, कुछ अंतर दिखता है। ये क्षत्रप डॉ. क्षेत्रों में थे – उत्तर और दक्षिण में। जहाँ रोजुबल और शोडास के लेख मथुरा तथा उसके पड़ोसी क्षेत्र में मिले हैं, वहीं रुद्रदामन, नहपान आदि के

संबंध के लेख दक्षिणी भारत में मिले हैं। अतः इन दोनों क्षेत्रों में अक्षरों की बनावट में कुछ स्वाभाविक अंतर स्पष्ट रूप से दिखता है।

3.1 केवल 'ल' को छोड़कर सभी अक्षरों को ऊपर की सीधी रेखाएं एक ऊंचाई की बनने लगी।

3.2 यहाँ कलम की कत कुछ अधिक चौड़ी दिखती है। इसी से अक्षरों में मोटाई बनी हुई है।

3.3 ऊपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है की अक्षर ठिगने होने लगे थे।

3.4 'य' की बनावट बदल गई जिसमें नीचे का कुछ भाग कुछ अधिक चौड़ा ⚓ होने लगा था।

3.5 कुछ व्यंजनों के ऊपर लकीर का प्रयोग होने लगा।

3.6 'घ' की बनावट पहले की अपेक्षा अधिक कोणदार होने लगी।

3.7 'च' और 'द' कुछ अधिक आगे और लंबे घसीट अक्षरों की तरह घुमावदार दिखाई देने लगे।

3.8 इन लेखों में पहली बार मध्यम 'इ' का प्रयोग होने लगा।

इस तरह हम देख सकते हैं की मौर्य काल से लेकर कुषाणों के उदय से पूर्व ब्राह्मी का विकास विभिन्नन क्षेत्रों में भिन्न भिन्न तरह से हो रहा था।

6.6 सारांश

ब्राह्मी का इतिहास मुख्यतः अशोक के काल से ही आरंभ होता है, जब अशोक ने अपने धम्मउपदेशों को सम्पूर्ण भारत में शिलाओं, स्तंभों व गुहाओं में ब्राह्मी में लिखवाया। कुछ एक उदाहरण को छोड़कर पूरे देश में इसका रूप लगभग एक समान मिलता है। किन्तु मौर्यों के बाद अलग अलग क्षेत्रों में इसके अलग–अलग शैलियाँ व अनेक नए प्रयोग मिलने लगते हैं। ई.पू. तीसरी शताब्दी से लेकर ई.पू. पहली सदी तक इसका रूप लगभग एक जैसा था, कुछ क्षेत्रों में इसमें नए गुण व नए प्रयोग दिखने लगते हैं। इस काल के अभिलेख मुख्यतः मौर्य, शुंग व सातवाहनों के अभिलेखों के रूप में मिलते हैं। आरंभ में ब्राह्मी का प्रयोग मुख्यतः प्राकृत के लिए होता था इसलिए आरंम्भिक ब्राह्मी में कई कमियाँ दिखती है। किन्तु जब आगे संस्कृत के अभिलेखों के लिए ब्राह्मी का प्रयोग हुआ तब कई नए प्रयोग व नए अक्षरों व मात्राओं का प्रयोग मिलता है। सम्मिलित अक्षरों का भी प्रयोग मिलता है। इस काल में ब्राह्मी का प्रचलन पूरे भारत वर्ष में

हो चुका था तथा ब्राह्मी लिपि में क्षेत्रीय प्रभाव दिखने लगे थे।

अतः हम देखते हैं ई.पू. तीसरी शताब्दी में मौर्य काल में अशोक के अभिलेखों में अपने सबसे प्राचीन विकसित समान्य रूप से लेकर शुंगों के काल में आते आते ब्राह्मी के कुछ अक्षरों में परिवर्तन आने लगता है। यह परिवर्तन स्थानीय भी थे और व्यापक भी थे जिसका विकास आगे भी होता रहा जिससे ब्राह्मी के अनेक प्रकारों का विकास हुआ। जिसका अध्ययन हम आगे की इकाइयों में करेंगे। मौर्यकालीन ब्राह्मी को भारत में वर्तमान की सभी लिपियों के मूल के रूप में माना जा सकता है क्योंकि मौर्य कालीन ब्राह्मी की ही विभिन्नन इसी शाखाओं के रूप में इनका विकास हुआ। यहाँ तक की आज प्रयुक्त देवनागरी आदि लिपियों का मूल भी ब्राह्मी ही है।

6.7 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ. राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ. शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा

6.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. ब्राह्मी के विकास को कितने चरणों में विभाजित किया जाता है ?
2. मौर्य कालीन ब्राह्मी की विशेषताएं बताइए।
3. मौर्य कालीन ब्राह्मी किस काल में प्रयोग में थी ?
4. शुंग कालीन ब्राह्मी की विशेषताएं बताइए।
5. शुंग कालीन ब्राह्मी किस काल में प्रयोग में थी ?

इकाई 7 : कुषाण एवं गुप्त कालीन ब्राह्मी

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 कुषाणकालीन ब्राह्मी की विशेषताएं

7.4 गुप्त कालीन ब्राह्मी की विशेषताएं

7.5 सारांश

7.6 संदर्भ ग्रंथ

7.7 आदर्श अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में हमें ब्राह्मी के आरंम्भिक चरण में मौर्यकाल से शुंगकाल में विकास का अध्ययन किया जिसमें हमने देखा की ब्राह्मी के अक्षरों में धीरे धीरे परिवर्तन आने लगे थे। इनमें कुछ संभवतः क्षेत्रीय थे तो कुछ व्यापक रूप से थे। कुषाणों के काल में ब्राह्मी का विकास नए चरण में दिखने लगता है। अक्षरों में नए प्रयोग देखने को मिलते हैं। अक्षरों को अधिक सुंदर दिखाने का प्रयास किया जाने लगा।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय में हम ब्राह्मी के विकास के द्वितीय चरण ई.पू. पहली शताब्दी कुषाण काल से लेकर छठी शताब्दी में गुप्तकाल तक ब्राह्मी के विकास तथा उसमें आए परिवर्तनों व उनकी विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

7.3 कुषाणकालीन ब्राह्मी की विशेषताएं

लगभग प्रथम शताब्दी ईसवी में उत्तर भारत में कुषाण साम्राज्य का शासन स्थापित हो गया था। वे पश्चिमी दक्षिण में शकों व दक्कन में सातवाहनों के समकालीन थे। इस काल में भी लगभग सभी उत्तर भारतीय राजवंशों से ब्राह्मी का उपयोग अपने अभिलेखों व मुद्राओं में किया था। चूँकि कुषाण इस काल के सबसे शक्तिशाली शासक थे अतः हमें इनकी मुद्राएं व अभिलेख अधिक मात्रा में मिलते हैं। कुषाण शासकों में मुख्यतः कनिष्क, हुविष्क व वासिष्क के

अभिलेख सर्वाधिक मिलते हैं जो प्रायः मथुरा व उसके आसपास के क्षेत्रों में पूर्वी राजस्थान व साँची पाए गए हैं। इनमें से कुछ तिथि युक्त भी है।

इस काल की लिपि में भी समय के साथ–साथ परिवर्तन देखने को मिलता है। इसका कारण संभवतः यह था की पहले ब्राह्मी का प्रयोग प्राकृत भाषा के लिए होता था किन्तु अब संस्कृत का व्यापक प्रयोग होने लगा था। जिसके कारण नए अक्षरों का प्रयोग होना स्वाभाविक था। डॉ. दानी के अनुसार कुषाण शासकों के समय लिपि शास्त्र के आधार पर चार क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है –

1. पश्चिमोत्तर भारत – मथुरा व उसके समीपवर्ती क्षेत्रय
2. पूर्वी भारत – कौशांबी, बोधगया आदि का क्षेत्रय
3. पश्चिमी भारत – मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र का क्षेत्र तथा
4. दक्षिणी भारत – आंध्र, तमिलनाडु का क्षेत्र।

कुषाणकालीन ब्राह्मी का अध्ययन कर विद्वानों ने निम्न विशेषताएं बताई हैं –

1. डॉ. ब्यूलर के अनुसार कुषाणकालीन अक्षर बौने और चौड़े होने लगे थे।
2. इस काल में कलम की कत पहले की अपेक्षा अधिक मोटी तथा पतली दोनों ही प्रकार की होती थी तभी अक्षरों की बनावट में इतना गहरा उतार–चढ़ाव दिखाई देता है।
3. दीर्घ स्वरों का प्रयोग इसके पहले इतना अधिक प्रचलन में नहीं मिलता था, जितना इस समय क्योंकि संस्कृत में दीर्घ स्वरों का प्रयोग किया जाता है। अतएव दीर्घ स्वरों का स्थाई रूप इस काल से दिखने लगता है जैसे -एΔ, ऐΔ, उ Δ, ऊ Δ आदि।
4. संस्कृत में अनुस्वार व विसर्ग का भी प्रयोग किया जाता है। जिसके लिए अक्षरों के ऊपर एक बिन्दु लगाकर अनुसार तथा अक्षर के बाजू में ऊपर नीचे दो बिन्दु लगाकर विसर्ग बनाया जाता था। अभिलेखों में पहली बार इसका प्रचलन देखने को मिलता था।
5. इस काल की ब्राह्मी में एक नया अक्षर ळ का प्रयोग साँची आदि के अभिलेखों में दिखने लगता है। आज भी कुछ शब्दों में ड के आस–पास कुछ उच्चारण के लिए ळ का प्रयोग किया जाता है जैसे बालगंगाधर तिळक। इसका उत्तर भारत में अपना कोई उच्चारण नहीं है।

6. 'अ' की बनावट नागरी लिपि की तरह दिखने लगती है।
7. 'आ' की मात्रा पहले की अपेक्षा अब नीचे की ओर लगने लगती है।
8. 'उ' की मात्रा कुछ बाईं ओर मुड़ी हुई बनने लगी।
9. 'ण' के ऊपरी लकीर अब बीच में घूमी हुई हिने लगी थी।
10. 'ऋ' का प्रयोग भी दिखने लगते है। इसके लिए अक्षर के नीचे एक तिरछी रेखा जोड़ दी जाती थी जैसे – क्रृ, तृ ।

7.4 गुप्तकालीन ब्राह्मी की विशेषताएं

कुषाणों के पतन के बाद उत्तर भारत में कई छोटे–छोटे राज्य विकसित हो गए थे तथा अगले कुछ शताब्दियों तक कोई एक केन्द्रीय सत्ता नहीं थी। ऐसे में ब्राह्मी को कोई विशेष राजकीय आश्रय नहीं मिला तथा यह क्षत्रिय शैलियों में विकसित होती रही है। चतुर्थ शताब्दी ईसवी के पूर्वार्ध में उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य का उदय होता है जिसमें लगभग समस्त उत्तर भारत पर अगले दो शताब्दियों तक शासन किया। कुषाण काल की ही तरह गुप्तों ने भी अपने अभिलेखों में संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी का अपनी राजकीय लिपि के रूप में प्रयोग किया। गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्णिम काल माना जाता है। इस काल में कला, साहित्य, स्थापत्य, व्यापार, वाणिज्य व अन्य कई क्षेत्रों में सर्वांगीण विकास देखने को मलता है। ऐसे में यह प्रभाव तात्कालिक लिपि पर भी होना स्वाभाविक है।

आरंम्भिक गुप्त शासकों से जुड़े कोई अभिलेख प्राप्त नहीं होते किन्तु चन्द्रगुप्त प्रथम की मुद्राएं अवश्य प्राप्त होती हैं। गुप्त शासकों में प्रथम अभिलेख हमें चतुर्थ गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति के रूप में मिलता है जिसे समुद्रगुप्त के संधिविग्रहिक हरिषेण ने उत्कीर्ण करवाया था। कनिंघम के अनुसार यह लेख मूलतः कौशांबी में उत्कीर्ण करवाया गया था। जिस स्तम्भ पर यह प्रशस्ति उत्कीर्ण करवायी गई है उसी स्तम्भ पर ऊपर मौर्य शासक अशोक का छः लेखों का एक संस्करण, रानी का अभिलेख, कौशांबी के महापात्रों को संघ भेद रोकने संबंधी आदेश, जहाँगीर का लेख तथा परवर्ती काल के एक देवनागरी लेख भी उत्कीर्ण है। समुद्रगुप्त के बाद के सभी गुप्त शासकों के अभिलेख विभिन्नन क्षेत्रों से प्राप्त हो चुके हैं।

इस समय तक ब्राह्मी का विविध क्षेत्रों में विकास हो चुका था। जैसा की हमें पिछले भाग में जाना अक्षरों की बनावट के नवीन प्रयोगों में यह लिपि

निरंतर विकसित होती रही जैसे गिरनार के अभिलेख में अक्षरों के शीर्ष भाग पर लकीर का प्रयोग होने लगा तथा अक्षरों के स्वरूप तथा मात्राओं के आकार में भी परिवर्तन दिखता है।

गुप्तकालीन ब्राह्मी का अशोककालीन ब्राह्मी से तुलनात्मक अध्ययन करने पर गुप्त लिपि की निम्न विशेषताएं ज्ञात होती हैं –

1. गुप्तकाल पूर्व ही अक्षर कोणदार होने लगे थे, किन्तु इस काल में वे पूर्णतः कोणदार हो गया था जैसे –

नागरी	**अशोककालीन ब्राह्मी**	**गुप्तकालीन ब्राह्मी**
घ		
प		
व		

2. कुछ अक्षरों की दाहिनी भुजा पहले की अपेक्षा अधिक लंबी होने लगी थी –

नागरी	अशोककालीन ब्राह्मी	गुप्तकालीन ब्राह्मी
क		
भ		
ड		

3. विसर्ग का प्रयोग नए प्रकार के चिन्हों को लगाकर किया जाने लगा। 'क' तथा 'ष' को छोड़कर शेष अक्षरों के साथ पूर्ववत ऊपर और नीचे डॉ. बिन्दु लगाकर विसर्ग लिखते थे। किन्तु 'क' के साथ इसके पहले (जिह्वामूलीय) तथा 'प' से पहले उपधमनीय चिन्ह लगाया जाने लगा।

गुप्त काल के शिलालेखों के अतिरिक्त मुद्राओं पर भी अक्षरों का प्रयोग हुआ, किन्तु इनमें अंतर है। शिलालेखों पर अंकित इस काल के अक्षरों की अपेक्षा मुद्राओं पर अंकित अक्षर भिन्न हैं। प्रायः यह परिवर्तन गुप्त राजाओं द्वारा पूर्वी भारत से प्रचलित सिक्कों में ही पाए गए हैं जब तक पश्चिम व दक्षिण भारत के गुप्त अभिलेखों में इनका अभाव है, इस कारण इन्हें पूर्वी प्रकार के अक्षर कहते हैं। फिर भी उदयगिरी के अभिलेखों में 'य' व 'प' की बनावट यथावत है। संभवतः इसका कारण यह रहा होगा की इनको उत्कीर्ण करने वाले

लेखक पाटलीपुत्र से ही आए होंगे। संभवतः यही कारण प्रभावती गुप्त के पूना ताम्रपत्र के अक्षरों की बनावट के लिए भी उत्तरदायी होगा।

गुप्त शासकों के अंतिम चरण में अक्षरों व मात्राओं दोनों के स्वरूप में परिवर्तन आने लगा था। संभवतः इसका कारण क्षेत्र की व्यापकता तथा रुचि की विविधता रही होगी। अक्षरों की दाहिनी भुजा पहले से भी अधिक लंबी होने लगी थी। दाहिनी हाथ की रेखा का निचला भाग शीर्ष के रूप से और अधिक बढ़ा दिया गया। कुछ अक्षरों जैसे ष, म, भ आदि में विशेष विकास देखने को मिलता है जो कुटिल लिपि की ओर बढ़ती दिखती है।

गुप्तों के समकालीन वाकटकों के अभिलेखों में अक्षर गुप्त काल की ही तरह थे किन्तु इनकी शिरोरेखा गुप्तकालीन अक्षरों की शिरोरेखा से भिन्न थी जहाँ शिरोरेखा के स्थान पर बाक्स की तरह आकृति बना दि गई है। जिसके कारण इनको बॉक्स हेडेड अक्षर कहा जाता है। इस तरह भारतीय भू–भाग में ब्राह्मी का विस्तार तथा विकास होता गया। विभिन्नन क्षेत्रों में इसके अलग अलग स्वरूप व शैलियाँ विकसित हुई जिनसे अनेकों लिपियों का उत्पत्ति हुई। इनमें से कुछ आज भी प्रयोग में लाई जा रही है जबकि कई लुप्त हो गई है।

7.5 सारांश

मौर्यों व शुंगों के काल के बाद भारत में कुषाणों का काल आया। कुषाणों के काल में ब्राह्मी में कुछ प्रमुख परिवर्तन आए, अक्षरों कोणदार होने लगे, तथा किनारों की लंबाई को बढ़ाया गया। इस काल के अक्षरों को सुंदरता से लिखने का प्रयास किया गया। कुषाणों के बाद लंबे समय तक भारत में कोई बड़ी राजनैतिक इकाई नहीं थी। इस काल में ब्राह्मी का कोई विशेष विकास देखने को नहीं मिलता। किन्तु जब चौथी शताब्दी में उत्तर भारत में गुप्तों का शासन आया तब पुनः ब्राह्मी का विकास देखने को मिलता है। इनके अक्षरों में अधिक कोणदार हो गए थे। कई अक्षरों में पूर्णतः अंतर देखने को मिलता है। सम्मिलित अक्षरों का अधिक प्रयोग होने के कारण इनके प्रकारों में भी भिन्नता देखने को मिलती है। गुप्तों के बाद भारत में सम्पूर्ण भारत में ब्राह्मी की अलग अलग शाखाएं विकसित होने लगे जैसे नागरी, शारदा, कुटिल, शीर्षपेटिका आदि।

इस प्रकार से हम ब्राह्मी के विकास का दूसरा चरण ई.पू. पहली शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक का विकास देखते हैं। जहाँ आरंभ में ब्राह्मी का प्रयोग केवल प्राकृत भाषा को लिखने के लिए किया जा रहा था वहीं बाद में संस्कृत को लिखने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाने लगा जिससे ब्राह्मी में कई नए अक्षरों व चिन्हों का विकास हुआ। आगे चलकर अक्षर थोड़े कोणदार,

छोटे तथा सुंदर दिखने लगे थे, आगे चलकर इन्हीं अक्षरों में और भी परिवर्तन आये जिनके प्रमाण हमें आगे हर्षकालीन अभिलेखों में तथा पूर्वमध्यकालीन अभिलेखों में मिलते हैं। जिसके बाद ब्राह्मी के कई अन्य प्रकार भी विकसित होने लगते हैं जिसमें बॉक्स शीर्ष, कुटिल लिपि, शीर्षमातृका आदि लिपियाँ थी। आगे चलकर उत्तर ब्राह्मी से ही पहले नागरी लिपि तथा उसके बाद देवनागरी तथा आज की अन्य उत्तर भारतीय लिपियों का विकास होता है।

7.6 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ.राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ..शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा

7.7 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. कुषाण कालीन ब्राह्मी की विशेषताएं बताइए।
2. कुषाण कालीन लिपि किस काल में प्रयुक्त होती थी ?
3. गुप्त कालीन लिपि की विशेषताएं बताइए।
4. गुप्त कालीन लिपि किस काल में प्रयुक्त होती थी ?

इकाई 8 : अभिलेखों के प्रकार एवं महत्व, अभिलेखीय साक्ष्य एवं इसका महत्व और सीमाएं

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 अभिलेखों के प्रकार

8.3.1 व्यापारिक लेख

8.3.2 तांत्रिक लेख

8.3.3 धार्मिक लेख

8.3.4 शासन या प्रशासनिक लेख

8.3.5 पूजा या समर्पणलेख

8.3.6 संस्मारक लेख

8.3.7 साहित्य

8.4 अभिलेखों का महत्व

8.4.1 साहित्यिक स्रोतों के प्रमाण के रूप में

8.4.2 राजनैतिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में

8.4.3 आर्थिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में

8.4.4 धार्मिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में

8.4.5 सम्राज्य इतिहास के स्त्रोत के रूप में

8.4.6 लिपि व भाषा के स्त्रोत के रूप में

8.4.7 प्रशासनिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में

8.4.8 विदेशियों के अस्तित्व के स्त्रोत के रूप में

8.5 सारांश

8.6 संदर्भ ग्रंथ

8.7 आदर्श अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारत के विभिन्नन क्षेत्रों से हमें अनेकों अभिलेख प्राप्त होते हैं जिनका इतिहास ई.पू. 3री शताब्दी से आरंभ हो जाता है। जैसा की पिछले अध्यायों में हमने जाना की लेखन कला का इतिहास वैसे तो मौर्य काल से पूर्व का है किन्तु हमें उस काल का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता, जिसका कारण संभवतः लेखन सामग्री के रूप में भोजपत्र, ताड़पत्र, चिथड़ों व रुई के कागजों आदि जैसे नष्ट हो जाने वाले साधनों का प्रयोग करना था। किन्तु सर्वप्रथम मौर्य शासक अशोक ने अपनी राजाज्ञाओं को शिलाओ, स्तंभों व गुहाओं में उत्कीर्ण करवाया ताकि ये स्थायी बने रहे। इसके बाद ही हमें अभिलेखों का प्रचलन देखने को मिलता है जिसमें अनेकों राजवंशों ने अपने अभिलेखों को मूर्ति, प्रस्तर, स्तम्भ, गुहा व ताम्रपत्रों आदि में उत्कीर्ण करवाया। इस अध्याय में हम अभिलेखों के प्रकार, महत्व, अभिलेखीय साक्ष्य के रूप में इनके महत्व व सीमाओं का अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्राचीन काल से भारत में अभिलेखों का प्रयोग अलग अलग उद्देश्यों के लिए किया जाता था। इस कारण विभिन्नन प्रकार के अभिलेख पूरे देश में पाए जाते हैं। अतः इस इकाई का उद्देश्य अभिलेखों के प्रकार व उनके महत्व का अध्ययन करना है।

8.3 अभिलेखों के प्रकार

मुख्यतः अभिलेख दो प्रकार के होते हैं –

1. राजकीय या आधिकारिक – यह स्वयं राजा द्वारा या उनके सामंतों, प्रांतीय शासकों तथा उच्च मंत्रियों द्वारा उत्कीर्ण करवाए जाते थे।
2. लौकिक या वैयक्तिक – लौकिक लेख सामान्य जन द्वारा होते थे यद्यपि वे अंशतः राजकीय लेखों का ही अनुसरण करते थे।

इसकी पुष्टि बाद के धर्मशास्त्र भी करते हैं जैसे स्मृतिचंद्रिका में वशिष्ठ दो प्रकार के लेखों का उल्लेख करते हैं लौकिक (लोगों के) व राजकीय।

राजकीय अभिलेखों को पुनः चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जिनका धर्मशास्त्रों के आधार पर परिभाषा व व्याख्या निम्न है –

1. **शासन**– यज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार शासन की परिभाषा में कहा गया है

की– 'भूमि देकर या दान करके राजा को उसे, आने वाले भद्र राजाओं के परिज्ञान के लिए, लिखित करा देना चाहिए। पुनः राजा की वस्त्र पर या ताम्रपत्र पर अपनी वंशपरम्परा तथा प्रशस्ति, प्रतिगृहीता का नाम, दान का परिमाण और भूमिभाग की सीमाओं के वर्णन से युक्त अपनी मुद्रा से चिन्हित तथा हस्ताक्षर एवं काल देकर स्थायी शासन कर देना चाहिए"।

2. **जयपत्र**– इसकी व्याख्या में कहा गया है की "व्यावहारिक कार्यवाही को स्वयं देखकर तथा प्राड्विवाक से सुनकर राजा को जनसाधारण के सूचनार्थ जय–पत्र देना चाहिए"।

3. **आज्ञापत्र** (अधीनस्थ राजाओं व सामंतों को आदेश के लिए)– वशिष्ठ की परिभाषा के अनुसार "आज्ञापत्र वह कहलाता है जिसके माध्यम से सामंतों, भृत्यों (उच्चकर्मचारियों) या राष्ट्रपालादिकों को कार्य का आदेश दिया जाए।

4. **प्रज्ञापनपत्र**– वशिष्ठ की व्याख्या के अनुसार "प्रज्ञापन वह है (प्रज्ञापन के लिए यह पत्र होता है) जिसके माध्यम से ऋत्विक (यज्ञपुरोहित) पुरोहित (राज्य के धार्मिक विभाग का अधिकारी), प्राचार्य, मान्य तथा अभ्यर्हित जनों के प्रति किसी कार्य का निवेदन किया जाए"।

किन्तु यह विभाजन अध्ययन की दृष्ठि से सही नहीं है अतः डॉ. राजबली पाण्डेय जी ने इसका वैज्ञानिक कर इन्हें 9 भागों में विभक्त किया है जो की निम्न है –

8.3.1 व्यापारिक लेख

डॉ..राजबली पाण्डेय के अनुसार सिंधु–सरस्वती सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त अभिलेख एक प्रकार के व्यापारिक अभिलेख हैं। कुछ मुद्राएं स्पष्ट रूप से व्यापारिक वस्तुओं की गांठों व वैयक्तिक व्यापारिक वस्तुओं जैसे मिट्टी के बर्तनों, पर अंकित करने के लिए प्रयुक्त होती थी। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार यह संभव है की ये मुद्राएं विदेशी व्यापार में रत नाविक व्यापारियों द्वारा प्रयुक्त होती थी तथा इन मुद्राओं में छोटे अभिलेख साधारण अधिकारियों के तथा बड़े अभिलेख उनके स्वामियों की पदवियाँ हो सकती है। तथा ये मुहरें पार–पत्र के रूप में प्रयोग की जाती रही होंगी जब यहाँ से व्यापारी विदेशों में जाते होंगे। इसके अतिरिक्त मिट्टी की बहुत सी मुहरें विभिन्नन पुरास्थलों से प्राप्त हो चुकी है जो संभवतः व्यापारिक विनिमय अर्थात क्रय–विक्रय की सुरक्षा व गोपनीयता के लिए प्रयोग में लाई जाती रही होंगी। मालवसंवत 529 का

कुमारगुप्त–बंधुवर्मन प्रस्तर अभिलेख भी इसी कोटी का है।

8.3.2 तांत्रिक लेख

हड़प्पा पुरास्थलों से पाई गई अनेक मुहरों में छिद्र पाए गए हैं जिनमें संभवतः धागा पिरोकर ताबीज की तरह पहना जाता था। इनमें लेख अभिलिखित हैं जो संभवतः तांत्रिक मंत्र हो सकते हैं। इनके एक बहग में ठप्पा है तथा पृष्ठभाग बिल्कुल सपाट है अर्थात इनका प्रयोग व्यापारिक नहीं रहा होगा। चूँकि इन अभिलेखों को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है अतः निश्चित रूप से यह इनकी विषयवस्तु के बारे में कहा नहीं जा सकता। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है की इनमें अनेक प्रकार के विचित्र पशुओं की आकृतियां बनी हुई संभवतः इनमें अपने–अपने संप्रदायों के विशिष्ट पशुओं द्वारा व्यक्त किए जाने वाले देवताओं के नाम तथा उनके प्रति स्रोत हों। सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त मुहरों पर निम्न पशुओं का अंकन संभवतः सामने दिए गए देवताओं को व्यक्त करते हैं –

1.	कुरंग मृग	चंद्रमा
2.	महिष	यम
3.	ब्राह्मी वृषभ	शिव
4.	हस्ति	इन्द्र
5.	अजा	ब्रह्मा
6.	शश	चंद्रमा
7.	गैंडा	नदी
8.	छोटे सिंग वाले वृष	शिव
9.	व्याघ्र	दुर्गा (मातृदेवी)

8.3.3 धार्मिक और शिक्षात्मक लेख

धर्म या आचार के वर्णन, अवस्था एवं उपदेशों से संबंधित सभी अभिलेख इस कोटि में आ जाते हैं। अशोक ने अपने लेखों को 'धम्मलिपि' कहा है। अशोक के चतुर्थ शिलालेख के इस कथन 'तिन अमूतपदानि इअ सु–अनुठितानि। नेयति स्वयं दय चाग अप्रमाद' से यह स्पष्ट होता है की उसने धर्म के संबंध में इन्हें लिखवाया था। बेसनगर का हेलीयोडोरस गरुड़ स्तम्भ भी

धार्मिक अभिलेख का एक प्रमाण है। परवर्ती युगों में विशुद्ध धार्मिक एवं आचरणात्मक प्रकार के अभिलेख नहीं पाए जाते, धार्मिक और नैतिक विषय पूजा और दानपरक सामग्री से मिश्रित पाए जाते हैं उदाहरणार्थ मालव संवत 493 और 529 के कुमारगुप्त द्वितीय के मंदसौर प्रस्तर–अभिलेख में एक प्रबोधात्मक एवं दार्शनिक टिप्पणी दी गई है।

8.3.4 शासन या प्रशासनिक लेख

गुप्त शासकों के काल में प्रायः धार्मिक भावना से प्रेरित अभिलेख लिखवाए जाते थे, जो शिला, फलक, स्तम्भ, मूर्तियों आदि पर लिखवाए गए थे किन्तु प्रशासनिक लेखों के प्रमाण मौर्य शासक अशोक के अभिलेखों में ही मिलते हैं। यद्यपि ये अभिलेख धर्म और आचार से प्रभावित होकर लिखे गए थे जैसे –

'सर्वत्र मेरे विजित प्रदेश में प्रयुक्त रज्जुक तथा प्रादेशिक (धर्मशिक्षा) तथा अन्य कार्यों के लिए पाँच–पाँच वर्ष में परिभ्रमण करेंगे....।

कभी–कभी इन अभिलेखों को लिखवाने का उद्देश्य भी लिखवाया जाता था जैसे बेसनगर गरुड़ ध्वज में अंकित है कि–**'देवदेवस वासुदेवस गरुड़ध्वजे अयं कारिते'**–देवधिदेव वासुदेव के निमित्त यह गरुड़ध्वज स्थापित किया गया है। प्रसंगवत इनमें राज्य की उपलब्धियों और जनकल्याणकारी कार्यों का भी उल्लेख मिलता है जैसे –

"इसलिए मैंने एस प्रबंध किया है कि हर समय – खाने के समय भी हर जगह–अन्तःपुर, गर्भागार, मार्ग यान तथा उद्यान में–प्रतिवेदक आकार मुझे प्रजा की बाटें (अर्थ) सुनाएं। मैं सर्वत्र प्रजा का कार्य करता हूँ। जो कुछ भी मैं स्वयं मुख से देने या घोषित करने के लिए कहूँ, एवं जो कुछ महामात्रों को आवश्यक (आव्ययिक) आज्ञा दी जाए और परिषद में उनके प्रति कोई विवाद या अस्वीकृत हो, तो मुझे हर समय हर जगह सूचित किया जाय।

अशोक की धम्मलिपियाँ "देवानां पियदसी राजा.." से आरंभ होती है। इसमें कभी–कभी राजत्वकाल का भी उल्लेख मिलता है जैसे – **"अठ–बष–अभंसितम देवनप्रियस...."**

"देवताओं के प्रिय की आज्ञा से तोसली नगर के नगर व्यवहारक (नगर प्रशासक) महामात्र से इस प्रकार कहना चाहिए कि जो कुछ मैं सोचता हूँ, वही चाहता हूँ। वह क्या है ? उसे कार्यान्वित करता हूँ और उसकी सूचना समुचित उपायों से देता हूँ। और कार्य को सिद्द करने का मुख्य उपाय है आप लोगों को

शिक्षा देना। आप लोग अनेक सहस्त्र प्राणियों के ऊपर इसलिए नियुक्त किये गए हैं की लोगों का प्रेम मुझे प्राप्त हो।"

विशुद्ध रूप से शासनपरक अभिलेख का उदाहरण ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी के सोहगौरा अभिलेख ताम्रपत्र मे प्राप्त होता है –

"श्रावस्ती के महामात्रों का मानवशीतिकट को आदेश। श्रीमान ऊषाग्राम में ये दो कोष्ठगार स्थापित किये गए हैं। दुर्भिक्ष और अन्य आपत्ति के अवसरों पर त्रिकवेणी, माथुर, चञ्चु, मयूडे और भल्लक ग्रामों में (इनसे) धान्य बांटा जाय। इस (वितरण) में बाधा नहीं होनी चाहिए।"

इस प्रकार का एक अन्य उदाहरण 150 ई का रुद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ अभिलेख से प्राप्त होता है जिसमें प्रजा के हित के लिए सुदर्शन झील के बांध का पुनर्निर्माण का वर्णन है। इसी प्रस्तर पर गुप्त शासक स्कंदगुप्त का भी अभिलेख है जिसमें सुदर्शन झील के पुनर्निर्माण का वर्णन है जिसका प्रासंगिक अंश निम्न है –

"तब क्रम से, ग्रीष्म काल को बादलों के द्वारा विदर्ण कर वर्षाकाल के आने पर लगातार बहुत काल तक अत्यधिक जल–वर्षा हुई जिससे, गुप्त काल की गणना के अनुसार, 136 वें संवत्सर के प्रौष्ठपद मास के छठे दिन की रात को अचानक टूट गया था।"

"..(उसने) बड़े आदर भाव से और अप्रमेय धन व्यय करके महीनों के दीर्घ परिश्रम के अनंन्तर गु. सं. 136 के वैशाख मास के पूर्व पक्ष के प्रथम दिन सुदर्शन झील को 100 हाथ लंबाई 68 हाथ चौड़ाई 7 पुरुष ऊंचाई 200 हाथ.. में सम्यक रूपेण पत्थरों को रख कर बँधवा दिया ताकि चिरंतन काल तक फिर न टूटे।"

इनके अतिरिक्त परवर्ती काल के बहुसंख्यक ताम्रपत्र भी प्राप्त हुए है जो वैसे तो दानार्थ लिखे गए थे किन्तु शासन संज्ञा से अभिहित है और इनमें शासन संबंधी तात्विक सामग्री विद्यमान है उदाहरण के लिए –

"परंभट्टारक महाराजाधीराज श्री हर्ष ..मर्कट–सागर में एकत्रित महसामंत राजाओं, दौस्साधसाधनिक, प्रमातार, प्रतिनिधि, कुमारमात्य, उपरिक, विषयपति, चाट व भट तथा मर्कट–सागर में एकत्र हुए लोगों को आज्ञा देता है। आप लोगों को यह ज्ञात ही है कि, मैंने प्रतिग्रह और दान के नियमों के अनुकूल भूमिच्छिद्रन्याय से भूमिकर एवं राज्य परिवार को प्राप्त होने वाले अन्य करों, परिहारों तथा विषय से पृथक किये गए भूभाग के साथ सीमापर्यंत उल्लिखित

ग्राम भट्टबालचंद्र और भद्र स्वामिकों को दे दिया है। ऐसा जान कर ग्रामवासी जनों को समुचित तौल, माप, भूमि तथा भोग को आज्ञाकारी भाव से इन्हीं के पास ले जाना होगा तथा (उनकी) सेवा और आदर भी करना होगा।"

इसी प्रकार प्रभावती गुप्त का पूना ताम्रपत्र–अभिलेख, शिवस्कन्दवर्मन का हिरहडगल्ली ताम्रपत्र–अभिलेख आदि भी शासन या प्रशासनिक अभिलेखों के उदाहरण है।

इन अभिलेखों में कभी कभी पड़ोसी राजा और उनकी स्थिति का भी वर्णन होता है जैसे बेसनगर गरुड़स्तम्भ में 'कौत्सीपुत्रभगभद्र" का वर्णन आता है जो कि मथुरा में कौत्सीपुत्र भगभद्र के शासन की जानकारी देते हैं अशोक के अभिलेखों में भी पड़ोसी राज्यों व उनके राजाओं का उल्लेख किया है। अशोक ने अपने अधिकारियों को संबोधित करते हुए आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया है। हर्ष के बांसखेड़ा अभिलेख में भी अधिकारियों को आदेश दिया गया है। ऐसे अनेकों अभिलेख शासकों द्वारा अपने अधिकारियों, सामंत राजाओं अथवा प्रजा के लिए आज्ञा भी उत्कीर्ण करवाए जाते थे।

8.3.5 पूजा या समर्पणात्मक लेख

भारतीय इतिहास में अभिलेखीय स्रोतों में पूजात्मक अथवा समर्पण अभिलेखों की संख्या भी प्रशस्यात्मक अभिलेखों की भांति अधिक है। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार हड़प्पा व सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त ताबीजों पर पूजापरक अभिलेखों के होने की पूर्ण संभावना है। पूजात्मक अभिलेखों में प्राचीनतम उदाहरणों में से एक पिपरहवा बौद्ध कलश अभिलेख है। जिसमें भगवान बुद्ध की अस्थि मजूषा का समर्पण लिखा है।

"अपने पुत्रों, भगिनियों और भार्याओं के साथ (बुद्ध के) शाक्य बंधुओं ने भगवान बुद्ध की यह अवशेष–मजूषा को समर्पित है।"

इस प्रकार का एक अधिक प्रौढ़ उदाहरण हेलियोडोरस बेसनगर गरुड़ स्तम्भ–लेख है –

देवदेवस वासुदेवस गरुड़ ध्वजे अयं

कारिते इअ हेलियोडोरेण भाग

वतेन दियस पुत्रेण तख्खसिलासेन

योनदूतेन आगतेन महाराजस

अंतलिकितस उपंता सकासं रञो

कोसीपुत्रस भागभाद्रस त्रातारस

वसेन चतुदसेन राजेन वधमानस द्यद्य

त्रिनि अमुतपदानि इअ सु अनुठितानि

नेयंति स्वर्गं दम चाग अप्रमाद।

इस अभिलेख में एक पूर्ण विकसित समर्पण या पूजापरक अभिलेख के सभी तत्व विद्यमान है। इसके विषयों का निम्नांकित विश्लेषण इस कथन को स्पष्ट करता है –

1. जिसे स्तम्भ समर्पित किया गया उस देवता का नाम और विरुद (देव–देवस वासुदेवस)।
2. स्तम्भ का प्रकार गरुड़ध्वज और उसका स्थापन।
3. अपने विरुद (भागवत), पिता के नाम (दियोन), स्थान (तक्षशिला), उसकी स्थिति और उपाधि (यवनदूत) तथा जिसका प्रतिनिधित्व करता था उस राज्य के नाम (अंतियाल्किडास) के साथ इसके कारणमूल व्यक्ति (हेलियोडोरस) का नाम।
4. माता का नाम (कौत्सी), राजसी उपाधि महाराज तथा विरुद (त्राता) के साथ उस क्षेत्र के ऊपर शासन करने वाले राजा का नाम (भागभद्र)।
5. वर्धमान शासन का शासन वर्ष 14 (वसेन चतुदसेन राजेन वधमानस)।
6. एक आचारपरक उक्ति (या कथन)।

समर्पपरक या पूजा लेख का प्रमुख विषय मूर्तियों की स्थापना या मंदिरों का निर्माण आदि होता है। कुमारगुप्त द्वितीय और बन्धुवर्मन के समय के मंदसौर अभिलेख में समर्पपरक प्रकार का सर्वाधिक प्रौढ़रूप मिलता है। इस अभिलेख के विषय इस प्रकार है।

1. पहले तीन प्रार्थना सम्बन्धी श्लोक–भगवान सूर्य की स्तुति।
2. लाटदेश का वर्ना जहाँ से जुलाहों की श्रेणी ने प्रस्थान किया।
3. दशपुर का आकर्षण जहाँ लाटप्रदेश से श्रेणी आये।
4. दशपुर नगर के अंतर्गत 1.भूमि के परम तिलक रूपनगर, 2.नगर की

झीलों (सर), 3.इसके उपवन तथा 4. विभिन्नन कर्मों से सम्बंधित तथा उच्च चरित्र वाले निवासियों का वर्णन।

5. श्रेणी सदस्यों का गुणगान।
6. श्रेणी द्वारा निर्मित वस्त्र का विज्ञापन।
7. संसार एवं उसके अनेकविध अधिकारों की अस्थिरता का अनुभव।
8. वर्तमान राजाकुमारगुप्त का पृथ्वी पर शासन करने का संकेत।
9. प्रत्नीय राज्य प्रमुख (गोप्ता), विश्ववर्मन तथा उसके पुत्र बन्धुवर्मन के संकेत।
10. दोनों की प्रशस्ति।
11. जुलाहों की श्रेणी द्वारा धन का बड़ा भाग व्यवय करके सूर्यमंदिर का निर्माण।
12. मंदिर की प्रशंसा।
13. मंदिर के निर्माणकाल की ऋतु (हेमंत) का वर्णन।
14. संवत (मालव) वर्ष (493), ऋतु(सेव्यधनस्तने= शरद), मास (सहस्य=पौष), पक्ष (शुक्ल), तथा तिथि (त्रयोदशी)।
15. समुचित विधानों के पश्चात (मंगलाचारविधिना) मंदिर का संस्कार।
16. मंदिर के एक अंश की विशीर्णता।
17. मंदिर का पुनः संस्कार (भूयः संस्कार)।
18. पुनर्निर्मित मंदिर का वर्णन।
19. पुनर्निर्माण का वर्ष, मास, पक्ष तथा तिथि।
20. पुनर्निर्माण की ऋतु(वसंत) का वर्णन।
21. मंदिर के कारण नगर का अलंकरण।
22. मंदिर के दीर्घजीवन की कामना।
23. प्रलेख की वत्सभट्टि द्वारा रचना।
24. खोदनेवाले, लिखनेवाले तथा पढनेवाले के प्रति कल्याण कामना। मांगलिक सूत्र 'सिद्धिरस्तु'।

देश के विभिन्नन भागों से प्राप्त अनेक समर्पणपरक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। उनमें अधिकतर उपरिनिर्दिष्ट अभिलेख के समान शैली का अनुसरण करते हैं। फिर भी उनमें से कुछ में प्रायः प्रशस्ति के रूप में, शासनासीन सम्राटों का विस्तृत वंशक्रम तथा राजनितिक कृतियों का वर्णन है। इसके बाद का एक उत्तम उदाहरण स्कंदगुप्त का भीतरी स्तंभलेख तथा पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख है।

8.3.5 प्रशस्तियां

प्रशस्ति का अर्थ होता है प्रशंसा या गुणगान आदि। राजनैतिक दृष्टि से प्रशंसत्यात्मक अभिलेखों का सबसे अधिक महत्व है क्योंकि वे निम्नलिखित सूचना प्रदान करते हैं –

1. संबंधित शासक का नाम तथा वंशक्रम।
2. राजा का प्रारम्भिक जीवन।
3. उसकी सैनिक, राजनैतिक एवं शासन संबंधी उपलब्धियां।
4. उसके संपर्क में आए हुए समकालीन राज्यों का अस्तित्व एवं पारस्परिक संबंध।
5. राजनैतिक आदर्श आर व्यवहार, शासन व्यवस्था।
6. राजा की व्यक्तिगत विशेषताएं।
7. उसकी आश्रयशीलता, उदारता एवं दानशीलता।
8. तुलना और उपमाओं के रूप में पौराणिक निर्देश।

इन प्रशंसयात्मक अभिलेखों का एक समान्य दोष यह है की इनमें राजाओं के गुणों, शक्तियों या सामर्थ्य के वर्णन में अतिशयोक्ति का भाव दिखता है। तथापि अतिशयोक्तियाँ साधारणतः कथनों में पायी जाती है। विशिष्ट विवरण अपेक्षाकृत अधिक गंभीर होते हैं।

प्रशस्यात्मक अभिलेखों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है –

1. विशुद्ध प्रशस्यात्मक।
2. मिश्रित।

8.3.6 विशुद्ध प्रशस्यात्मक अभिलेख

अशोक के अभिलेखों में जिनमें अशोक के धर्म–विजय (धम्मविजय) का उल्लेख है एक अलग वर्ग है। इनमें प्रशस्ति के सभी महत्वपूर्ण तत्व है की किन्तु, पशस्ति के आवश्यक उद्देश्य, उसकी शैली और ओजस्विता का अभाव है। इनका उद्देश्य शासक की प्रशंसा न होकर धर्म का उपदेश और उसकी व्याख्या करना है। इनकी प्रकृति की शांतिप्रियता ओज प्रकट नहीं करती जो बाद के युद्दशील शासकों की प्रशास्तियों में दिखती है। अशोक का तेरहवाँ शिलालेख इस विषय को स्पष्ट करता है।

"आठ वर्ष पूर्व अभिषिक्त देवएओन के प्रियदर्शी राजा के द्वारा कलिंग जीता गया। ढाई लाख प्राणी वहाँ से (बंदी बनाकर) लाए गए, एक लाख वहाँ आहत हुए और इनसे कई गुणा अधिक की मृत्यु हुई.....कलिंग को जीतकर देवों के प्रिय को यह चिंता है।....धर्म विजय देवों के प्रिय के अनुसार प्रमुख विजय है और यह देवों के प्रिय के द्वारा यहाँ और समीप के 600 योजन तक के प्रदेश में प्राप्त कर ली गई है।...उसी उद्देश्य से यह धर्म लिपि लिखवाई गई है। वह उद्देश्य क्या है ? जो मेरे पुत्रों और प्रपौत्र होगें वे नई विजय प्राप्त करने की न सोचे...शांति व अल्प दंडता उन्हे रुचिकर हो और उसी को विजय माने जो धर्मविजय है।"

विशुद्ध प्रशस्ति का पहला उदाहरण कलिंग के राजा खारवेल के हाथी गुंफा अभिलेख में प्राप्त होता है। यह कालक्रम के अनुसार गौरवपूर्ण शब्दों में खारवेल की कृतियों व उपलब्धियों का वर्णन करता है। इस अभिलेख में प्रशस्ति के लक्षण स्पष्ट अंकित है –

विशुद्ध प्रशस्ति का पहला उदाहरण कलिंग के राजा खारवेल के हाथी गुंफा अभिलेख में प्राप्त होता है। यह कालक्रम के अनुसार गौरवपूर्ण शब्दों में खारवेल की कृतियों व उपलब्धियों का वर्णन करता है। इस अभिलेख में प्रशस्ति के लक्षण स्पष्ट अंकित है –

1. अभिलेख के ऊपर बाईं ओर कोने में बद्धमंगल और स्वस्तिक चिन्ह अरहंतों व सिद्धों को नमस्कार।
2. खारवेल का मूल वंश–ऐल, उसकी राजसी उपाधि–महाराजाधिराज, उसका विरुद–महमेघवाहन, उसका कौटुंबिक विरुद–चेतिराजवंशवर्धन, उसकी स्थानपरक उपाधि–कलिंगाधिपती, उसका व्यक्तिगत नाम–श्री खारवेल।

3. उसका पं.द्रह व्यवर्ष तक का क्रीड़ामय आरंम्भिक जीवन।

4. उसके अगले 9 वर्षों में ज्ञान की विभिन्नन शाखाओं की शिक्षा।

5. 24 वर्ष की अवस्था में राज्याभिषेक।

6. शासन के प्रथम वर्ष में टूटी–फूटी इमारतों का पुनर्निर्माण, तालाबों और झीलों का निर्माण, उद्यानों की स्थापना तथा प्रजा का कार्य।

7. द्वितीय वर्ष में शतकर्णी की उपेक्षा करके, उसने पश्चिम की ओर एक विशाल सेना को भेजा और कृष्ण नदी के तट पर असिकनगर को त्रस्त किया।

8. शासन के तृतीय वर्ष में राजधानी की प्रजा के मनोरंजन के लिये सामाजिक उत्सवों की व्यवस्था की।

9. चौथे राजवर्ष में विद्याधर धीवास नामक राजप्रासाद में प्रवेश किया था रठिकों व भोजकों को परास्त किया।

10. पांचवें राजवर्ष में जल प्रणाली को नगर में लाया जिसका उद्घाटन 300 वर्ष पुर्व नन्द राजाओं ने किया था।

11. छठे राजवर्ष में उसने राजसूय यज्ञ किया तथा लोगों को दान दिया।

12. सातवें राजवर्ष में गोरखगिरी को जीतकर राजगृह पर आक्रमण किया और यवन राजा दियुमेत को मथुरा भाग जाने के लिए विवश किया।

13. नवें वर्ष 38 लाख (अठतिसाय सत–सहसेहि) मुद्राओं के मूल्य से महाविजय प्रसाद बनवाया।

14. दसवें वर्ष भारतविजय के लिए प्रस्थान किया।

15. ग्यारहवें वर्ष परास्त राजाओं का कोष ले लिया और पूर्व राजा की राजधानी पिथुण्ड नगर को गधों से जुटवाया दिया। त्रमिस्र (द्रविड़) देश के संघ को भी तोड़ दिया।

16. बारहवें वर्ष उत्तरापथ के राजाओं को त्रस्त किया, अपने हाथी घोड़ों को गंगा का जलपान कराया। मगध के राजा वृहस्पतिमित्र को चरणों में झुकाया तथा नंदराज द्वारा ले जायी गयी जिन–मूर्तियों को वापस लाया तथा मगध तथा यंग की संपत्ति ले गया।

17. तेरहवें वर्ष में जैन अरहंतों के लिए कुमारी पर्वत पर गुफाओं का

निर्माण करवाया।

18. श्री खारवेल क्षेम का राजा, वृद्धि का राजा, भिक्षुओं का राजा, धर्म का राजा, कल्याणों को देखते, सुनते और अनुभव करते हुए गुणों में विशेष निपुण, समस्त पार्षदों का पूजक, सभी देव प्रतिमाओं का संस्कार करने वाला, अप्रतिहत चक्र तथा सैन्यबल वाला, राजचक्र धरण करने वाला, सुरक्षित राजचक्र वाला, प्रवित्त राजचक्र वाला, राजर्षि वसु–कुलोत्पन्न, महाविजयी राजा श्री खारवेल।
19. नीचे दाहिने कोने पर कल्पतरु।

विशुद्ध प्रशस्ति का एक दूसरा नमूना समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ–अभिलेख है जिनसे प्राचीन भारत के महान शासकों की प्रशस्तियों के लिए आदर्श उपस्थित किया। इसकी विषयवस्तु का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है –

1. समुद्रगुप्त के कुछ प्रारम्भिक सैन्य कार्य।
2. राजा के साहित्यिक कार्य।
3. समुद्रगुप्त का अपने पिता का उत्तराधिकारी बनने के लिए युवराज के रूप में चुनाव।
4. समुद्रगुप्त के शौर्यपूर्ण और अमानुषिक सैन्यपरक और राजनैतिक कृत्य जिन्होंने दूसरे राजाओं को समर्पण के लिए विवश किया।
5. समुद्रगुप्त द्वारा पाटलिपुत्र पर अधिकार और कोत कुल का उन्मूलन।
6. आर्यावर्त के प्रथम युद्ध में नाग, अच्युत, नगसेन, गणपतिनाग इत्यादि के ऊपर विजय।
7. राजा के धार्मिक और साहित्यिक कृत्य।
8. राजा का विरुद पर्यक्रमांकदित्य।
9. राजा के सैनिक गुण।
10. समुद्रगुप्त द्वारा दक्षिणापथ विजय व धर्मविजयी नीति का अनुसरण।
11. आर्यावर्त का दूसरा युद्ध और समुद्रगुप्त द्वारा विजय नीति का अनुसरण।
12. आटविक राजाओं का दमन।
13. दक्षिणपूर्व के सीमांत नृपतियों का आत्मसमर्पण।
14. दक्षिण–पश्चिम की ओर के गणतंत्रों का आत्मसमर्पण।
15. भ्रष्ट राजवंशों का प्रतिष्ठापन।
16. सुदूर उत्तर–पश्चिम के शक–कुषाणों से (अधीनता स्वीकार कराके)

मैत्री संबंध।

17. सिंहल तथा हिन्द महासागर के अन्य द्वीपों के जनों की समुद्रगुप्त के साथ अधीन संधि।
18. समुद्रगुप्त का अद्वितीय चक्रवर्तित्व।
19. समुद्रगुप्त के धार्मिक कार्य।
20. धनद, वरुण, इन्द्र, तथा अंतक (यम) आदि देवताओं से उसकी कार्य–तुलना।
21. अधिकारियों के माध्यम से उसका सुंदर शासन।
22. संगीत कला में प्रवीणता।
23. उसकी उच्च साहित्यिक योग्यता तथा 'कविराज' की उपाधि।
24. समुद्रगुप्त संसार के आश्रय के रूप में।
25. श्रीगुप्त से लेकर समुद्रगुप्त तक गुप्तवंश का वंशक्रम। समुद्रगुप्त की महाराजाधिराज उपाधि।
26. विजय स्तम्भ का खड़ा करना, जिसकी तुलना समुद्रगुप्त के यश का उद्घोष करने वाली पृथ्वी की भुजा से की गयी है।
27. समुद्रगुप्त का यश तीनों लोकों में फैल गया।
28. प्रशस्ति को काव्य कहा गया है।
29. इस प्रशस्ति का रचयिता हरिषेण था जो संधिविग्रहिक (संधि और युद्ध का मंत्री), कुमारामत्य (राजकुमार के पद का उपभोग करने वाला उच्च अधिकारी) एवं महादण्डनायक (सेना का प्रमुख अधिकारी) था तथा महादण्डनायक भवभूति का पुत्र था।
30. तिलभट्ट इस लेख्य का अनुष्ठाता था।
31. यह इच्छा कि प्रशस्ति सभी प्राणियों के सुख एवं कल्याण के लिए है।

मिश्रित प्रशस्ति अभिलेख

मिश्रित प्रशस्तियों की संख्या अनंत है। स्थायी लेख्य के लिखने के लिए प्रत्येक संभव अवसर का प्रयोग समसामयिक राजाओं एवं उनके पूर्वजों के यश को अमर बना देने के लिए किया जाता था। प्रत्येक आधिकारिक, दानपरक, पूजापरक स्मारक लेख्य में और प्रायः इसी प्रकार के प्रत्येक लौकिक लेख्य में शासन करने वाले राजाओं की प्रशस्ति होती थी। लौकिक लेख्यों में लेख और दस्तावेज के कारणभूत लोगों की भी प्रशस्ति होती थी। मिश्रित प्रशस्ति के उदाहरणों में उषवदत का नासिक गुहा अभिलेख, रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ अभिलेख, गौतमिबलश्री के नासिक गुहालेख, वीर पुरुषदत्त के नागार्जुनी कोंडा अभिलेख, चंद्र का महरौली लौह स्तम्भलेख, कुमारगुप्त द्वितीय बंधुवर्मन के काल

का मंदसौर प्रस्तर अभिलेख, स्कंदगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख, स्कंदगुप्त का भीतरी स्तम्भ लेख, यशोधर्मन का मंदसौर स्तम्भ अभिलेख, ईशानवर्मन का हरहा स्तम्भलेख, पुलकेशीन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख, शांतिवर्मन के समय के तालकुंडा स्तम्भ लेख आदि महत्वपूर्ण हैं।

स्मृतयात्मक लेख

उत्तरगुप्त शासकों के बाद एक विशिष्ट लेख लिखवाने का प्रचलन दीखता है, इनका मूल सन्दर्भ दान देने के सम्बन्ध में होता था इस कारण इन्हें दान–शासन अभिलेख कहा जाता है। इस प्रकार के अभिलेख 5 वींशताब्दी से लेकर पूर्व मध्य काल तक मिलते हैं। इस प्रकार के लेख मुख्यतः ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण करवाए जाते थे, जिसका कारण संभवतः यह रहा होगा की दानग्राहीइसको सरलतापूर्वक तथा सुरक्षारीति से अपने पास रख सके तथा वह स्थायी सम्पति उसकी बनी रहे। किन्तु कहीं कहीं शिलाओं पर भी दान–शासन अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाए जाने के प्रमाण मिले हैं।

चूँकि प्राचीन भारत में गृहस्थ के लिए यज्ञ (इष्ट) करना तथा दान देना आवश्यक समझा जाता था इसलिए राजा और प्रजा सभी दान दिया करते तथा स्थायी प्रकार के दान को लिखित करवाते थे। समर्पित वस्तुओं के आधार पर इस प्रकार के अभिलेखों को निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है –

1. वे अभिलेख जिनमें भिक्षुओं, सन्यासियों के आवास अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए गुफाओं का निर्माण या उनके किसी भाग का दान निर्देश है –
2. पूर्ण गुफाओं का परिखनन, जिन्हें कुभा (गुहा), लेन (लयन) तथा सेलघर (शैलगृह) कहते थे। गुहादान अभिलेखों का सर्वप्रथम उदाहरण बिहार के बराबर पहाड़ी पर मिलता हैं जहाँ मौर्य सम्राट अशोक ने दान में दिये थे, जिनमें प्रथम निम्न है –
3. "बारह वर्ष पूर्व अभिषिक्त हुए प्रियदर्शी राजा के द्वारा यह न्यग्रोध–गुहा अजीवकों के लिए दी गयी है।"
4. समर्पण मात्र को लिखित करनेवाला का यह साधारण अभिलेख है। अशोक के पौत्र दशरथ के नागार्जुनी गुहा अभिलेख इसकी अपेक्षा अधिक बड़े तथा दान अभिलेखों के अतिरिक्त तत्वों को लिए हुए हैं –
5. "देवों के प्रिय दशरथ ने अभिषेक के बाद आजीवक महानुभावों को

निवास के लिए, वाहयिका गुहा जब तक चंद्र और सूर्य हैं तब तक के लिए दान कर दी।"

6. दक्षिण का पश्चिमी भाग गुहदान–अभिलेखों की दृष्ठि से अतिसमृद्ध है। इसका संबंध क्षहरात और आंध्र सातवाहन वंशों से है। उड़ीसा में उदयगिरी और खंडगिरी की तथा औरंगाबाद के समीप अजंता में कई प्रकार के दान संबंधी अभिलेख सुरक्षित हैं जिनका विषय निम्नांकित है–

7. दो या अधिक रहने की कोठरियों का परिखनाय इन्हें विगभ (दो गर्भ वाले), चतुभग् (चार गर्भ वाले), पं.चभग (पाँच भाग वाले), इत्यादि कहते थे।

8. चेतियघर, चैत्य, चेतिय, कोठि इत्यादि कहे जाने वाले चैत्य गुहाओं का दान।

9. सभामंडपों, भोजनशालाओं, उपस्थानशालाओं इत्यादि का दान।

10. जलाशयों, तालाबों, कुओं आदि का दान, जिन्हे पानीयक, पानीय–भोजन, वापि, तड़ाक इत्यादि कहा जाता था।

11. गुहाओं के अग्रभाग (घरमुख, गभदार आदि) का दान।

12. चकमपथ (चंक्रमपथ) कहे जाने वाले पथों के दान।

13. स्मारक के रूप में स्तूपों का दान।

14. प्रतिमाओं (भगवत प्रतिमा), हस्ति व यक्ष मूर्तियों, पत्थर के आसन वेदिकाओं (वेयीका) आदि के दान।

15. दानात्मक अभिलेख – ये दान या तो किसी धार्मिक या पवित्र निर्माण के सम्पूर्ण या आंशिक लागत के लिए या भिक्षुओं के भोजन, ब्राह्मणों के भोजन या भूखों के भोजन इत्यादि विभिन्नन उद्देश्यों के लिए अक्षय नीवि के रूप में होते थे। पहले प्रकार के तमाम अभिलेख पश्चिमी घाट में पाये गये हैं। दूसरे प्रकार का प्रतिनिधि उदाहरण हुविष्क के समय का मथुरा अभिलेख है।

16. "सिद्दम (चिन्ह) संवत्सर 28 के गुर्पिय (गॉर्प्यास = भाद्रपद) मास के प्रथम दिन इस पुण्यशाला (धर्मशाला) को सरुकमाण के पुत्र खरासलेन तथा वकन के स्वामी (पति) के द्वारा अक्षयनीति दी गई। उसके ब्याज

(वृद्धि) से प्रतिमास, शुक्लपक्ष (शुद्ध) के चतुर्दशी को पुण्यशाला में सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए (परिविषित्वयं)। प्रत्येक दिवस पुण्यशाला के दवर पर सत्तुओं के तीन 3 आढक, लवण का 1 प्रस्थ, चटनी का 1 प्रस्थ, हरित कलापक के 3 घटक तथा 5 पान पत्र रखने चाहिए। यह अनाथों, भूखों तथा प्यासों को देना चाहिए। जो इससे पुण्य हो वह देवपुत्रषाहि हुविष्क का, जिनको देवपुत्र प्रिय है उनका एवं सम्पूर्ण पृथ्वी का हो। डॉ. श्रेणियों को दो अक्षयनिवियां 550 पुराण की, दी गयी।

17. विभिन्न पदार्थों के दान को लिखित करने वाले अभिलेख इस प्रकार का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण उषवदत का नासिक–अभिलेख है जो इस प्रकार है।

18. "राजा क्षहरात क्षत्रप नहपान के जमाता, दीनीक के पुत्र उषवदत तीन सौ सहस्त्र गायों के देने वाले, बार्णासा नदी पर सुवर्णदान और तीर्थ करने वाले देवताओं और ब्राह्मणों के लिए 16 ग्राम देने वाले, प्रतिवर्ष सौ सहस्त्र ब्राह्मणों को भोजन कराने वाले, प्रभास पुण्यतीर्थ में ब्राह्मणों के लिए आठ भार्याओं के देने वाले, भृगुकच्छ, दशपुर, गोवर्धन तथा शूर्पारक के चार (चतुः) धर्मशालाओं (शालावसय) के आश्रय (प्रतिश्रय) के देने वाले, उद्यानों के स्थापक, तालाबों (तड़ाग) और कुओं के निर्माता, इबा, पारदा, दमन, तापि, करबेणा तथा दहमिका नदियों में नावों से पार जाने को निशुल्क करने वाले, इन नदियों के दिनों तीरों पर विश्रामगृहों (सभा) तथा पौधशालाओं (प्रपा) को बनवाने वाले तथा नानंगोल ग्राम में चरक संप्रदाय के अनुयायियों को 32 सहस्त्र नारियल के मूलों को देने वाले ... ?

19. भूमि और ग्रामों के दान का उल्लेख करने वाले अभिलेख :– पूर्व के अभिलेखों में इनके उदाहरण विरल है। उत्तरगुप्त काल के बाद तमाम अभिलेखों का संबंध, विहारों और ब्राह्मणों को दिए गए क्षेत्रों एवं ग्रामों से है। इस प्रकार का पूर्वतम उदाहरण गौतमी बलश्री के अभिलेखों से जुड़ा हुआ वाशिष्ठी पुत्र पुलुवामी का नासिक अभिलेख है जो इस प्रकार है–

20. "..इस लयन के उत्कर्ष के लिए, पूज्या महादेवी के सेवा और प्रिय को करने का इच्छुक और नाती... दक्षिणापथेश्वर पितरों को प्रसन्न करने के लिए, (भवसिंधु को पार करने के लिए) धर्मसेतु के (निर्माण के) लिए,

त्रिरश्मिपर्वत के वामपार्श्व में स्थित पिसाजि पदक ग्राम को सभी प्रकार के करों सहित देता है।

इस प्रकार के सम्पूर्ण विकसित उदाहरण शासन कहलाने वाले ताम्रपत्र हैं। उनमें से कुछ विशिष्ट महत्वपूर्ण अभिलेख इस प्रकार है :–

1. गुप्त संवत् 159 = 479 ई का पहाड़पुर–ताम्रपत्र अभिलेख।
2. गुप्त संवत् 224 = 543 ई की..गुप्त के समय का दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख।
3. गुप्त संवत् 193 = 513 ई का खोह ताम्रपत्र अभिलेख।
4. प्रभावती गुप्त का पूना ताम्रपत्र अभिलेख।
5. शिवस्कन्द वर्मन की हिरहदुगल्ली ताम्रपत्र अभिलेख।
6. माधव को पेनुकोण्ड ताम्रपत्र–अभिलेख।
7. हर्ष का बासखेरा ताम्रपत्र–अभिलेख, तिथि शासनवर्ष 22 = 628 ई।
8. तीवरदेव का राजिम–ताम्रपत्र–अभिलेख, तिथि शासन वर्ष सातवीं (अठवी शताब्दी का अंतिम चरण)।
9. वाकाटक वंश के ताम्रपत्र–अभिलेख।
10. बादामी के चालुक्यों के ताम्रपत्र–अभिलेख।
11. मान्यखेट के राष्ट्रकूटों तथा उनके उत्तराधिकारियों के ताम्रपत्र अभिलेख।
12. वल्लभी राजाओं के ताम्रपत्र–अभिलेख।
13. प्रतिहारों, गहड़वालों, चेदियों आदि के दान संबंधी अभिलेख। दान संबंधी ताम्रपत्र अभिलेखों के विश्लेषण से उनमें समाविष्ट सूत्रों का कुछ हेर–फेर के साथ, निम्नांकित कम प्रकट होता है।
14. विरुद के साथ या बिना विरुद की मुद्रा (सभी अभिलेखों में नहीं)।
15. कोई मांगलिक शब्द या मंगल।
16. स्थान का नाम, जहाँ से शासन प्रसारित किया गया।
17. राजा का वंशक्रम।

18. शासन का विवरण
19. अधिकारियों तथा अन्य अन्य लोगों की सूची जिनको शासनसंबोधित किया गया।
20. दान का हेतु उदाहरणार्थ दानदाता, उसके माता–पिता, पूर्वजों तथा सम्पूर्ण संसार को पुण्य प्राप्ति।
21. दानपत्रों का उनके वंश, गोत्र, शाखा, प्रवर इत्यादि के साथ, नाम।
22. दान दिये गए क्षेत्रों और ग्रामों की शासन–परक अवस्था।
23. राजकीय कर क्षेत्रों से उसका कानूनी व्यावहारिक विच्छेद,
24. ग्राम को प्राप्त होने वाले कर,
25. ग्राम द्वारा उपभोग छूटे,
26. दान के भाग के लिए निश्चित दंड।
27. दान की शाश्वतता की कामना।
28. आशीर्वादात्मक सूत्र।
29. स्तुत्यात्मक सूत्र।
30. शापात्मक सूत्र।
31. जिस तिथि को शासन किया गया उसका विस्तृत विवरण।
32. राजा के दूतक या प्रतिनिधि का नाम।
33. लेख के तैयार करने वाले अधिकारी, प्रायः संधिविग्राहिक का नाम।
34. खोदने वाले का नाम।
35. राजा का हस्ताक्षर (स्वहस्त) (सर्वथा प्राप्य नहीं)।

संस्मारक

इस प्रकार के अभिलेख किसी महात्मा या वीर पुरुष की जीवन–घटनाओं, जन्म, कोई चमत्कारिक कृति या वीरगति का उल्लेख करता है। इस प्रकार का प्राचीनतम् अभिलेख अशोक का रुम्मनदेई स्तम्भ अभिलेख है जो इस प्रकार है –

"जिसके अभिषेक के बीस वर्ष हो गए हैं ऐसे देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी

राज्य ने स्वयं आकर (इस स्थान की) पूजा की। यहाँ शाक्यमुनि बुद्ध का जन्म हुआ था इसलिए प्रस्तर की विशाल भित्ति बनवाई गई और स्तम्भ खड़ा किया गया है।"

इस अभिलेख में बुद्ध का जन्म एवं जन्मस्थान संस्मृत किये गए हैं। साथ ही अभिलेख उसी मात्रा में अशोक के लुम्बिनीवन के आगमन को भी संस्मृत करता है। भानुगुप्त के समय का 191 गुप्त संवत (590 ई) का दूसरा अभिलेख है जिसमें गोपराज की युद्धभूमि में वीरगति प्राप्त करना तथा उसकी पत्नी का अपने पति की चिता पर सती होना उल्लिखित है। जिसका हिन्दी अनुवाद निम्न है –

"सिद्धम। (सूत्र का सूचक एक मांगलिक चिन्ह) एक सौ इक्यानवे संवत्सर में श्रावण के कृष्ण पक्ष की सप्तमी को। संवत 100, 90, 1 श्रावण वादि 7 ३. पवित्र (शुक्ल) वंश से उत्पन्न राज प्रसिद्धि वाले। उसका अतिवीर राज्य माधव नाम वाला पुत्र (हुआ या था)। उसका प्रसिद्ध पौरुष वाला पुत्र श्रीमान गोपराज हुआ। वह शरभराज का दौहित्र था और अब अपने वंश का तिलक। श्री महाराज भानुगुप्त संसार में बड़े वीर और अर्जुन के समान शूर हैं।

गोपराज उन्हीं के साथ यहाँ मित्रभाव से आया और महान यश वाले युद्ध को करके इंद्रदेव के समान स्वर्ग को गया। उसकी सुंदरी स्त्री जो उसमें भक्ति, अनुरक्ति रखने वाली तथा उसकी स्नेहपात्रा थी, अग्निराशि (चिता) में उसके साथ प्रवेश कर गयी। अर्थात सती हो गयी।

कोल्हापुर के शिलाहारों, कल्याण के चालुक्यों से संबंधित संस्मारक अभिलेख बड़ी संख्या में वर्तमान है और कुछ का संबंध राष्ट्रकूटों, यादवों तथा कोंकण के शिलाहारों से है। ये लेख गद्य में लिखे गए हैं और प्रायः बहुत छोटे हैं। किन्तु कोल्हापुर और कर्नाटक में इस प्रकार जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं वे पद्य में हैं तथा उनमें वीरगति प्राप्त हुए वीरों की अतिशयोक्तिपूर्ण सन्निहित है। एक आदर्श संस्मारक अभिलेख का विश्लेषण निम्नांकित है –

1. अभिलेख की सविवरण तिथि।
2. संस्मृत वीर का वंशक्रम।
3. वीर और उसके पूर्वज का गुणानुवाद।
4. शासनासीन राजा के प्रति निर्देश।
5. वीर की परिलब्धियाँ।

6. जन्म मरणादि संस्मारित घटनाएं।

साहित्य

प्राचीन भारत के कुछ अभिलेख काव्य रचनाओं तथा नाटक कृतियों के अंशों को लिखित करते हैं और उनका उद्देश्य विशुद्ध रूप से साहित्यिक है। धार्मिक उद्देश्य के लिए खोदे गए धार्मिक साहित्य के भी कुछ उदाहरण हैं। उदाहरण के लिए कुशीनगर (उत्तर प्रदेश का देवरिया जिला) के महानिर्वाण स्तूप से एक तरह पं.क्तियाँ का ताम्रपत्र हुआ जिसमें बुद्ध का उदानसुत्त लिखित है।

पत्थर पर खुदी हुई नाट्य कृतियों के सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण अजमेर की 'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा' नाम की मस्जिद में पाए जाते हैं। इनमें एक लेख में 75 पं.क्तियाँ हैं। चाहमान राजा विग्रहराज के सम्मान में महाकवि सोमदेव विरचित ललितविग्रहराज नाटक के बड़े–बड़े अंश इसमें विद्यमान है। दूसरे अभिलेख में 89 पं.क्तियाँ हैं तथा इसमें अजमेर के विग्रहराज (सोमदेव का आश्रयदाता) द्वारा रचे गये हरिकेलि नाटक के अंश उद्धृत हैं।

8.4 अभिलेखों का महत्व

प्राचीन भारत के इतिहास एक स्रोतों में लिखित स्रोत के रूप में साहित्यिक स्रोतों व पुरातात्विक स्रोतों के अंतर्गत अभिलेख सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं। जहाँ साहित्यिक स्रोतों में समकालीन के साथ–साथ बाद के काल के भी वर्णन मिलते हैं जिसके कारण उनमें अविश्वसनीय जानकारियों का मिश्रण भी मिलता है, किन्तु अभिलेख मुख्यतः समकालीन या साक्ष्य ही होते हैं जिसके कारण अभिलेखों का महत्व साहित्यों से अधिक होता है। जैसा की उपरोक्त अध्ययन में हमें जाना की अधिकांश अभिलेख शासकों के द्वारा उनके काल में ही उत्कीर्ण करवाए जाते थे जैसे अशोक, गुप्त, हर्ष आदि शासकों ने करवाया था। भारतीय इतिहास में इतिहास लेखन की कोई व्यवस्थित परम्परा नहीं थी। सभी स्रोत अपने अपने काल में किसी व्यक्ति या वर्गों द्वारा किसी काल–क्षेत्र विशेष के संदर्भ में लिखित करते थे। ऐसे में भारतीय इतिहास क्रम का अध्ययन कठिन हो जाता है। किन्तु हमारे पास इतने साधन अवश्य हैं की उनका अध्ययन करके हमारे इतिहास सरलता से तथा वैज्ञानिकता के साथ तैयार किया जा सकता है। जिनमें अभिलेख प्रमुख भूमिका निभाते हैं जो सम्पूर्ण भारत में बिखरे हुए हैं। इनके माध्यम से हमारा इतिहास पुनः अपने वास्तविक रूप में बाहर आ जाता है। यद्यपि ये अभिलेख राजाश्रित या व्यक्तिगत खुदवाए गए हैं, किन्तु इनमें ऐसी ऐतिहासिकता सामग्रियाँ है जो समकालीन हैं, सत्य तथा विश्वसनीय हैं।

भारतीय इतिहास के कई ऐसे शासन व राजवंश हैं जिनके बारे में जानकारी मुख्यतः अभिलेखों से ही मिलता है। इसका सबसे प्रमुख कलिंग शासक खारवेल हैं जिनके बारें जानकारी मात्र उनके हाथीगुंफा अभिलेख से ही मिलती है जिसमें उनके पूर्वजों, बाल्यकाल तथा शासन काल की उपलब्धियों का क्रमानुसार वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त गुप्त शासक समुद्रगुप्त के महती विजय का हमें काभी ज्ञान नहीं होता यदि उनके संधिविग्रहिक हरिषेण ने उनके विजय अभियानों व चरित्रों का वर्णन में प्रशस्ति न लिखवाई होती। इसी प्रकार के महत्वपूर्ण अभिलेखीय स्रोत मौखरी, उत्तरगुप्त, राष्ट्रकूट, चोल आदि राजवंशों के भी मिलते हैं जिनसे उनका इतिहास ज्ञात होता है।

अभिलेखों का महत्व इतिहास की घटनाओं के क्रमों का सुलझाने में भी रहा है। शक व सातवाहन, गुप्त आदि शासकों का वंश क्रम अभिलेख के माध्यम से ही ज्ञात होता है। उत्तरगुप्त राजाओं के संबंध में अन्य स्रोतों के अभाव में अभिलेख ही प्रमुख जानकारी देते हैं।

अभिलेखों से अनेकों शासकों के व्यक्तिगत चरित्र का भी ज्ञान मिलता है जिसमें प्रसंगवत लेखक अपने शासक की कृतियों की चर्चा करते हुए उसके चरित्र का भी वर्णन करते पाए जाते हैं। कई अभिलेखों का व्यक्तिगत चरित्र के वर्णन में ही विशेष महत्व है क्योंकि अन्य स्रोत इस क्षेत्र में कोई जानकारी नहीं देते। इसका सबसे अच्छा उदाहरण हरिषेण रचित समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति है, और यह समुद्रगुप्त के इतिहास की जानकारी देने वाला एक मात्र स्रोत है। इस प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के गुणों का उल्लेख है की वह विद्या में कविकुल, गुरु था, शस्त्र तत्वार्थ भर्तु था, संगीत में गुरु, नारद और तंबरु के समान था तथा युद्ध में यम और कुबेर की तरह था। इसी प्रकार महरौली के चंद्र अभिलेख तथा पुलकेशिन द्वितीय के अव्होल अभिलेख से भी क्रमशः चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा चालुक्य–वंशीय शासक पुलकेशिन द्वितीय का ज्ञान होता है।

8.4.1 साहित्यिक स्रोतों के प्रमाण कर रूप में

प्राचीन भारत का इतिहास मुख्यतः हमें पुराणों, जैन, बौद्ध तथा अन्य समकालीन साहित्यों से मिलता है, किन्तु इनमें कभी–कभी एकरूपता, या क्रम का अभाव रहता है ऐसे में अभिलेखीय साक्ष्य इन तथ्यों की पुष्टि तथा वैज्ञानिक शोध के लिए सहायक सिद्ध होते हैं तथा साहित्यिक जनकरियों की पुष्टि के लिए प्रमुख प्रमाण के रूप में स्थापित होते हैं। पुराणों तथा विभिन्नन साहित्यिक स्रोतों से मिलने वाले राजवंशों व शासकों के अस्तित्व की पुष्टि के लिए भी अभिलेखों का विशेष महत्व है उदाहरण के लिए यदि मौर्य, सातवाहन,

कुषाण, गुप्त शासक व अन्य राजवंशों के अभीलखीय साक्ष्य नहीं मिलते तो उनके इतिहास सदैव संदेहास्पद राहत। उदाहरण के लिए गुप्त शासक रामगुप्त के बारे में जितनी भी जनक्रियाँ प्राप्त थी वह साहित्यिक थी अभी अभी मध्य प्रदेश से प्राप्त तीन जैन मूर्तियों के पदाधारों पर 'महाराजाधिराज श्रीरामगुप्त' अंकित होने से रामगुप्त के महाराज होने की पुष्टि होती है। इसी प्रकार अयोध्या के धनदेव अभिलेख से यह ज्ञात होता है की पतंजलि ने अश्वमेध यज्ञ करवाया था।

8.4.2 राजनैतिक इतिहास के स्रोत के रूप में

अभिलेखों का सबसे अधिक महत्व राजनैतिक इतिहास के क्षेत्र में होता है। कुषाणों के बाद से गुप्तों के काल के बीच का इतिहास हमें ज्ञात नहीं होता है यदि जो की समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति के अन्वेषण से ज्ञात हो सकता है जिसमें समुद्रगुप्त के आर्यावर्त के युद्ध और दक्षिणापथ अभियान में अनेकों राज्यों व शासकों पर विजय का वर्णन है जो यह तत्कालीन भारत में अस्तित्व में रहे राज्यों व राजनैतिक इकाइयों का वर्णन करता है। इसी प्रकार शक व सातवाहन शासकों के अभिलेख दक्षिण भारत की राजनैतिक स्थिति का ज्ञान देते हैं। खरवेल के हाथीगुंफा अभिलेख से भी उत्तरमौर्यकाल की राजनैतिक स्थिति की जानकारी मिलती है। ऐसे अनेक अभिलेख भारत के सभी क्षेत्रों में प्राप्त होते हैं इस प्रकार के अभिलेख गुप्तों के बाद अधिकांश देखने की मिलते हैं।

8.4.3 सामाजिक इतिहास के स्रोत के रूप में

अभिलेखों से तात्कालिक सामाजिक इतिहास का भी ज्ञान होता है। अशोक के अभिलेखों से मौर्यकाल में सामूहिक परिवार प्रणाली के संकेत मिलते हैं। अन्तःपुरों का उल्लेख बहुविवाह प्रथा की ओर संकेत करते हैं। शक–सातवाहनों के अभिलेखों से अन्तर्जातीय विवाह का ज्ञान होता है वहीं पाल काल के दामोदर ताम्रपत्रों से शिक्षा के संबंध में जानकारी मिलती है।

8.4.4 आर्थिक इतिहास के स्रोत के रूप में

कई अभिलेखों से तात्कालिक राज्य व समाज के आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। दूसरे किसी साधन के अभाव में अभिलेखों से ही कई राजवंशों के काल में भारत अथवा किसी क्षेत्र विशेष की आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ शक–सातवाहनों के अभिलेखों से दक्षिण भारत तथा गुप्त शासकों के अभिलेखों से उत्तर भारत की आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है और उसका प्रमाण उनके द्वारा जारी किये गए स्वर्ण सिक्कों से भी पता चलता है।

8.4.5 धार्मिक इतिहास के स्रोत के रूप में

कई अभिलेख प्राचीन भारत में तात्कालिक धार्मिक स्थिति की भी जानकारी देते हैं। इनमें शासकों के व्यक्तिगत मत तथा राज्य के प्रमुख मत–संप्रदाय का भी ज्ञान होता है। इसका सबसे प्राचीन उदाहरण अशोक के अभिलेख हैं जिन्हें अशोक ने धम्मलिपि के नाम से उत्कीर्ण करवाया था। अशोक ने अपने अभिलेखों में धम्म पालन का उपदेश दिया है तथा अपने धम्म विजय के मार्ग का वर्णन किया है। इन अभिलेखों से मौर्यकाल में ब्राह्मण, श्रमण, आजीवक आदि धार्मिक संप्रदायों का चलन था। अशोक ने ऐसे राष्ट्रधर्म का प्रचलन किया जिसमें सभी धर्मों की बाटें सम्मिलित थी, जबकि अशोक व्यक्तिगत जीवन में बौद्ध मत का पालन करता था। इसी तरह गुप्त शासकों के अभिलेखों से आरंम्भिक गुप्त शासकों से लेकर स्कंदगुप्त तक के शासकों के भगवतानुयायी (वैष्णव) होने का ज्ञान होता है। जबकि उनके बाद के शासकों की रुचि बौद्ध धर्म की ओर रुचि देखने को मिलती है। पाल राजाओं के अभिलेख वज्रयान बौद्ध संप्रदाय के आगमन का परिचय देते हैं तथा उनके बौद्ध धर्मानुयायी होने का ज्ञान देते हैं।

8.4.6 साम्राज्य विस्तार के स्रोत के रूप में

गुप्त शासकों के काल से सम्पूर्ण भारत में ऐसे अनेक अभिलेख मिलते हैं जिनमें शासक अपने युद्ध विजय, शासन क्षेत्र तथा दान दिए गए क्षेत्रों का वर्णन करते थे। जिससे उन शासकों के साम्राज्य विस्तार की जानकारी मिलती है। इन अभिलेखों से मुख्यतः दो प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है– 1. अभिलेख के प्राप्ति का स्थान, 2. अभिलेख में वर्णित स्थान या क्षेत्र। उदाहरण के लिए अशोक के अभिलेख अफगानिस्तान से लेकर कर्नाटक तक विस्तृत हैं जिससे अशोक के विस्तृत साम्राज्य की जानकारी मिलती है। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है की उसने आर्यावर्त में दो युद्ध किये थे तथा दक्षिणापथ का भी अभियान किया था जिसमें उनसे कई राज्यों को परास्त कर ग्रहणमोक्षानुग्रह नीति के अंतर्गत संधि करके छोड़ दिया। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य विजित क्षेत्रों का उल्लेख महरौली स्तम्भ लेख में मिलते हैं। कुमारगुप्त के साम्राज्य की जानकारी उसके अभिलेखों से ही मिलती है। उत्तर मध्यकाल से कई शासकों ने युद्धों में विजय से जुड़े अभिलेख उत्कीर्ण करवाए है।

8.4.7 लिपि व भाषा के स्रोत के रूप में

अभिलेखों से हमें तत्कालीन प्रचलित भाषा व लिपि का ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए मौर्य शासक अशोक के भारतीय सीमा में पाए गए अधिकांश अभिलेख प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में हैं इसका अर्थ यह है की मौर्यकाल में प्राकृत प्रमुख प्रचलित भाषा थी तथा ब्राह्मी प्रचलित थी, जबकि उत्तर–पश्चिमी भारत के अभिलेख खरोष्ठी, ग्रीक व अरामेयिक लिपि में लिखवाए गए थे जिससे भारत के उत्तर–पश्चिम क्षेत्र में खरोष्ठी, ग्रीक व अरामेयिक लिपि प्रचलित थी। जबकि शुंग व कुषाण काल के बाद अधिकांश अभिलेख संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में लिखे हुए है, तथा बाद में कुषाणों व गुप्तों के काल में ब्राह्मी का भी विकास समय–समय में देखने को मिलता है। इसके बाद क्षेत्रीय भाषाओं व लिपियों में भी कई अभिलेख उत्कीर्ण करवाए गए जो उस क्षेत्र–काल में प्रचलित लिपि व भाषा का ज्ञान होता है। अभिलेखों से शासन द्वारा राजाश्रित लिपि व भाषा का भी ज्ञात होता है।

8.4.8 प्रशासनिक इतिहास के स्रोत के रूप में

अनेकों अभिलेखों में किसी राजतन्त्र की शासन व्यवस्था व प्रशासनिक अधिकारियों के बारें में महत्वपूर्ण विवरण मिलता है। इससे किसी काल में किसी साम्राज्य के प्रशासन की व्यवस्था तथा प्रशासनिक तंत्र का अध्ययन करने में सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ अशोक के अभिलेखों में उसके अधिकारियों का उल्लेख मिलता है जैसे धम्म महामात्र, युत, राजुक, नगरव्यावहारिक आदि। इनमें कर के सिद्धांत, शासन की नीति आदि का भी ज्ञान होता है। इसी प्रकार गुप्त शासकों के अभिलेखों से उनके प्रशासनिक पदाधिकारियों आदि का ज्ञान मिलता है जैसे संधिविग्रहिक, प्रधान सचिव, उपरिक, कुमारमात्य आदि। हर्ष के अभिलेखों में लोकपाल, भुक्ति उपरिक, राष्ट्रीय, राजस्थानिक आदि शब्द आते हैं जो हर्षकालीन राज्यव्यवस्था का ज्ञान कराते हैं दक्षिण भारतीय अभिलेखों में मंत्रिपरिषद का संगठन, मंत्री, कर के सिद्धांतों का ज्ञान मिलता है।

8.4.9 विदेशियों के अस्तित्व के स्रोत के रूप में

कई अभिलेखों से हमें प्राचीन भारत में विदेशियों के आगमन, आक्रमण अथवा उनसे भारत के संबंधों के बारें में महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए बेसनगर का हेलियोडोरस स्तम्भ जो तक्षशिला के यवन शासक अंतिलिकितस के राजदूत ने स्थापित करवाया था। इसी प्रकार स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से हमें हूणों के भारत में आक्रमण की जानकारी

मिलती है। इंडो–ग्रीक शासक मिलिंद (मिनाण्डर) के तक्षशिला राजतपत्र से हमें उसके बौद्ध धर्म स्वीकार करने का प्रमाण मिलता है। शक व कुषाण शासकों के अभिलेखों से उनके भारतीय धर्मों को स्वीकारने तथा भारतीयकरण होने के प्रमाण मिलते है।

8.5 सारांश

प्राचीन काल से अनेकों व्यक्तियों द्वारा अथवा शासकों द्वारा विभिन्नन अवसरों पर अनेकों अभिलेखों का उत्कीर्णन करवाया है जो तात्कालिक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक इतिहास को लिए हुए हैं तथा हमें उस काल के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक इतिहास का अध्ययन करने में सहायता प्रदान करते हैं। अभिलेखों का भारतीय इतिहास के अनुसंधान व वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने में सर्वाधिक महत्व माना जा सकता है जो हमें सुनिश्चित व अपरिवर्तित जानकारियाँ देते हैं जो हमें साहित्यों में परिवर्तन आदि के कारण शुद्ध रूप से नहीं मिलता। अभिलेखों का प्रयोग मुख्यतः अशोक के काल से देखने को मिलता है, किन्तु अशोक ने इन अभिलेखों में मुख्यतः उपदेश दिए हैं एवं कहीं–कहीं इनमें राजाज्ञायेँ देखने की मिलती है। किन्तु अशोक के बाद विभिन्नन राजवंशों ने अलग–अलग उद्देश्यों के लिए अभिलेखों का प्रयोग किया। हमें विभिन्नन काल में अलग अलग प्रकार के अभिलेखों का विकास देखने को मिलता है जैसे प्रशासनिक, दान संबंधी, प्रशस्ति, स्मृतियात्मक, निर्माण, धार्मिक अभिलेख आदि। इतिहास के अध्ययन में अभिलेखों का विशेष महत्व है। अभिलेखों को प्रामाणिक साक्ष्य के रूप में लिया जाता है। अभिलेखों से हमें किसी राजवंश व घटना के काल, स्थान, राजवंशों के वंशक्रम, साम्राज्यों के विस्तार आदि का पता चलता है। इसी प्रकारइन विभिन्नन प्रकार के अभिलेखों के अलग–अलग महत्व भी है।

8.5 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि– डॉ.. राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन– डॉ.. शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला– पं..गौरीशंकर हिराचंद ओझा
4. आर्कियलॉजीकल सर्वे एन्युअल रिपोर्ट 1906–07
5. आर्केयोलॉजीकल सर्वे एन्युअल रिपोर्ट 1908–09
6. मोहनजोदाडो एंड इंडस सिविलाइजेशन, खंड 2

8.6 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. अभिलेख किसे कहा जाता है ?
2. अभिलेख के प्रकारों का उल्लेख करते हुए उनकी विशेषता बताइए।
3. अभिलेखों का क्या महत्व है ?
4. अभिलेखीय साक्ष्यों का इतिहास के अध्ययन में क्या महत्व है ?

इकाई 9 : अशोक का लघु स्तम्भलेख (रूम्मनदेई)

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 मूल छाया (ब्राह्मी)

9.3 अभिलेख का मूल पाठ

9.4 अभिलेख का हिन्दी अर्थान्तर

9.5 लिपि, भाषा व् तिथि

9.6 अभिलेख का महत्व

9.7.1 राजनैतिक महत्व

9.7.2 धार्मिक महत्व

9.7.3 आर्थिक महत्व

9.8 भाषा व लिपि ज्ञान में महत्व

9.8 सारांश

9.9 संदर्भ ग्रंथ

9.10 आदर्श प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

मौर्य सम्राट अशोक ने अपने राज्यत्वकाल में अपने सम्पूर्ण सम्राज्य में अनेकों अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाया था, जिन्हें शिलाओं, स्तंभों व गुहाओं में लिखवाया था। इन अभिलेखों की प्रमुख विषय अधिकांशतः धम्म के उपदेश का प्रचार करना था, किन्तु कहीं कहीं ये अन्य उद्देश्यों के लिए भी लिखवाये गए थे जिनमें से एक अभिलेख रुममनदेई अभिलेख है। अध्ययन की सुविधा के लिए यह अभिलेख लघु स्तम्भ लेख के अंतर्गत रखा गया है।

यह अभिलेख मौर्य सम्राट अशोक द्वारा अपने राजत्वकाल के 20 वें वर्ष में बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी की यात्रा के उपलक्ष्य में नेपाल की तराई में स्थित पिपरिया के निकट रुम्मनदेई मंदिर में एक शिला–स्तम्भमें उत्कीर्ण

करवाया था। इस स्तम्भ लेख की खोज नेपाल की सेना के प्रमुख खदगा शमशेर जंग बहादुर राणा ने दिसंबर 1896 में किया था।

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम मौर्य सम्राट अशोक के रुम्मनदेई अभिलेख (छायाचित्र पृ 188) के मूल पाठ व हिन्दी अर्थान्तर तथा इसके भारतीय इतिहास में राजनैतिक, धार्मिक व अन्य क्षेत्रों में महत्व का अध्ययन करेंगे।

9.2 मूल लेख

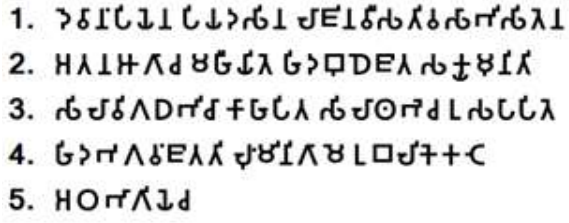

मूल पाठ

1. देवानंपियेनपियदसिनलाजिनवीसतिवसाभिसितेन
2. अतनआगाचमहीयितेहिदबुधेजातसक्यमुनिति
3. सिलाविगधभिचाकाहापितसिलाथभेचउसपापिते
4. हिदभगवंजाततिलुंमिनिगामेउबलिकेकटे
5. अठभागियेच।।

9.3 हिन्दी अर्थान्तर

1. राज्याभिषेक के बीस वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा
2. यहाँ स्वयं आकार पूजा की गई क्योंकि यहीं बुद्ध शाक्यमुनि जन्म लिए थे।
3. यहाँ पत्थर की दृढ़ दीवार बनवाई गई और शिलास्तम्भ खड़ा किया गया
4. क्योंकि यहाँ भगवान बुद्ध उत्पन्न हुए थे। अतएव लुम्बिनी ग्राम को करमुक्त किया गया
5. और अष्टभागों बनाया गया।

9.4 लिपि, भाषा व तिथि

यह अभिलेख अशोक द्वारा उसके 20 वे अर्थात (लगभगतीसरी सदी ई.पू)

राज्यवर्ष बुद्ध के जन्मस्थान की यात्रा के समय उत्कीर्ण करवाया था, अतः स्पष्ट रूप से इस लेख की लिपि अशोक कालीन ब्राह्मी है तथा इसकी भाषा प्राकृत है जो अशोक के भारत में पाए जाने वाले लगभग सभी अभिलेखों की भाषा है।

9.5 अभिलेख का महत्व

अशोक के रुम्मनदेई अभिलेख भारतीय इतिहास के अध्ययन कई कारणों से महत्वपूर्ण हैं जिनका अध्ययन हम आगे करेंगे जो भारत के इतिहास में मौर्य शासक व उसके बौद्ध धर्म के प्रति झुकाव का प्रमाण देता है।

9.5.1 राजनैतिक महत्व

यह अभिलेख मौर्य सम्राट अशोक ने अपने राजत्व काल के 20 वर्ष में उत्कीर्ण लुम्बिनी यात्रा के समय करवाया था, जिससे यह सिद्ध होता है की उसका राजत्व काल 20 या उससे अधिक ही रहा होगा यद्यपि अशोक के राजत्वकाल में आगे के समय में उत्कीर्ण करवाये गए अभिलेख भी प्राप्त होते हैं किन्तु यह अभिलेख उस समय महत्वपूर्ण हो जाता यदि वे अभिलेख प्राप्त नहीं हुए होते। क्योंकि भारतीय इतिहास में ऐसे कई उदाहरण है जब किस क्षेत्र व काल में अनेक शासकों का राज्य अनेकों बार बदला है।

इस अभिलेख की प्राप्ति स्थान के आधार पर अशोक के विस्तृत साम्राज्य का भी ज्ञान मिलता है। अशोक का साम्राज्य कितना विस्तृत था यह उसके द्वारा पूरे भारतवर्ष में उत्कीर्ण करवाए गए अनेकों अभिलेखों से ही ज्ञात होता है जो की उत्तर पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक तथा पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में बंगाल उड़ीसा तक विस्तृत था। इसी राज्य क्षेत्र में हिमालय की तराई में स्थित वह क्षेत्र जो आज लुम्बिनी, कपिलवस्तु के क्षेत्र में आता है भी रहा होगा तभी अशोक ने इस स्थान पर स्वयं जाकर बुद्ध के जन्मस्थान पर यह अभिलेख उत्कीर्ण करवाया।

9.5.2 धार्मिक महत्व

जैसा की हमें ज्ञात है कि अशोक बौद्ध मत का अनुयायी था, तथा उसने अपने अभिलेखों के माध्यम बौद्ध धर्म के संदेशों को पूरे भारत में प्रसारित किया। उसने भारत से बाहर भी अनेक मिशनरियाँ भेजी जो म्यांमार, श्रीलंका आदि देशों में गए। वह स्वयं भी बौद्ध संघ के अत्यंत निकट रहा। वह अपने अनेकों अभिलेखों में बौद्ध मत के प्रति अपनी आस्था का उल्लेख करता है अशोक के अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है अपने राज्यकाल के आठवें वर्ष में उसने कलिंग का युद्ध जीता था जिसके बाद से वहकी धीरे धीरे बौद्ध धर्म का अनुयायी बन

रहा था तथा कई वर्षों से बौद्ध संघ के प्रभाव में थे। इस क्रम में उसने कई अभिलेखों को पूरे भारतवर्ष में उत्कीर्ण भी करवाया। 8 वें शिलालेख से हमें ज्ञात होता है की अशोक ने अपने राजत्वकाल के 10वे वर्ष में बोधगया की यात्रा की थी। जिसके 10 वर्ष बाद (20 वें राज्यवर्ष) में वह पहली बार भगवान गौतम बुद्ध की जन्मस्थली गया। जहाँ उसने शाक्यमुनि (बुद्ध) के जन्मस्थली पर पत्थर की एक दीवार बनवाई, और एक शिला स्तम्भ खड़ा करवाया जिस पर उपरोक्त लेख उत्कीर्ण करवाया गया इस अभिलेख के माध्यम से हमें अशोक के बौद्ध मत के प्रति आस्था का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। यह अशोक के लुम्बिनी यात्रा का एक प्रमाण भी है।

9.5.3 आर्थिक महत्व

रुम्मनदेई अभिलेख में अशोक ने लुम्बिनी ग्राम को कर मुक्त करने का आदेश दिया, जिससे मौर्य काल में कर प्रणाली विद्यमान होने का प्रमाण मिलता है। उसी प्रकार उत्पादन के आठवें भाग को राज्य को देने का आदेश दिया गया है जिससे यह ज्ञात होता है की कर के रूप में उपज व उत्पादन का कुछ भाग राज्य को देने की व्यवस्था थी।

9.6 भाषा व लिपि ज्ञान में महत्व

इस अभिलेख की लिपि मौर्यकालीन ब्राह्मी है तथा भाषा प्राकृत है, जैसा की हम जानते हैं की अशोक के अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी में लिखवाए गए हैं इससे यह ज्ञात होता है की नेपाल के उस क्षेत्र में जहाँ यह स्तम्भ लेख स्थित है प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि प्रचलित रही होगी। इस अभिलेख में भगवान बुद्ध के लिए 'शाक्यमुनि' (𑀰𑁆𑀬𑀫𑀼𑀦𑀺) शब्द का प्रयोग हुआ है जो की प्राकृत शब्द सकमुनि (𑀲𑀓+𑀫𑀼𑀦𑀺) का अंशतः संस्कृत रूप है जबकि इसका पूर्णतः संस्कृत रूप 'शाक्यमुनि' (𑀰𑁆𑀬𑀫𑀼𑀦𑀺) है। प्रथम शताब्दी से पूर्व हमें संस्कृत भाषा का प्रयोग देखने को नहीं मिलता। किन्तु शाक्यमुनि शब्द लुम्बिनी अभिलेख में ही देखने को मिलता है जबकि इसका अन्य रूप 'साकीय' पिपरहवा बौद्धपात्र अभिलेख में, बौद्ध साहित्यों में 'सका' व 'शका' एवं 'सक' भरहुत स्तूप अभिलेख में प्राप्त होता है।

9.7 सारांश

अतः अशोक का रुम्मनदेई अभिलेख राजनैतिक, धार्मिक व आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है जिसमें अशोक के राजनैतिक विस्तार, धार्मिक झुकाव तथा मौर्य राज्य के कर प्रणाली का ज्ञान मिलता है। अशोक का रुम्मनदेई लघु स्तम्भलेख

अशोक के सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। यह अभिलेख अशोक के बौद्ध धर्म के प्रति आस्था का प्रमाण देता है। इस अभिलेख के कारण ही हमें भगवान बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान हुआ। यह अभिलेख अशोक के 20 राज्यवर्ष में उसकी लुम्बिनी यात्रा के समय उत्कीर्ण करवाया गया था। अशोक के अन्य अभिलेखों में बौद्ध धर्म के प्रति उसके झुकाव के प्रमाण मिलते हैं किन्तु इस अभिलेख में उसके स्वयं लुम्बिनी जाने का प्रमाण देता है। इस अभिलेख में अशोक द्वारा लुम्बिनी ग्राम को कर मुक्त कर केवल उत्पादन का 8 वां अंश देने की घोषणा की गई है जिससे मौर्यकाल में करव्यवस्था पर प्रकाश डालता है। इस अभिलेख में बुद्ध को शाक्यमुनि कहकर संबोधित किया गया है जिससे बुद्ध के शाक्य कुल से होने का प्रमाण मिलता है।

9.8 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ.राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ.शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं.गौरीशंकर हीराचंद ओझा

9.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. अशोक के रुम्मनदेई लघु स्तंभलेख पर लेख लिखिए।
2. रुम्मनदेई अभिलेख किस लिपि व भाषा में उत्कीर्ण है।
3. रुम्मनदेई अभिलेख के राजनैतिक, धार्मिक व आर्थिक महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई 10 : पिपरहवा बौद्धपात्र अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 मूल छाया (ब्राह्मी)

10.4 मूल पाठ

10.5 हिन्दी अर्थान्तर

10.6 भाषा व लिपि

10.7 तिथि

10.8 व्याख्या

10.9 ऐतिहासिक महत्व

10.10 सारांश

10.11 संदर्भ ग्रंथ

10.12 आदर्श प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

पिपरहवा बौद्ध पात्र भारत के प्राचीनतम अभिलेखों में से एक है। यह अभिलेख पिपरहवा नामक स्थान में स्थित स्तूप से प्राप्त एक पात्र में लिखित है। इसकी भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इसका काल विद्वानों ने तीसरी सदी ई.पू. के आसपास माना है किन्तु इसमें अभी तक एक मत नहीं है। इस बौद्ध पात्र अभिलेख में बुद्ध शाक्यमुनि की अस्थियों को रखे जाने का उल्लेख है जो विद्वानों के अनुसार भगवान गौतम बुद्ध के अवशेष थे। इस अभिलेख में वर्णित 'सुकिति भतिनं सभागनिकनं सपूतलदलनं' के अर्थ को लेकर विद्वानों में मतभेद है जिनका अध्ययन इस अध्याय में है।

प्रस्तुत अभिलेख उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थनगर में स्थित पिपरहवा नामक स्थान जो की नेपाल में स्थित गौतम बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी से 12 मील दूरी पर स्थित है। इस अस्थिकलश को खोज विलियम क्लेकस्टन पेपे ने जनवरी 1897 में पिपरहवा में स्थित एक स्तूप के उत्खनन से की थी। पेपे व उनके सहयोगी दल ने पिपरहवा में स्थित एक टीले का उत्खनन किया जिसमें

लगभग 18 फिट की खुदाई के बाद उन्हें एक पत्थर का बक्सा मिला। इममें बक्से में 5 छोटे कलश थे जिनमें अस्थियाँ, राख व आभूषण आदि थे। इन्हीं में से एक पत्थर के कलश पर ब्राह्मी में एक लेख अभिलिखित है। इस अभिलेख का अनुवाद जोर्ज बुलर ने किया इस अभिलेख में गौतम बुद्ध की अस्थियाँ होने की बात लिखी हुई थी, किन्तु इस बात पर विद्वानों में मतभेद है। इस अभिलेख को पिपरहवा बौद्धपात्र अभिलेख कहा जाता है।

10.2 उद्देश्य

पिपरहवा बौद्ध अस्थिकलश अभिलेख (छायाचित्र पृ क्र. 189) के मूल पाठ व हिंदी अर्थान्तर का पाठन, व्याख्या तथा प्राचीन भारतीय इतिहास में इसके एतिहासिक, धार्मिक व भाषा–लिपि के परिपेक्ष्य में अध्ययन करना।

10.3 मूल छाया

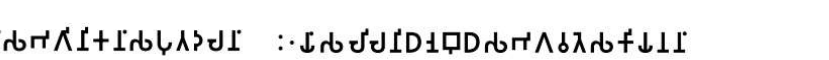

10.4 मूल पाठ

सुकिति–भतिनंस–भगिनिकनंस–पुत–दलनं
इयंसलिल–निधनेबुधसभगवतेसकियनं

10.5 हिंदी अर्थान्तर

सुकृति के भाइयों, भगिनियों, पुत्र–दाराओं सहित। यह शरीर निधान भगवान बुद्ध का शाक्यों के।। –डॉ. शिवस्वरुप सहाय का पाठ

बुद्ध भगवान शाक्य के इस शरीर–धातु मंजूषा (निधान) को सुकृ ति–बंधुओं ने अपनी बहन, पुत्र और पत्नी के साथ (प्रतिष्ठित किया)।

–डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त का पाठ

10.6 भाषा व लिपि

इस अभिलेख की भाषा प्राकृत है, तथा इसकी लिपि मौर्यकालीन ब्राह्मी है। थॉमस के अनुसार इस लेख का छंद आर्या है तथा फ्लीट के अनुसार उपगीति है। इस लेख में कुछ शब्द एक कतार में लिखे हुए हैं तथा कुछ अक्षर जो उस पंक्ति में नहीं आ सके इसलिए उन्हे ऊपर की कतार में लिखा गया है। रीजडेविस, ब्यूलर आदि इस लेख की प्रथम पं.क्ति को द्वितीय और द्वितीय को

प्रथम मानते हैं। पर फ्लीट का यह पाठ अधिक उचित लगता है।

10.7 तिथि

इस अभिलेख की तिथि स्पष्ट नहीं है। इसे प्रायः चौथी से तीसरी सदी ई.पू. में रखा जा सकता है। परंतु डॉ. सरकार ने इसमें व्याकरण संबंधी विशेषताओं के आधार पर इसे अत्यंत प्राचीन माना है। अभिलेख में दीर्घ स्वरों के अभाव होने के कारण विद्वानों का अनुमान है की यह लेख अशोक के पूर्व अंकित करवाया गया होगा। एफ. डब्ल्यू. थॉमस के अनुसार यह अभिलेख इतना लघु है की व्याकरण के संबंध कहा नहीं जा सकता अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता की इस लेख का काल क्या है। किन्तु अधिकांश विद्वानों ने इसे यह माना है की इसे अशोक से पूर्व ही रखा गया था। अतः लिपि के आधार पर इसे ई.पू. तीसरी शताब्दी के आसपास का माना जा सकता है। इस अभिलेख के अशोक के पूर्व का होने के पीछे एक और तर्क यह भी हो सकता है की अशोक के लगभग सभी अभिलेखों में अशोक का नाम या उसकी उपाधि 'देवानांपिय पियदशी', 'लाजा' या 'लाजा असोक' आदि का उल्लेख मिलता है जिसका पूर्णतः अभाव इस अभिलेख में मिलता है। अतः इस बात के पर्याप्त प्रमाण है की यह अभिलेख अशोक के पूर्व का ही होगा।

10.8 व्याख्या

इस अभिलेख के प्रथम दो शब्दों का अर्थ क्या है इस पर विद्वानों में मतभेद हैं। सुकिति को कुछ लोग **सुकीर्ति** का और कुछ **सुकृति** का प्रारूप अनुमान करते हैं। इसी प्रकार **भतिनं** को **भ्रातृणा** अथवा **भक्तयोः** का रूप अनुमान किया जाता है। **सुकिति भतिनं** का अनुवाद **सुकीर्ति** (सुकृति) के भाई अथवा **सुकीर्ति** (सुकृति) और भक्त (दो व्यक्तिवाचक नाम) के रूप में किया जाता है। डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार **सुकीर्ति भक्तयोः** के रूप **में सुकृति** और **भक्त** अनुमान करने को सही नहीं मानते उनके अनुसार **सुकृति–भातृणां** ही अधिक संगत है तथा इसका अर्थ सुकृति के भाई न होकर सुकृति–बंधु (सुकृति और उसके भाई) हो चाहिए।

डॉ. राजबली पांडेय के अनुसार 'सुकृति भ्रातृणां' अधिक उपयुक्त लगता है की क्योंकि 'सुकृति' बुद्ध का एक विश्लेषण था। '...कपिलवत्थुवसी सक्या कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पहेसि। ..मयम्यि अरहाम भगवाते सरीरानं भागं,' (महापरि. सु. 285) इससे स्पष्ट है की शाक्यों के पास बुद्ध के शरीरावशेष थे।

सलिल निधने का अर्थ शरीर **निधानं (अस्थि पात्र)** लिया गया है।

जिसमें गौतम बुद्ध की अस्थियों को रखकर उस पर स्तूप बनाया जाता था।

'**सकियनं**' का अर्थ शाक्यानां जो की गौतम बुद्ध के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ **शाक्यमुनि** लिया गया है क्योंकि गौतम बुद्ध शाक्यवंशी थी। डॉ. सरकार ने 'सकियनं' के अंतिम पद क 'यान' पढ़ा है किन्तु डॉ. पांडेय ने 'य' के साथ 'आ' की मात्रा का होना उचित नहीं माना है क्योंकि पूरे लेख में दीर्घ मात्रा का अभाव है।

अतः यदि इस अभिलेख का सरल भाषा में अनुवाद किया जाय तो वह होगा –

सुकृति–बंधुओं तथा भगिनियों सहित शाक्यमुनि भगवान बुद्ध के इस शरीर निधि को प्रतिष्ठित किया गया।

10.9 ऐतिहासिक महत्व

इस लेख से यह ज्ञात होता है की इस मंजूषा में भगवान बुद्ध का अस्थि–अवशेष रखा गया था। स्तूप निर्माण की परम्परा वैदिक काल से प्रतीत होती है क्योंकि ऋग्वेद में स्तूप शब्द तथा महापुरुषों के अवशेषों पर मिट्टी का ऊंचा टीला बनाने का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है।

स्वात घाटी में स्थित पैठान ग्राम से इसी उद्देश्य का एक अस्थि पत्र प्रथम शताब्दी ई.पू. का किसी यवन शासक, मेरीद्रख थियोडोरस द्वारा स्थापित मिल है। लगभग इसी काल का एक धातु–पत्र बाजौर नामक स्थान से भी प्राप्त हुआ है जो विजयमित्र के पांचवें राजवर्ष का है जब मिनाण्डर का शासन था। इसी पेशावर के समीप कुर्रम नामक स्थान से दूसरी शताब्दी इ का लेखयुक्त ताम्र–पत्र मिल है तथा इसी समय का एक रजत धातुपत्र तक्षशिला से जिहोणिक के काल का भी प्राप्त हुआ है।

गौतम बुद्ध ने दिव्यवदान में स्वयं कहा है की मे मृत्यु के बाद किसी चौराहे पर मेरे अवशेषों पर स्तूप बनवाया जाए जैसा चक्रवर्ति राजाओं की मृत्यु के बाद बनवाया जाता है। जैन साहित्यों में भी स्तूप की चर्चा की गई है। बाद में बुद्ध के आदेश पर स्तूप बनवाने की परम्परा बौद्धों में प्रचलित हो गई। अनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध के शरीर के आठ भाग किये गए थे जिन पर आठ स्तूप बनवाए गए थे। इस अनुश्रुति की पुरातात्विक पुष्टि भी सांची के दक्षिणी तोरण द्वार की निचली बड़ेरी पर अंकित चित्रण से होती है जिसमें अस्ति के लिए युद्ध का अंकन है। इस युद्ध में एक घेरा है जिसमें एक हाथी पर अस्ति–कलश रखा है और इस पर छत्र लगा है। उसके दोनों ओर सेनाएं युद्ध

के लिए उद्दत खड़ी दिखती है। यह घेरा कुसनिगर को व्यक्त करता है। महापरिनिर्वाण सुत्त से ज्ञात होता है की बुद्ध की मृत्यु के मरने के बाद उनकी अस्थि के लिए आठ गणराज्यों के बीच झगड़ा हुआ था जिनमें वैशाली के लिच्छव, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप के बुलिय, रामग्राम के कोलीय, पिप्पलिवन के मोरिय, पावापुरी के मल्ल, कुशिनारा, के मल्ल तथा द्रोणक के ब्राह्मण। कुशीनारा के मल्लों को छोड़कर शेष सात गणराज्यों का एक गट बन गया था जिसको सुलझाने के लिए बुद्ध के अवशेषों का आठ भाग कर प्रत्येक को एक–एक भाग सौपा गया। जिन पर इन गणराज्यों ने क्रमशः राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अलकप्प, रामग्राम, वेठद्वीप, पावापुरी तथा कुशीनारा में बने। शाक्यों ने अपने हिस्से के बुद्ध के अवशेषों पर पिपरहवा स्तूप का निर्माण करवाया।

इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है की यह अस्थि भगवान बुद्ध के निधन के तत्काल बाद नहीं रखा गया था बल्कि बाद में रखा गया था। यद्यपि इस अभिलेख में किसी का नाम नहीं है किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार सुकृति भगवान बुद्ध का बोधक हो सकता है तथा बुद्ध–भक्त के रूप में अशोक के होने की भी संभावना है, क्योंकिअनुश्रुतियों के अनुसार अशोक द्वारा बुद्ध के अवशेषों पर 84 हजार स्तूप का निर्माण करवाया गया था। किन्तु यह सिद्ध करना कठिन है।

इस अभिलेख के 'सकियानं' से उआह सिद्ध होता है कि पिपरहवा ही शकयों की राजधानी कपिलवस्तु है। इसकी पुष्टि पिपरहवा के एक विहार से प्राप्त मुहर से होती है जिस पर लिखा है– '**ॐ देवपुत्र विहार कपिलवस्तु भिक्षु संघस्य**'। पिपरहवा अभिलेख पुरातन बस्ती जिले में, शाक्य परिवार के लोगों द्वारा भगवान बुद्ध के अवशेषों पर स्तूप बनवाया गया था। जिससे ज्ञात होता है क शाक्य गणराज्य का विस्तार आधुनिक सिद्धार्थनगर जनपद तक था। इसकी पुष्टि कनिंघम लिखित 'प्राचीन भारत का इतिहास भूगोल' से भ ज्ञात होता है जहाँ उन्होंने कपिला की चर्चा की है द्यडॉ. शिव स्वरूप के अनुसार इस बौद्ध–पात्र को स्थापित करने वाले बुद्ध के भाई हैं जिन्होंने पुत्र, भगिनी और द्वारा के साथ इसे स्थापित किया था। यह एक सामाजिक एवं धार्मिक कार्य कहा जा सकता है जिसमें पुरुष के साथ स्त्रियों के भी भाग लेने का ज्ञान प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है की सामाजिक–धार्मिक कार्यों में उस समय पुरुष के साथ स्त्रियाँ भी भाग लेती थी। उए सभी एक ही परिवार के सदस्य प्रतीत होते हैं जो संयुक्त परिवार की स्थिति की स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें पत्नी, पुत्र, भाई और बहन सभी साथ रहते रहे होंगे।

10.10 सारांश

अतः इस पिपरहवा बौद्ध–पात्र अभिलेख का भारतीय इतिहास में विशेष स्थान है। इस अभिलेख से हमें गौतम बुद्ध के अवशेषों पर स्तूप बनवाने की परम्परा का प्रमाण देता है, जिसका उल्लेख अनेकों बौद्ध साहित्यों में है। इस अभिलेख से हमें मौर्य व पूर्व मौर्यकालीन ब्राह्मी, भाषा तथा सामाजिक प्रथाओं का भी ज्ञान मिलता है।

10.11 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि –डॉ.. राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालिपि – डॉ.. शिव स्वरुप सहाय
3. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख – डॉ.. परमेश्वरी लाल गुप्त
4. भारतीय स्थापत्य एवं कला – डॉ.. उदयनारायण उपाध्याय व प्रो गौतम तिवारी
5. Peppe, WC (July 1898), "The Piprahwa Stupa, containing relics of Buddha", WithA Note by V.A. Smith. Journal of the RoyalAsia-tic Society of Great BritainAnd Ireland (Article XXIII): 573-88, JSTOR 25208010

10.12 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. पिपरहवा बौद्ध पात्र की खोज किसने की थी ?
2. पिपरहवा बौद्ध पात्र में किसके अस्थि अवशेष होने का बात लिखी हुई है ?
3. पिपरहवा बौद्ध पात्र अभिलेख के अनुसार किनके द्वारा स्थापित किया गया था ?
4. पिपरहवा बौद्ध पात्र का काल क्या माना जाता है ?
5. पिपरहवा बौद्ध पात्र का धार्मिक महत्व क्या है ?

इकाई 11 : सौहगौरा अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 मूल छाया (ब्राह्मी)

11.4 मूल पाठ

11.5 हिन्दी अर्थान्तर

11.6 भाषा व लिपि

11.7 तिथि

11.8 व्याख्या

11.9 ऐतिहासिक महत्व

11.10 सारांश

11.11 संदर्भ ग्रंथ

11.12 आदर्श अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत सौहगौरा कांस्यपत्र अभिलेख उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के वासगांव तहसील के सौहगौरा नामक गाँव से प्राप्त हुआ था जिसे कलकत्ता के एसियाटिक सोसाइटी में था किन्तु अब वह लापता है। यह फलक लेख सहित ढालकर तैयार किया गया था। इस प्रकार अपने ढंग का अनोखा अभिलेख–फलक था। इस लेख को कुछ विद्वान अशोक–पूर्व और कुछ मौर्यों से भी पूर्व का मानते हैं, किन्तु दिनेशचंद्र सरकार इसे अशोक से पूर्व मानने का कोई कारण नहीं देखते।

इस कांस्य–फलक में ऊपर पं.क्ति से सात आकृतियाँ इस प्रकार हैं –

1. वेदिका में वृक्ष,
2. तीन मंजिल भवन,
3. नाल युक्त कमाल पुष्प की कलियाँ,

4. मेरु पर्वत पर चंद्रमा,

5. सूर्य और चंद्र,

6. वेदिका में वृक्ष तथा

7. तीन मंजिला भवन।

इन आकृतियों के नीचे ब्राह्मी में चार पं.क्तियों का अभिलेख लिखा है। ऐसा अनुमान है की दो मंजिले भवन की डॉ. आकृतियाँ अभिलेख में वर्णित डॉ. कोष्ठागारों की सूचक है। ये सभी चिन्ह प्राचीन भारत से प्राप्त सबसे पुरानी, आहात मुद्राओं पर भी अंकित किये गए हैं। इनके होने से इस तिथि विहीन लेख की तिथि निर्धारित करने में बड़ी सुविधा मिल सकेगी।

11.2 उद्देश्य

सौहगौरा अभिलेख (छायाचित्र पृ.190)का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व भाषा व लिपि के परिपेक्ष्य में अध्ययन करना।

11.3 मूल छाया

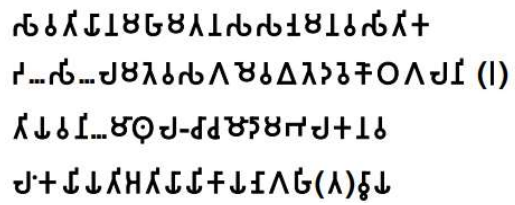

11.4 मूल पाठ

सावतियानमहामतनससनेमनवसिति–क–

ड(।) सि (ि) लमतेवसगमेवएतेदवेकोठगलनि (।)

तियवनि (।), माथुल–चाचु–मोदाम–भलकनव

लकयियतिअतियायिकाय (।), नोगहितवय (।।)

संस्कृत पाठ

श्रावस्तीयानां महामात्राणां शासनं मानव शीति कटतः। श्रीमान् वंशग्रामः एतौ द्वौ कोष्ठागारौ त्रिवेणी–माथुर–चंञ्चु–गोदाम–भल्ककानां (ग्रामाणां) वरं कार्येते आत्ययिकायां। नो ग्रहीत्वयम्।

11.5 हिन्दी अर्थान्तर

श्रावस्ती के महापात्र के शासन काल में मानवशीति के चौराहे पर। श्रीमान और वंश्राम में दो कोष्ठागार। त्रिवेणी, माथुर, चञ्चु, मोद, भल्लक ग्रामों के हित के लिए आपत्ति काल में। नहीं ग्रहण करना चाहिए (आपत्ति काल में)।

11.6 भाषा व लिपि

इस अभिलेख की भाषा प्राकृत है तथा डॉ..शिव स्वरुप सहाय के अनुसार इसकी लिपि आदि ब्राह्मी हो सकती है जो कि लगभग चौथी सदी ई.पू. के लगभग की हो सकती है।

11.7 तिथि

इस लेख की तिथि अज्ञात है तथा इसमें ऐसा कोई भी आधार वर्णित नहीं है जो हमें इस अभिलेख की तिथि का अनुमान करने में सहायता दे सके। अतः इसकी तिथि निर्धारण के लिए केवल इसकी लिपि ही एक मात्र माध्यम हो सकता है, जो की मौर्यकालीन ब्राह्मी प्रतीत होती है। इस अभिलेख में महामात्र का उल्लेख मिलता है जिनका उल्लेख अशोक के अभिलेखों में भी मिलता है किन्तु इसमें अशोक के अभिलेखों की तरह किसी विशिष्ट महामात्र का उल्लेख नहीं है अतः इस अभिलेख को अशोक के पूर्व का माना जा सकता है। फिर भी इस अभिलेख को कम से कम मौर्यकाल के समीप ही रखा जा सकता है। इसका एक संकेत मौर्यकालीन सिक्कों में पर्वत के ऊपर अर्धचंद्र अंकित है जिससे मिलता–जुलता चिन्ह इस पट्ट पर भी बना है। अभिलेख पर अंकित अन्य चिन्ह भी आहात सिक्कों में प्राप्त होते है जो मौर्यकाल के आसपास के हैं। अतः इन सभी संकेतों व प्रमाणों के आधार पर इस अभिलेखों को मौर्यकाल के समीप रखा जा सकता है।

11.8 व्याख्या

इस लेख में 'सवतियनं' (सं. श्रावस्तीयानां) श्रावस्ती पढ़ा जाता है। यह बौद्ध काल में उत्तर कोशल, जो उत्तर प्रदेश में स्थित था, की राजधानी थी। 'महतन' को डॉ. सरकार इसे 'महगमन' पढ़ते हैं।

'ड' को डॉ.. सरकार ने इसे 'कद' पढ़ा है द्य' सिलिमते' से अभिप्राय है 'श्रीमान'। पर कुछ विद्वानों ने इसका अनुवाद 'श्रीमन्न' भी किया है,डॉ. जायसवाल ने इसे 'सिरीमात्र'=कृषक मात्र के लिए माना है। 'वासगमे' से अभिप्राय 'बांसगांव' से हो सकता है। यह गोरखपुर में स्थित सौहगौरा से थोड़ी

ही दूर पश्चिम है। डॉ. जायसवाल ने इसे 'उष्मागमे'–केवल ग्रीष्म काल में प्रयोग के लिए किया है।

'तियवनी' का अर्थ विद्वानों ने तीन कमरा माना है। पर डॉ. राजबली पाण्डेय ने इसे 'तियवने' पढ़ा है और इसका अर्थ निकाला है = त्रिवेणी तथा मथुल चचु आदि ग्रामों के साथ इसे भी एक ग्राम माना है। डॉ.. बरुआ ने इसे 'तिन यवनि' अर्थात तृण और यव माना है।

डॉ. ब्यूलर ने 'भलकन' का अनुवाद 'तीन कमरे भार से भरे (भलकन) मधू (मधु), भूने चावल (लच) अजवायन (अजमोद) तथा आम्र (अम)' किया है। डॉ. बरुआ इन्हें तीन गांवों का संकेत माना है–त्रिवेणी, मथुरा, चचु। पर डॉ. पाण्डेय ने यहाँ त्रिवेणी, माथुर, चञ्चु, मोदा तथा मल्लक ग्रामों की स्थिति का उल्लेख पाया गया है।

'व' को ब्यूलर ने 'छल' पढ़ा है तथा इसका अर्थ 'संग्रह' किया है। डॉ. जायसवाल ने इसका अर्थ 'वितरित करने के लिए' लिया है। डॉ. पाण्डेय ने इसे 'बल' पढ़ा है तथा इसका अर्थ श्रेष्ठ कार्य के लिए किया है।

11.9 महत्व

इस लेख का पहला ही शब्द है सवतियन = श्रवस्तियानां पढ़ा गया है जो कोशल का एक प्रमुख नगर था। यह आधुनिक गोंडा जिले में स्थित सहेट–महेट नामक स्थान का बोध कराता है। यह स्थान भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित है क्योंकि जब बौद्ध धर्म के विरोध में ब्राह्मणों की एक सभा हो रही थी तो सहस्त्रों कमलों पर उड़ते हुए भगवान बुद्ध यहाँ आकाश में दिखने लगे। इससे सभा में बैठे ब्राह्मण बुद्ध में असामान्य गुण के प्रीत आस्थावान हूए, उन्हे यह देखकर आश्चर्य हुआ। इसी से इस दृश्य को जहाँ कहीं भी पत्थरों पर अंकित किया गया है साधारणतया श्रावस्ती का आश्चर्य कहते हैं। यह स्थान ई. पू. छठी शताब्दी में कोशल राज्य का एक प्रमुख केंद्र था।

अभिलेख के आरंभ में इसके महामात्र का उल्लेख है जिसमें कहा गया है 'महागमन ससने' अर्थात महामात्र के शासन में, इससे स्पष्ट होता है की इस अभिलेख के लिखे जाने के काल में श्रावस्ती एक महत्वपूर्ण नगर रहा होगा जहाँ महामात्र की नियुक्ति होती थी। संभवतः इसकी महत्ता को देखते हुए ही अशोक ने अपने अधिकारियों के पदनाम के साथ यह शब्द जोड़कर उनका महत्व बढ़ाने का प्रयास किया जैसे (स्त्रिय़ामहामात्र) स्त्रियाध्यक्षमहामात्र आदि। यह शब्द भी इसी अभिलेख की तिथि ज्ञात करने में सहायता करता है।

अभिलेख की आदेशात्मक शैली से उस काल में किसी प्रकार के प्रशासनिक वर्ग के होने का संकेत देता है। वहीं मधु, आम व चावल आदि का उत्पादन समाज में व्यापारी वर्ग (वैश्य) के होने का भी प्रमाण मिलता है।

इस अभिलेख की भाषा अस्पष्ट है इस कारण विद्वानों में इसके अनुवाद को लेकर अलग अलग मत है –

ब्यूलर के अनुसार– तीनों खंडों वाले दोनों कोष्ठागारों की जो सुविख्यात वंश ग्राम में स्थित है आपत्तिकाल के लिए मधूक, भुना हुआ अन्न (लच), अजमोद, आम के भारक के जमा करने के लिए आवश्यकता होगी।

फ्लीट के अनुसार– 'मानवासी के चौराहे पर बने ये दोनों कोष्ठागार तियवनि, मथुरा, और चंचु के अन्न भारकों के रखने के लिए बनाए गए हैं।'

बरुआ के अनुसार– 'चारा (तिन) और गेहूं (यवनि) तथा कलछुल, खेमे, हल एवं रस्सी के बोझ के लिए बने ये दोनों कोष्ठगार आवश्यकता के समय प्रयोग में आते हैं।'

इस अभिलेख से ज्ञात होता है की उस समय जनहित व जन कल्याणकारी राज्य की अवधारणा थी। राजा तथा उसके कर्मचारी जनहित की दृष्टि से प्रायः कार्य करते थे। इसी कारण राज्य द्वारा इस अन्नागार का प्रयोग अकाल अथवा आपातकाल की स्थिति में करने के लिए बनवाया गया था। नगरों में इस तरह के अन्नागार की व्यवस्था सैन्धव सभ्यता के हड़प्पा में मिलता है। जिसके पास में एक बांध है जिस पर चक्कियों के निशान हैं तथा उसके पड़ोस में श्रमिकों की बस्ती के अवशेष मिले हैं जो अन्नागार में संचित अनाज को पीसने की व्यवस्था के लिए बसाये गए होंगे।

इस अभिलेख के विषय के आधार पर यह कहा जा सकता है की यह एक प्रशासनिक अभिलेख है। जैसा की इस अभिलेख में यह बताया गया है की यह अन्नागार आपात काल व आपत्ति काल से रक्षा के लिए है। इसी के साथ सावधान भी किआ गया है की सामान्य समय में इसका प्रयोग न किया जाए इस में किसी शासक या व्यक्ति का नाम नहीं है अतः इसे पूर्णतः प्रशासनिक लेख कहा जा सकता है जो की जनकल्याणकारी राज्य की ओर संकेत करता है।

इस अभिलेख से हमें तात्कालिक आर्थिक व्यवस्था का भी पता चलता है। अभिलेख के अनुसार दोनों कोष्ठागार मानवशीति के चौराहे पर स्थापित थे। कोष्ठागार का होना अन्न की बहुलता तथा विशेष कारणों के लिए अन्न एकत्रित

करने की व्यवस्था कक संकेत देता है, तथा कर के रूप में अन्न लेने की व्यवस्था का संकेत देते हैं। चौराहे का उल्लेख इस बात का संकेत देता है की तब व्यापारिक मार्ग भी थे जो दूर दूर तक जाते रहे होंगे। ये मार्ग दूसरे से प्रमुख व्यापारिक केंद्रों से मिलते रहे होंगे। अभिलेख के ऊपर बने चिन्हों से हमें यह संकेत मिलता है की उस काल में काषार्पण या आहत सिक्कों का भी प्रचलन था।

इस अभिलेख में वर्णित अन्नागार की व्यवस्था से हमें उस काल की कृषि व्यवस्था का भी ज्ञान मिलता है। इस अभिलेख में अन्नागार में रखी जाने वाले खाद्यपदार्थों का परिचय मिलता है जो थे मधु, भुना चावल, अजवायान तथा आम के भार के संग्रह) मथुल, च ख्च, –मोदम छलव कयियति। यहाँ भुने चावल का उल्लेख चावल की खेती का संकेत देता है, इसी प्रकार अजवायन का भी। मधु तथा आम का उल्लेख उद्यान के होने का संकेत देते हैं। समाज में मधु का व्यवसाय तथा मधुमक्खी पालन का भी प्रचलन होने का भी संकेत मिलता है। यदि उपर्युक्त पं.क्ति का अर्थ फ्लीट के अनुसार त्रिवेणी, मथुरा और चंञ्चु भी ले तो इतना तो प्रतीत होता है की वह काल आर्थिक दृष्टि से विकसित था और नगर में सड़क, चौराहे आदि की व्यवस्था थी। साथ ही भड़भुजे का व्यवसाय भी उस काल में रहा होगा तभी चावल के भूने जाने की चर्चा है।

इस अभिलेख की अंतिम पं.क्ति में 'नो गहिगतवयं अर्थात 'नहीं ग्रहण करना चाहिए' लिया जाता है जिसका अभिप्राय है की समान्य समय में इस संग्रह का उपयोग नहीं करना चाहिए। यह अकाल की अवस्था का बोध कराता है की प्राचीन भारत में अकाल आते थे और इसकी संभावना से राज्य की ओर से अन्नागार, उससे उत्पन्न होने वाले संकटों को रोकने के लिए बनाए जात थे। यहाँ यह भी उल्लेख है की आज की तरह उस समय भी पूर्वी उत्तर प्रदेश का भाग बाढ़ तथा अकाल की चपेट में रहता था।

इस अभिलेख में तीन कमरों वाले दो कोष्ठागारों के निर्माण का उल्लेख उस काल की वास्तुकला व भवननिर्माण परम्परा का प्रमाण देता है। अभिलेख एन इस भवन का चित्रात्मक अंकन भी किया गया है जिसमें तीन मंजिल वाले दो भवन बने हैं। इस अभिलेख में 'वसगमे' शब्द का उल्लेख है जहाँ ये कोष्ठागार बनाए गए थे। विद्वानों के अनुसार वसगमे से अभिप्राय आज के 'बांसगाँव' नामक स्थान से है जो सौहगौरा से 6 मील की दूरी पर स्थित है। इससे लगता है की आज के गोरखपुर जनपद का बांसगांव तहसील भी श्रावस्ती के महामात्रों के कार्यक्षेत्र के अंदर आता था।

इस अभिलेख के लिए प्रयुक्त धातु के प्रयोग से उस काल अर्थात लगभग ई.पू. तीसरी शताब्दी में धातु विद्या का ज्ञान मिलता है क्योंकि जिस पत्र पर यह अभिलेख मिला है वह या तो कांसे का है या तांबे का।

11.9 सारांश

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं की यह अभिलेख पूर्वमौर्यकाल के आसपास का एक महत्वपूर्ण अभिलेख है जो की भारत के सबसे प्राचीन अभिलेखों में से एक है। जिससे हमें उस काल की ब्राह्मी लिपि, प्राकृत भाषा, जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा, व्यापार, कृषि, प्रशासनिक वर्ग व धातुज्ञान के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। साहगौरा अभिलेख भी भारत के सबसे प्राचीन अभिलेखों में से एक है। इस अभिलेख में साहगौरा नामक स्थान से प्राप्त हुआ था। इसकी भाषा प्राकृत व लिपि ब्राह्मी है। इसका काल भी अशोक के आसपास का माना गया है। इस अभिलेख में श्रावस्ती के महामात्र द्वारा मानवशीति के चौराहे पर त्रिवेणी, माथुर, चंचु, मोद, भलक आदि ग्रामों के लिए दो कोष्ठागार (अन्नागार) बनाए जाने की घोषणा की गई है जिसका प्रयोग आपातकाल या अकाल की स्थिति को छोड़कर करने को निषिद्ध किया गया है।

11.10 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ.शिव स्वरुप सहाय
2. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, डॉ.परमेश्वरी लाल गुप्त

11.11 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. साहगौरा अभिलेख पर लेख लिखिए।
2. साहगौरा अभिलेख किस भाषा व लिपि में लिखित है।
3. साहगौरा अभिलेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।

इकाई 12 : हेलियोडोरस का बेसनगर स्तम्भ अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 मूल छाया (ब्राह्मी)

12.3 मूल पाठ

12.4 हिन्दी अर्थान्तर

12.5 भाषा व लिपि

12.6 तिथि

12.7 व्याख्या

12.8 महत्व

12.9 धार्मिक महत्व

12.10 सारांश

12.11 संदर्भ ग्रंथ

12.12 आदर्श अभ्यास प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत हेलियोडोरस गरुड़स्तम्भ अभिलेख मध्यप्रदेश के विदिशा जिले में बेसनगर नामक स्थान में बेतवा एवं हलाली नदी के संगम पर स्थित है। यह दशार्ण या पूर्वी–मालवा की राजधानी 'आकर' नाम से भी जानी जाती थी। इस गरुड़स्तम्भ की खोज अलेक्जेंडर कनिंघम नेएक सर्वेक्षण के दौरान 1877 ई में की थी। प्राचीन भारतीय इतिहास में इस स्तंभलेख का विशेष महत्व है। स्थानीय लोग इसे 'खामबाबा' कहते हैं।

कनिंघम के बाद सन 1909–10 में यहाँ दूसरा सर्वेक्षण सर जॉन मार्शल के नेतृत्व में हुआ जब उन्होंने यह स्तम्भलेख की खोज की। यह गरुद्ध ध्वज में द अभिलेख लिखे हुए हैं पहला यवन दूत हेलियोडोरस से संबंधित है तथा दूसरा महाभारत से। इसके बाद सन 1919–1935 तथा सन 1963–1965 में यह उत्खनन करवाया गया। जिसमें कई संरचनाएँ तथा कुछ अन्य स्तम्भ भी मिले।

यह स्तम्भ वर्तमान में एक 3 फिट ऊंचे चबूतरे के पर स्थापित हैं जिसके ऊपर इसकी ऊंचाई 17.7 फिट है। इस स्तम्भ का 4.10 फिट का भाग अष्टकोणीय है जिस पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है, इसके ऊपर का भाग 16 कोणीय है जिसकी ऊंचाई 6.2 फिट है, इसके ऊपर का भाग 32 कोणीय है जिसकी ऊंचाई 11.5 इंच है, तथा इसके ऊपर का गोलाकार भाग जो 2.2 फिट का है जिसके ऊपर का भाग उल्टे कमल के समान है जिसकी ऊंचाई 1.6 फिट तथा चौड़ाई 1.8 फिट है।

12.1 उद्देश्य

इस अध्याय में हम बेसनगर के हेलियोडोरस गरुड़स्तम्भ लेख (छायाचित्र पृ.191) के मूल पाठ, उसके हिंदी अर्थान्तर का अध्ययन करेंगे। यह स्तम्भलेख एतिहासिक व धार्मिक दृष्टि से भारत के सबसे प्राचीनतम व महत्वपूर्ण में से एक है। अतः इस अभिलेख का भारतीय इतिहास के एतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व् अन्य परिपेक्ष्यों में महत्त्व का अध्ययन करेंगे।

12.2 मूल छाया

प्रथम खंड

1. …ꠇ꠰ꠇꠛꠇ….ꠇꠛ꠸꠹ꡐꠇ꠸
2. ꠋꠉ꠸ː·… ꠖꠙ꠸꠰꠱꠲ꠉ
3. ꠇ꠸꡴꡵ꠛ꠸꠲꠸꠹ꠛꠙ꡴꡵
4. ꡴꡴-꠰꠸꡴ …꠸꠸꡴ꠎꠖꡐꠛ
5. ꠲꠸ꠙꠋ꠸ꠛ꠸꡴ꠉ꠸ꠛꠋꠛ꠱ꠛ
6. ꠋꠛ-꠸…ꠛ …꠸ꠉ꠰ꠛ꠸ꠟ꠱ꠛ
7. ꠇꠛ꡴ꠙ…꠰ꠛ꡴ꠉꠋ꡴ꠇꠖ꡴ꠛ

द्वितीय खंड

1. ꠟꠉ꠲ꠎ꠸꠱-꠸꠰ꠉ … ……꠲꡴ꠎꠟꠉ
2. ꡴꡵ꠟ ……꠰ꠎꠙ꠸꠲꠸ꠎ꠰ ||

12.3 मूल पाठ

प्रथम खंड

1. (दे) वदेवसवा (सु) देवसगरुडध्वजोअयं

2. कारितेइ (अ) हेलिउदोरेणभाग
3. वतेनदियसपुत्रेणतख्खसिलाकेन
4. योन–दतेन (आ), गतेनमहाराजस
5. अंतलिकितसउपं.तासंकासंरञो
6. कासी–पु (त्र), स (भा), गभद्रसत्रातारस
7. वसेनच (तु), दसेनराजेनवधमानस।।

द्वितीय खंड

1. त्रिनिअमुत–पदानि (इअ), (सु), –अनुठितानि
2. नेयंति (स्वगं), दमचागअप्रमाद।।

12.4 हिन्दी अर्थान्तर

प्रथम खंड

1. देवताओं में श्रेष्ठ वासुदेव का यह गरुड़ ध्वज
2. स्थापित किया गया हेलयोडोरस द्वारा
3. दियस के पुत्र भगवत धर्मानुयायी तक्षशिला के
4. यवन दूत के आकार महाराज
5. अंतलितिकस के समीप से राजा
6. काशीपुत्र के भगभद्र के
7. चौदहवे वर्धमान राज्यकाल में

द्वितीय खंड

1. तीन अमृत पद ये सुअनुष्ठान के द्वारा
2. स्वर्ग में ले जाते हैं – दम, त्याग और अप्रमाद।।

12.5 भाषा व लिपि

हेलियोडोरस गरुड़ स्तम्भ की लिपि शुंगकालीन (ई.पू. दूसरी शताब्दी) ब्राह्मी तथा भाषा संस्कृत प्रभावित प्राकृत है।

12.6 तिथि

हेलीयोडोरस गरुड़ ध्वज अभिलेख में अभिलेख लिखवाने की कोई तिथि अंकित नहीं है, केवल इस बात का उल्लेख है की यह स्तम्भ भागभद्र के शासन के 14वें राज्य वर्ष में यवन दूत हेलियडोरस द्वारा स्थापित किया गया था।

12.7 व्याख्या

हेलियोडोरस स्तम्भलेख के प्रथम अभिलेख के अनुसार 'तक्षशिला के राजा अंतलितिकस के सपीस्थ काशीपुत्र के राजा भागभद्र के चौदहवें राज्यवर्ष में दियस के पुत्र भागवत धर्मानुयायी यवनदुत हेलियोडोरस द्वारा देवताओं में श्रेष्ठ वासुदेव का यह गरुड़ स्तम्भ स्थापित करवाया गया।'

दूसरे अभिलेख को महाभारत से संबंधित माना गया है जिसमें यह कहा गया है की 'दम, त्याग और अप्रमाद इन तीन अमृत पद का सुअनुष्ठान के द्वारा स्वर्ग जाते है'।

12.8 महत्व

हेलियोडोरस गरुड़स्तम्भ लेख प्राचीन भारतीय इतिहास के प्राचीन व महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। इसका प्राचीन भारतीय इतिहास के धार्मिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक अध्ययन में महत्व है।

धार्मिक दृष्टि से यह स्तम्भलेख अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस लेख में वासुदेव के उल्लेख, गरुड़ध्वज की स्थापना तथा गरुड़चिन्ह के अंकन आदि से उस काल में वैष्णव धर्म के प्रसार तथा व्यापकता पर प्रकाश डालते हैं। यह स्तम्भ अनेकों माध्यमों से वैष्णव धर्म को व्याख्यायित करता है जो की निम्न है –

1. प्रथम इस स्तम्भ पर गरुड़ का अंकन है जो भगवान का विष्णु का वाहन है। गरुड़ को विष्णु का प्रतीक माना जाता है। अनेकों वैष्णव मंदिरों में द्वार के आगे गरुड़ ध्वज की स्थापना की जाती है।
2. अभिलेख में भी हेलियोडोरस ने इस स्तम्भ को 'गरुड़ध्वजे अयं कारिते' अर्थात 'गरुड़ध्वज (गरुड़स्तम्भ)स्थापित किया गया' कहा है जिससे स्पष्ट होता है की यह वैष्णव धर्म के विशेष प्रयोजन से ही यह स्तम्भ स्थापित किया जा रहा है।
3. अभिलेख के आरंभ में ही 'वासुदेव' का उल्लेख मिलता है पाणिनी के अनुसार वासुदेव वसुदेवकों के उपास्य थे अर्थात वासुदेव की उपासना

करने वाले वसुदेवक कहलाते हैं। पतंजलि ने इसे ईश्वर का नाम बताया है।

4. अभिलेख में वासुदेव को 'देवदेवस' अर्थात 'देवताओं में श्रेष्ट' कहा गया है अर्थातवासुदेव को देवताओं में श्रेष्ठ कहना वैष्णव धर्म की महत्ता को दर्शाता है।

5. वासुदेव कृष्ण का ही दूसरा नाम था किन्तु कृष्ण के स्थान पर वासुदेव का उल्लेख करना इस बात का संकेत देता है की इस काल में कृष्ण के लीलामय रूप के स्थान पर उनके गौरवपूर्ण स्वरूप वासुदेव की उपासना पर बल दिया गया है।

6. इस अभिलेख में उल्लेखित 'इअ' अर्थात यहाँ से स्पष्ट होता है की यह स्तम्भ का स्थान विदिशा वैष्णव धर का प्रमुख केंद्र था।

7. इस स्तम्भलेख को स्थापित करवाने वाला यवनदूत हेलियोडोरस के लिए 'हेलियोडोरेण भागवतेन' अर्थात भागवत धर्मानुयायी कहा गया है, अर्थात हेलियोडोरस जो की एक यवन था वो भागवतधर्म का अनुयायी था। इससे स्पष्ट होता है की वैष्णव धर्म का प्रसार विदेशियों में भी था।

8. अभिलेख में हेलियोडोरस को तक्षशिला के विदेशी राजा अंतलिकितस दूत बताया गया था। इस शासक की समता यूनानी शासक एंटिअल्काइडस से की जाती है। इससे स्पष्ट होता है की मथुरा के निकट तथा उत्तर–पश्चिम भारत के वो क्षेत्र जो विदेशियों द्वारा शासित थे वैष्णव धर्म का प्रसार था जिसे विदेशियों ने भी स्वीकार कर लिया था। किन्तु यह बात उल्लेखिनीय है की इस काल अभिलेख के अतिरिक्त भारत के इस क्षेत्र में इस काल का वैष्णव धर्म के प्रसार का कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता।

9. इस अभिलेख के दूसरे भाग में स्वर्ग प्राप्ति के लिए बताए गए जिन तीन मार्गों का उल्लेख किया गया है वह महाभारत (5.43.22) तथा गीता (160.1–3) से लिए गया है। इससे स्पष्ट होता है की विदेशियों में भी भारतीय वैष्णव अथवा भारतीय ग्रंथों की मान्यता थी तथा विदेशी भी भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करते थे।

यदि इस अभिलेख के राजनैतिक महत्व की बात करें तो यह प्राचीन भारत के ऐतिहासिक महत्व वाले महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। इस अभिलेख से हमें निम्न ऐतिहासिक तथ्य ज्ञात होते हैं –

1. इस अभिलेख के लिखे जाने के समय इस क्षेत्र में शुंग शासन अंतिम चरण में था तब इस क्षेत्र में यवन–बख्त्रि शासकों का शासन होने लगा था।

2. इस अभिलेख के हमे यह ज्ञात होता है की इस काल में इस क्षेत्र में अंतलिकीट्स नामक यवन शासक का शासन था।

3. इस अभिलेख के अनुसार अनुसार हेलियोडोरस तक्षशिला का यवन राजदूत था जो अंतलितिकस के समीप था। यह अंतिलितिकस संभवतः इंडो–ग्रीक शासक अंटीआकाइडस था जिसका उल्लेख पतंजलि इस प्रकार करते हैं– 'अरुनद यवनः साकेतं, अरुनद यवनों मध्यमिका' अर्थात पश्चिमी भारत में यवन आ चुके हैं। किन्तु इस शासक की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। अनुमानतः इसे ई.पू. दूसरी शताब्दी के अंतिम चरण में रखा जा सकता है, जिसकी पुष्टि पं.जाब क्षेत्र में पाए गए इसके सिक्कों से होती है।

4. इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है की विदिशा में एक भारतीय शासक काशीपुत्र 'भागभद्र' का शासन था। मालविकाग्निमित्रम के अनुसार इस समय विदिशा में शुंगवंशीय शासकों का राज्य था अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है यह एक शुंग शासक रहा होगा। किन्तु पुराणों में शुंग शासकों के वंश में इस शासक का नाम नहीं मिलता। किन्तु ब्रह्मांड पुराण में 'भद्र' तथा भागवत पुराण में 'भद्रक' या 'भड़क' का नाम आता है जिसे वसुमित्र का उत्तराधिकारी तथा पाँचवाँ शुंग शासक कहा गया है। सर जॉन मार्शल ने इसी शासक से भागभद्र से समता स्थापित की है किन्तु यह सही नहीं प्रतीत होता क्योंकि पुराणों में इसका शासन काल 2 से 7 वर्ष मिलता है जबकि यह स्तम्भलेख भागभद्र के 14 वें वर्ष में स्थापित करवाया गया था। डॉ. भागवतशरण उपाध्याय के अनुसार यह शुंगवंशीय शासक पुष्यमित्र के क्रमशः 5वें या 9वें उत्तराधिकारी 'ओद्रक' या 'भागवत' में से कोई एक रहा होगा। किन्तु पुष्यमित्र शुंग के बाद के शुंगवंशीय शासक भागवत से जो पुराणों की तालिका में शुंगवंश का नवां शासक था तथा जिसका शासनकाल 32 वर्ष था, नागभद्र की समता डॉ.. जायसवाल ने स्थापित की है। भंडारकर, रामप्रसाद चंद तथा डॉ. राजबली पाण्डेय भी इसी मत का समर्थन करते हैं। किन्तु डॉ. रायचौधरी ने इसे उचित नहीं माना है क्योंकि बेसनगर से ही एक दूसरे गरुड़स्तम्भ की प्राप्ति हुई है जो महाराज भागवत के राज्यारोहण के 12वें वर्ष में स्थापित किया गया था। एक ही स्थान से 2 वर्षों के अंतर में एक ही

राजा के दो अलग–अलग नाम 'भागभद्र' व 'भागवत' मिलना तर्क संगत नहीं लगता। अतः उन्होंने काशीपुत्र भागभद्र से भिन्न इसे विदिशा का शासक माना है। राजस्थान के अजमेर जिले के बारली से इसी काल का कल का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें राजा भागवत का उल्लेख है। अतः डॉ.रायचौधरी का यह मत अधिक तर्कसंगत लगता है की अभिलेख में उल्लिखित काशीपुत्र शासक भागभद्र की समता भागवत अथवा भागशुंग से स्थापित नहीं की जा सकती। कुछ विद्वानों का मानना है की यह कोई शुंग शासक ना होकर कोई स्थानीय शासक रहा होगा।

5. इस अभिलेख से यह ऐतिहासिक जानकारी मिलती है की बख्त्रि यवन शासकों ने पुष्यमित्र के काल में गंगा घाटी के विजय में सिकंदर (अलेक्जेंडर) के सेनापति सेल्यूकस की तरह पहले आक्रमण करने तथा असफल होने पर संधि व मैत्री की नीति अपनाते हुए शुंग शासकों से मैत्री की थी।

6. इस लेख से अंतिअकाइडस तथा यवन शासकों के तिथि निर्धारण से सहायता मिलती है।

7. इस अभिलेख में भागभद्र को त्रातारस (यूनानी सोटरस) विश्लेषण से संबोधित किया गया है जिसका अर्थ होता है 'रक्षक' जो अंतलिटिक्स या किसी दूसरे समकालीन यूनानी शासक के लिए भी प्रयोग नहीं किया गया है। यह संभव है की अंतलितिकस किसी संकट में रहा हो जिस समय भागभद्र ने उसकी सहायता या रक्षक की होगी इसी कारण उसे यवनदूत त्रातारस विरुद के साथ संबोधित कर रहा है। किन्तु ऐसे किसी घटना की हमें कोई जानकारी नहीं मिलती।

8. इस अभिलेख से हमने यवन शासक अंतलितिकस तथा भारतीय शासक भागभद्र के मध्य सांस्कृतिक संबंध की भी जानकारी मिलती है जहाँ विदेश शासक के लिए भारतीय उपाधि 'महाराज' तथा भारतीय शासक के लिए यूनानी विशेष 'त्रातारस' जो की यूनानी उपाधि 'सोटेरस' का संस्कृत रूपांतर है का प्रयोग हुआ है। डॉ. सरकार के अनुसार त्रातारस प्रयोग करने कारण यह हो सकता है की इस अभिलेख की मूल रचना किसी यूनानी द्वारा की गई होगी जो की संभवतः हेलियोडोरस हो सकता है।

9. इस अभिलेख से हमें यह ज्ञात होता है की यवनों में वैष्णव धर्म का प्रचार हो चुका था जो की भारतीयों में धार्मिक संकीर्णता के अभाव को

दर्शाता है जिसमें बाह्य लोग भी भारतीय मतों को अपना सकते थे।

12.9 धार्मिक महत्व

इस अभिलेख का सर्वाधिक महत्व वैष्णव धर्म के विकास की जानकारी प्राप्त करने में है। इस अभिलेख से हमें ज्ञात होता है की ई.पू. दूसरी शताब्दी के आसपास इस क्षेत्र में वैष्णव धर्म का प्रचार अधिक मात्रा में थे जिसके प्रभाव में यूनानी भी आ चुके थे तभी भारतीय शासक के क्षेत्र में एक यवन दूत ने वैष्णव ध्वज स्थापित करवाया तथा इसपर अभिलेख उत्कीर्ण करवाया जिसमें वैशावन धर्म के प्रमुख देवता वासुदेव (कृष्ण) का उल्लेख किया तथा उन्हे 'देवदेवस' कहा जिसका अर्थ है 'देवताओं में श्रेष्ठ'। इस स्तम्भ को अभिलेख में गरुड़ध्वज कहा गया था तथा इसके ऊपर गरुड़ का अंकन है जो भगवान विष्णु का मुख्य वाहन है। इस अभिलेख में वैष्णव धर्म से संबंधित प्रमुख ग्रंथ महाभारत से संबंधित एक उपदेश लिखा है जिसमें दम, त्याग व अप्रमाद के अनुष्ठान करने का उपदेश दिया गया है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने इन पदों से अंधकार के विनाश तथा अलौकिक प्रकाश के प्राप्ति की बात की है। यह दूसरी शताब्दी ई.पू. में वैष्णव धर्म के स्वरूप को व्यक्त करता है जब कृष्ण की उपासना उनके पुरषोत्तम के रूप में हो रही है न की उनके लीलामय गोपी वल्लभ रूप में।

वैष्णव धर्म की उत्पत्ति प्रारंभ में नारायण नामक एक अवैदिक देवता से मानी जाती है जो बाद में वैदिक देवताओं में महत्वपूर्ण देवता बन गए। बाद में इन्हे आदिपुरुष माना गया था भागवत नाम से संबोधित किया जाने लगा। इसी से यह संप्रदाय भागवत धर्म के नाम से जाना जाने लगा।

बाद में वैदिक देवता विष्णु जो ऋग्वेद में इन्द्र के सहायक देवता थे तथा इन्द्र से कम महत्वपूर्ण देवता थे भागवत धर्म में समाहित होकर इस धर्म के प्रमुख देवता बन गए। यह नारायण के साथ रूप और कार्य के समानता के कारण एकाकार हुए और अब नारायण विष्णु के नाम से जाने लगे। बाद में इसमें वासुदेव की उपासना प्रारंभ हुई जो वैदिक देवता नहीं थे अपितु मथुरा के पास पूजे जाने वाले एक यादव वीर थे। ये वृष्णियों के प्रधान देवता थे जो वसुदेव और देवकी के पुत्र थे जिन्हे कृष्ण के नाम से भी जाना जाता है। पुराणों में कृष्ण के बाल्यकाल का तथा महाभारत में कृष्ण के युवाकाल का वर्णन है। मेगस्थनीज ने अपनी इंडिका में बताया है की यमुना (जोबरेस) नदी के किनारे शूरसेनो (सौरसेनोई) में कृष्ण की पूजा वासुदेव नाम से की जाती थी। इससे स्पष्ट होता है की मौर्यो के पहले से हि वासुदेव की पूजा का चलन था।

वासुदेव कोपाणिनी के काल में भी धार्मिक देवता के रूप में पूजा की जा रही थी। पतंजलि पाणिनी के एक सूत्र 'ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुम्यश्र' (4.3.98) पर भाष्य करते हुए कहा है की अंधक–वृष्णि वासुदेव की पूजा करते थे। वासुदेव केवल क्षत्रिय नहीं थे बल्कि एक देवता के रूप में पूजे जाने लगे हैं। डॉ. हरिपद चक्रवर्ती के अनुसार यदुवंशी वीर वासुदेव लगभग ई.पू. 150 पतंजलि के काल में देवता के रूप में पूजे जाने लगे थे तथा यूनानी जाति पर भी ई.पू. दूसरी सदी तक स्थापित हो गए थे।

ई.पू. चौथी शताब्दी में वासुदेव धर्म की उपासना मथुरा में प्रचलित थी किन्तु ई.पू. तीसरी शताब्दी में इस संप्रदाय के अधिक उपासक होने के प्रमाण नहीं मिलते। ई.पू. दूसरी शताब्दी के आस पर भागवत धर्म का प्रचार भारत के पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेशों में हो चुका था किन्तु अन्य क्षेत्रों में इसका प्रभाव अत्यंत अल्प था। बेसनगर से ही प्राप्त एक अन्य स्तम्भलेख से हमें ज्ञात होता है की यहाँ भागवत संप्रदाय का मंदिर था। डॉ.. डी. आर. भंडारकर के अनुसार इस मंदिर के भग्नावशेष 156 ई.पू. के हो सकते हैं। बाद के काल में इस संप्रदाय का विस्तर हुआ तथा विदेशी जातियों ने भी स्वीकार किया।

इस अभिलेख से ज्ञात होता है की दूसरी शताब्दी ई.पू. में वैष्णव धर्म के प्रमुख देवता वासुदेव थे जिनके लिए 'देवदेवस' विश्लेषण का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है सभी देवताओं में श्रेष्ठ। यह कृष्ण–वासुदेव से संबंधित है। पाणिनी ने सम्मिलित रूप से वासुदेव और अर्जुन संप्रदाय का वर्णन किया है किन्तु दूसरी सदी ई.पू. के इस अभिलेख में अर्जुन का नाम न होकर केवल वासुदेव का ही उल्लेख मिलता है जो की वैष्णव धर्म के विकास का दूसरा चरण दर्शाता है।

इस स्तम्भ के शीर्ष पर गरुड़ का अंकन है जो की विष्णु के वाहन के साथ साथ सूर्य का भी प्रतीक है। अतः सूर्य–उपासना और वासुदेव की पूजा के बीच इस समय घनिष्ठ संबंध स्थापित हो चुका था। डॉ. विन्सेंट स्थिम के अनुसार रोम की कला में निर्मित 'ईगल' की प्रतिमा गरुड़ के रूप में यहाँ निर्मित की गई है। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार यह धारणा गलत प्रतीत होती है क्योंकि यह पक्षी गरुड़ है जिसका संबंध पौराणिक ग्रंथों में वैष्णव धर्म के साथ बताया गया है तथा जिसकी चर्चा इस अभिलेख में हुई है। इस भारतीय धर्म के साथ विदेशी भावना को जोड़ना अत्यंत अनुचित और प्रासंगिक है।

इस अभिलेख के दूसरे खंड में तीन अमृत पदों दृ दम, त्याग और

अप्रमाद का समुचित रूप से अनुष्ठान करने की चर्चा की गई जो की एक उपदेशात्मक लेख लगता है। दम, त्याग और अप्रमाद के पालन का आदेश महाभारत में भी दिया गया है (दमसत्यागोप्रमदाश्च एतेष्वमृतमहितम् – महाभारत 5.43.23) इसी से मिलता जुलता उपदेश धम्मपद में भी मिलता है (अप्यमादो अमेतदं पमादो मच्चुनों पदं धम्मपद 2.1)। डॉ. रायचौधरी के अनुसार महाभारत के इस उद्धरण को इस अभिलेख में उत्कीर्ण कराने का यह अर्थ है की यूनानी दूत संस्कृत जानते थे।

मथुरा के अतिरिक्त पं.जाब, पश्चिमी सीमा प्रदेश तथा मध्य एशिया में भी इस धर्म का विस्तार हो चुका था। अतः पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत में स्वदेशियों तथा विदेशियों के बीच यह धर्म फैल चुका था। लगभग ई.पू. दूसरी शताब्दी की एक चतुर्भुजी विष्णु की प्रतिमा छत्तीसगढ़ के मल्हार से भी प्राप्त हुई थी जिसमें ब्राह्मी में एक अभिलेख लिखित है। राजस्थान में आदि क्षेत्रों में भी वैष्णव धर्म के प्रचार के प्रमाण घुसूँडी आदि अभिलेखों से मिलते हैं।

12.10 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं की लगभग ई.पू. दूसरी शताब्दी का यह गरुड़ स्तम्भ अभिलेख तात्कालिक एतिहासिक राजनैतिक, संस्कृति तथा विशेष रूप से धार्मिक महत्व की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण अभिलेख है जिससे हमें उस काल में हिन्द–यवन शासकों की स्थिति, उनके भारतीय शासकों से संबंध, उनमें भारतीय धर्मों के प्रति सम्मान व भारत में वैष्णव धर्म के प्रचार के बारे में विशेष जानकारियाँ प्राप्त होती है।

बेसनगर का हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख भारतीय इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। लिपि व भाषा के आधार पर इसकी तिथि को विद्वानों दूसरी सदी ई.पू. के काल में रखते हैं। यह अभिलेख तक्षशिला के यवन शासक अंतलितिकस के दूत हेलियोडोरस द्वारा काशीपुत्र के भागभद्र के चौदहवें वर्ष में वासुदेव के सम्मान में गरुड़ स्तंभ स्थापित कराने के उपलक्ष्य में उत्कीर्ण करवाया गया था। यह अभिलेख दूसरी सदी के आसपास भारत के राजनैतिक, धार्मिक व सामाजिक स्थिति का अध्यायन करने में विशेष सहायता करता है। यह अभिलेख यवनों में भारतीय धर्मों के प्रभाव का तथा उनके भारतीय शासकों से संबंध को दर्शाता है। इस अभिलेख से उस काल में भागवत धर्म के प्रभाव पर प्रकाश डालता है।

12.11 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि – डॉ. शिव स्वरुप सहाय
2. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख – डॉ.. परमेश्वरी लाल गुप्त
3. पाणिनी अष्टाध्यायी सूत्र
4. आर्केओलॉजी सर्वे रिपोर्ट 1914–15
5. H H Lake (1910). Besnagar (JRAS, Vol. XXII). RoyalAsia-tic Society
6. Early Brahmi Records in India-

12.12 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख किस शासक से संबंधित है तथा यह कहाँ स्थित है ?
2. हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।
3. हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख किस भाषा व लिपि में उत्कीर्ण है एवं यह किस काल से संबंधित है ?
4. हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख के धार्मिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक महत्व पर वर्णन कीजिए।

इकाई 13 : खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 मूल पाठ

13.3 हिन्दी अर्थान्तर

13.4 भाषा व लिपि

13.5 ऐतिहासिक महत्व

13.6 अभिलेख के अध्ययन सम्बन्धी समस्याएं

13.7 सारांश

13.8 संदर्भ ग्रंथ

13.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत हाथीगुंफा अभिलेख उड़ीसा (कलिंग) के शासक खारवेल से संबंधित है। यह अभिलेख उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर से 5 किमी दूरी पर स्थित उदयगिरी पहाड़ी में स्थित है, यह अभिलेख कलिंग शासक खारवेल का एकमात्र अभिलेख तथा खरवेल के इतिहास का एकमात्र स्रोत है। इस अभिलेख का कलिंग के इतिहास में विशेष महत्व है तथा कलिंग के एक महत्वपूर्ण राजवंश महमेघवाहन का इतिहास ज्ञात होता है। जो की मौर्यकाल के बाद कलिंग के संभवतः सबसे अधिक शक्तिशाली राजवंश था। क्योंकि इस राजवंश के इतिहास से संबंधित कोई साहित्यिक स्रोत नहीं मिलता अतः यह अभिलेख महामेघवाहन राजवंश तथा कलिंग के अंधकारमय इतिहास का एक मात्र स्रोत माना जा सकता है।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम ई.पू. 1 के लगभग शताब्दी में भारत तथा उड़ीसा (कलिंग) के इतिहास के अध्ययन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में खारवेल के हाथीगुंफा अभिलेख (छायाचित्र पृ.192) का अध्ययन तथा भारत, उड़ीसा

(कलिंग) के इतिहास में इस अभिलेख के एटिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक व अन्य परिपेक्ष्यों में करेंगे।

13.2 मूल पाठ

1. नमो अरहंतानं (।) णमो सवसिधानं (।।) ऐरेण महाराजेन महामेघवाहनेन चेति–राज–वंस–वधनेन–पसथ–सुभलखलेन चतुरंतलुठ (ण)–गुण–उपेनेत कलिंगाधिपतिना सिरि–खारवेलेन।

2. (पं.) दरस–वसानि–सीरि–(कडार) सरीर–वता कीडिता कुमार कीडिका (।।), ततो लेख रूप–गणना–ववहार–विधि–विसारदेन सव–विजावदातेन नव–वसानि योवराजं (प) सा –सितं (।।) संपुणं–चतुविसति–वसो तदानि वधमान–सेसयो–वेनाभिविजयो ततिये।

3. कलिंग–राज–वंसे पुरिस–युगे महाराजभिसेचनं पापुनाति (।।), अभिसितमतो च पधमेवसेवात–विहत–गोपुर–पाकार–निवेसनं पटिसंखारयति कलिंगनगरि खिबी (रं) (।) सितल तडाग–पाडियो च बंधापयति सवूयान प(टि), संथपनं च।

4. कारयति पनति (सि ?) साहि सत–सहसेहि पकतियो च रंजयति (।।), दुतिये च वसे अचितयिता सातकनिं पछिम–दिंस हयं–गज–नर–रध–बहुलं दंडं पठापयति (।) कन्हवेंण–गताय च सेनाय वितासिति असिकनगरं (।) ततिये पुन वसे।

5. गंधव–वेद–बुधो दप–नत गीत–वादित–संदसनाहि उसव–समाज–कारापनाहि च कीडापयति नगरिं (।।) तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहतपुवं कलिंग–पुव–राज–खनिवेसितं, ...वितध–म(कु)ट स....निखित–छत(?),

6. भिंगारे (हि) त–रतन सपतेये सव–रठिक भोजके पादे वंदापयति (।।)पं. चमे च दानी वसे नंदराज–तिवससत–ओ (घा) टितं तनसुलिय–बाटा पनाणि नगरं पवेस (य), ति सो...(।।) अभिसितो च (छठे वसे) राजसेयं संदंसयंतो सवकर–वण–

7. अनुगह अनेकानि सतसहसानि विसजति पोर जानपदं (।।) सतमं च वसे (पसा) सतो वजिरधर... स मतुक पद (कु) म...(।) अठमे च वसे महता सेना...गोरधगिरिं

8. घातपयिता राजगहं उपपीडयति (।), एतिन (।) कंमपदान–स () नादेन...

सेन–वाहने विपमुचितुं मधुरं अपयातो यवनरा (ज) (डिमित)...यछति... पलव

9. कपरूखेहयगजरधसह यति सवघरावास.....सव गहणं च कारयितुं बम्हणनं ज(य) परिहार ददाति (।) अरहत... (नवमे च वसे)

10. ..... महाविजय– पासादं कारयति अठतिसाय सत–सहसेहि (।।) दसमे च वसे दंडसंधिसा (ममयौ) भरघवस–पठानं मह (ी) जयनं (?) ... कारापयति (।।) एकादमे च वसे प (ा) यातानं च म (नि), रतनानि उपलभते (।।)

11. ...पुवराज–निवेसितं पीथुडं गदभनंगलेन कासयति (।) जन (प) दभावनं च तेरसवससत कतं भि (।) दति त्रमिस्रदह संघातं (।) बारसमे च वसे. .... (सह) सेहि वितासयति उतरापध राजनो

12. म (ा) गधानं च विपुल भयं जनेतो हथसं गंगाय पाययति (।) मा (ग) ध (।)च राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति (।) नंदराज–नीतं चका (लिं) ग–जिनं संनिवेसं..... अंग मगध वसुं च नयति (।।)

13. ...(क) जठर– (लखिल) (गोपु) राणि सिहराणि निवेसयति सतविसिकनं (प) रि (हारे हि) (।) अभुतमछरियं च हथीनिवा(स) परिहर ..... हयहथीरतन (मानिकं) पं.डराजा .....(भु) त–मनिरतनानि आहारापयति इध सत (सहसानि)

14. .....सिनो वसीकरोति (।) तेरसमे च वसे सुपवतविजयचके कुमारीपवते अरहते (हि) परिवन सं खसि, तेहि कायनिसीदियाय यापूजावकेहि राजभितिनं चिनवतानि वासा(।) (सि) तानि पूजानुरतउवा (सगखा) रवेलसिरिना जीवदेह (सायि) का परिखाता (।।)

15. .....सकत–समण सुविहितानं च सव–दिसानं ञ (नि) नं (?) तपसि–इ खसि, न संघियनं अरहतनिसीदिया–समीपे पाभारे वराकार–समुथापिताहि अनेक–योकना– हिताहि..... सिलाहि ....

16. .....चतेरे च वेडुरिय–गभे थभे पतिठापयति पानतरीय–सतसहसेहि (।) मु (खि)–य –कल–वौछिनं च चोय (ठि)–अंग संतिक (।) तुरियं उपादयति (।) खेम–राजा स वढ–राजा स भि–राजा धमराजा पसं (तो) सुनं (तो) अनुभव (तो) कलानानि

17. ...गुण विसेस कुसलो सव पासंड पूजको सवदेवायतन संकार कारको

अपतिहत चक वाहन बलो चकधरो गुतचको पवत चको राजसि वसुकुल विनिसितो महाविजयो राजा खारवेल सिरि (।।)

13.3 हिन्दी अर्थान्तर

1. अरहंतों को नमस्कार। सब सिद्धों को नमस्कार। आर्य, महाराज महामेघवाहन, चेदिराज के वंशवर्धन करने वाले, प्रशस्त एव शुभ लक्षणयुक्त चतुर्दिक प्रशस्त गुणों से पूर्ण, कलिंगाधिपति श्रीखारवेल ने

2. पं.द्रह वर्ष तक धूल धूसरित शरीर से बाल क्रीडा किया। तदन्तर लेख, रूप, गणना तथा व्यवहार–विधि में विशारद, सभी विद्यायों (ज्ञान) से प्रकाशित नववर्षों तक युवराज पद पर बना रहा। इस प्रकार 24 वर्ष पूर्ण होने पर, शैशव से वर्धमान पृथु के समान विजय करने वाले वह युवा होने पर

3. कलिंग राजवंश की तीसरी वंश पीढ़ी में राज्याभिषेक प्राप्त किया। अभिषिक्त होने के प्रथम वर्ष तीव्र वायुवेग से क्षतिग्रस्त गोपुर एवं प्रकार पुनिर्मित कराया।

4. कलिंग नागरी के दुर्गों का जीर्णोद्धार कराया। शीतल जल युक्त सीढ़ियों से अलंकृत तड़ागों को बनवाया। 35 लाख मुद्रा खर्च कर प्रजा का रंजन किया। द्वितीय वर्ष में शातकर्णी का विचार न करके पश्चिम दिशा में बहुत से घोड़ों, हाथियों, पैदल सैनिकों तथा रथों से युक्त बहुत बड़ी सेना को भेजा और कृष्णवेणा तट पर गई हुई सेना द्वारा मूषिकनगर को त्रस्त किया।

5. पुनः तीसरे वर्ष में गांधर्व शस्त्र के ज्ञाता खारवेल द्वारा मल्ल, नृत्य, गीत, वादन, प्रदर्शन तथा उत्सव एवं समाज के द्वारा, नगर के लोगों का मनोविनोद किया तथा चौथे वर्ष में पूर्वकाल में अक्षत, कलिंग के पूर्व राजाओं द्वारा निर्मित विद्याघरों के अधिवास (नगर) को ...विथटकिरीट टाटा क्षिप्तक्षत्र –

6. शृंगार एवं रत्नसंपत्ति सब राष्ट्रिकों एवं भोजकों से छीना और उनसे पद वंदना कराया। पांचवें वर्ष में नंदराज द्वारा 300 वर्षों पूर्व उद्घाटित तनसुली नहर को नगर में प्रविष्ट कराया। राज्याभिषेक के छठें वर्ष राजैश्वर्य को प्रदर्शित करते हुए सब वर्णों.....?

7. पर अनुग्रह करते हुए लाख मुद्राओं को पौर और जनपद पर व्यय किया।

प्रशासन के सातवें वर्ष वाजिरधर की रानी से उसे पुत्र उत्पन्न हुआ। आठवें वर्ष महती सेना ...(द्वारा) गोरथगिरी को वाहन के भी से छोड़कर यवनराज डिमित मधुरा (मथुरा) भाग गया।

8. घोड़ों, हाथियों तथा रथों सहित गया सब गृहवास...और सब को कराने के लिए (सब के स्वीकार के लिए ..?) ब्राह्मणों को जयोपलब्ध प्रदान किया।.....नवें वर्ष में

9. 1138 मुद्राओं द्वारा महान विजय–प्रसाद बनवाया। दसवें वर्ष दंड–संधि साम–नीतियुक्त खारवेल ने (सेना) का भारतवर्ष की महती विजय हेतु प्रस्थान... कराया। तथा ग्यारहवें ने .....पलायित राजाओं का मणिरत्न ग्रहण किया।

10. ..पूर्व राजा की राजधानी पिथुण्ड नगर को गदहों से जुटवाया। जनपद के लिए 1300 वर्षों में बने त्रिमिस्रह्रद का भेदन किया तथा बारहवें वर्ष... हजारों सैनिकों द्वारा उत्तरपथ के राजा को भयाकाल किया

11. मागधों में अत्यधिक भी उत्पन्न करते हुए हाथियों तथा घोड़ों को गंगा में जल पान कराया। मगध के राजा वृहस्पतिमित्र से पाने चरणों की वंदना कराई। नंदराज द्वारा (पाटलिपुत्र) ले जायी गयी कलिंग से जिन (की प्रतिमा) को वाहन वापस लाया। ...अंग तथा मगध का धन ले गया।

12. दृढ़ एवं सुंदर गोपुर के शिखरों को बनवाने के लिए 100 विंशक मुद्राएं व्यवय की, अद्‌भुत तथा आश्चर्यजनक हस्ति निवास को अपह्रत किया.... घोड़े हाथी तथा माणिक्य, पाण्ड्य राजा से 1100 मुक्ता एवं मणिरत्न छीन कर यहाँ ले आया ...

13. वासियों को वक्ष में किया। तेरहवें वर्ष में विजयचक्र के सुप्रवर्तित होने पर जीर्ण आश्रय वाओए धर्मोपदेशक अरहंतों के विश्राम–हेतु राजपुष्ट व्रतों का आचरण करने वाले, वर्षाश्रितों की पूजा में अनुरुक्त, उपासक श्री खारवेल द्वारा कुमारी पर्वत में आश्रय–गुहायें खुदवायी गयीं।

14. श्रमणों को सत्कृत करने वाले ने संघीय, सर्वदेशीय, सुविहित ज्ञानी, तपस्वी, ऋषियों का पर्वतपृष्ट में अर्हत विश्रामवास के समीप कई योजनों से लाई गई, सुष्ठु प्रकार से स्थापित की गई शिलाओं द्वारा

15. चत्वर में अंतर्भाग में वैदूर्ययुक्त 1105 मुद्राओं द्वारा, स्तम्भ स्थापित किया। (गीत नृत्यादि) प्रमुख कलाओं से समन्वित चौसठ प्रकार के वाद्यों से पूर्ण शक्तिकालीन सूर्य को उत्पन्न किया। क्षेमराज, वृद्धराज, धर्मराज, कल्याणों

को देखते, सुनते और अनुभव करते हुए।

16. गुणों में विशेष निपुण, समस्त पार्षदों का पूजक, सभी देव प्रतिमों का संस्कार करने वाला, राजर्षि वसु–कुलोत्पन्न, महाविजयी राजा श्रीखारवेल।

13.4 भाषा व लिपि

डॉ.. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार इस हाथीगुंफा अभिलेख की भाषा संस्कृत है किन्तु डॉ. सरकार ने इसकी भाषा पालि युक्त प्राकृत माना है। इस लिपि में मौर्यकालीन ब्राह्मी से थोड़ा परिवर्तन व विकास दिखता है जिनका अध्ययन हमने पिछले अध्यायों में किया तथा इस अभिलेख में नंदों के 300 वर्ष बाद की घटनाओं का वर्णन करते हैं, जिससे यह लिपि ई.पू. लगभग ई.पू. पहली सदी शुंगकालीन ब्राह्मी सिद्ध होती है।

13.5 ऐतिहासिक महत्व

यह अभिलेख आज के पुरी, गंजाम और कटक जिला सम्मिलित एक शक्तिशाली राज्य था जिसमें दक्षिण के कुछ तेलगू भाषी क्षेत्र भी सम्मिलित रहे। मगध के पड़ोसी होने से मगध शासक सदा इसे अधिक रखने और यह स्वतंत्र रहने के प्रयास में रहता था।

कलिंग का इतिहास अब तक अनिश्चित है। कलिंग नंदों के समय मगध के अधीन था जिसका प्रमाण इस अभिलेख के 12वीं पंक्ति में वर्णित नन्द शासक द्वारा कलिंग की जिन मूर्तियों को ले जाने की बात से स्पष्ट होती है, किन्तु चन्द्रगुप्त व बिन्दुसार के काल में कलिंग मगध के अधीन था या नहीं यह अनिश्चित है। इनके बाद अशोक द्वारा अपने राज्यकाल के 8 वें वर्ष में कलिंग को युद्ध में विजित करने का प्रमाण उसके 13वें अभिलेख से मिलता है जो भी यह सिद्ध करता है की कलिंग अशोक के राज्यारोहण के काल में स्वतंत्र था। अशोक के बाद कलिंग कब तक मगध के अधीन रहा यह निश्चित नहीं है।

खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से हमें मौर्यकाल के बाद के कलिंग के इतिहास की जानकारी मिलती है जो की हमें किसी अन्य स्रोत से नहीं मिलता।

इस अभिलेख में कलिंग के शासक खारवेल के जीवन के प्रारम्भिक 13 वर्षों तक का क्रमिक एवं विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार से वर्षानुसार क्रमिक विवरण देने का उदाहरण अभी तक किसी अन्य अभिलेख से नहीं मिला है। इस अभिलेख की कुछ पं.क्तियाँ घिस चुकी है जिससे उनको पढ़ना अत्यंत कठिन है तथा उनके पाठ संदिग्ध है।

इस अभिलेख के संबंध में मुख्यतः दो समस्याएं आज भी चुनौती बनी हुई है

1. यह अभिलेख किसने उत्कीर्ण कराया ?
2. खारवेल की तिथि कया है ?

इस अभिलेख में खारवेल को चेदिवंशीय शासक कहा गया है। डॉ. चंद के अनुसार इस वंश का उल्लेख वेसन्तर जातक में हुआ है, मिलिंदपन्हों में भी चेति वंश का संबंध से बताया है। चेदि शासकों ने बुंदेलखंड में भी लंबे समय तक शासन किया। अनुश्रुति के अनुसार चेदि शासक यहीं से दक्षिण कोसल होते हुए कलिंग गए होंगे। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार 'एरण' चेदिवंशी क्षत्रिय थे। क्योंकि चंद्रवंशी राजर्षि वसु के परिवार से उत्पन्न हुआ था। सरकार के अनुसार एरेण का अभिप्राय आर्य है, जो संभवतः उन्हे उड़ीसा के आर्येत्तर लोगों से अलग रखने के लिए कहा गया है।

इस अभिलेख के आरंभ में ही खारवेल के लिए तीन विशेषणों का प्रयोग किया गया है। खरवेल, कलिंगाधिपति, महाराजा, महामेघवाहन। बरुआ के अनुसार यह पुराणों मे वर्णित मेघवंश है जिसे महामेघवाहन वंश है। किन्तु पुराणों के अनुसार मेघवंश का राज्य कोशल में था, जबकि अभिलेख में उल्लेखित खारवेल का शासन कलिंग में था। यह संभव है की ये कोशल से ही कलिंग गए हो।

इस अभिलेख में खारवेल को चेदि वंश का बताया गया है। डॉ. विमल चंद्र पाण्डेय ने मेघवाहन को इस वंश क शासक रहा होगा। किन्तु इसकी भी पुष्टि नहीं है। यह प्रथम भारतीय नरेश है जिसने 'महाराज' की उपाधि धारण की थी जिसका अभिप्राय इन्द्र से भी लिया गया है।

कलिंगाधिपति से स्पष्ट है की खारवेल कलिंग का राजा था और शौर्य में महामेघवाहन अर्थात मेघ वंश में इन्द्र के समान वीर व पराक्रमी था। चेदि राज्य में बसने के कारण ये चेदिवंशीय कहलाये और इन्हीं की एक शाखा ने उड़ीसा में शासन किया। खारवेल इस वंश के तीसरे शासक थे। इस वंश के पहले शासक का नाम वसु का मिलता है (वसु कुल विनिश्रितो) मंचपुरी गुहा (उदयगिरि पहाड़ियों में) के निचले मंजिल का निर्माण उसके अभिलेखानुसार महामेघवाहन वंश के वक्रदेव ने कराया था जिसकी ऊपरी मंजिल वहां के दूसरे अभिलेख के अनुसार खारवेल की पटरानी द्वारा कराया गया था, जो उनके बाद की पीढ़ी की रही होगी क्योंकि ऊपरी मंजिल निचली (वक्रदेव) मंजिल के बाद बना होगा। इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता है की इस वंश शासक क्रमशः वसु दृ वक्रदेव दृ खारवेल शासक रहे होंगे। इनमें केवल खारवेल का इतिहास ही हमें इस अभिलेख से ज्ञात होता है।

इस अभिलेख का आरंभ अरहंतों व सिद्धों को प्रमाण करते हुए होता है जिससे यह संकेत मिलता है की खारवेल संभवतः जैन धर्मानुयायी रहा होगा। आगे की पं.क्तियों खारवेल के आरंम्भिक 15 वर्ष के सामान्य बाल्यकाल का वर्णन मिलता है जिसके बाद 9 वर्षों तक वह युवराज बना राहत है। इस समय में वह विभिन्नन विद्याओं का अध्ययन किया जिसमें लेखन, रूप, गणना, व्यवहार, विधि आदि का उल्लेख है। इस प्रकार 24 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद वह कलिंग का राजा बना दिया जाता है। 24 वर्ष की आयु में ही राजा बनने से यह संकेत मिलता है कि संभवतः खारवेल के पिता की मृत्यु हो गई हो गई होगी या उन्होंने सिंहासन का त्याग कर दिया होगा। इसके बाद अभिलेख के तीसरी पं.क्ति से ही खारवेल के कृतियों का वर्ष क्रमानुसार वर्णन मिलता है।

राज्य के प्रथम वर्ष में उसने तीव्र वायु (आंधी) से क्षतिग्रस्त हुए गोपुर और प्रसाद को पुनर्निर्मित करवाया तथा 35 लाख द्रव्य का व्यय करके बगीचों एवं शीतल जलाशयों का निर्माण करवाया।

दूसरे वर्ष में उसने आंध्र के शासक शातकर्णी की चिंता न करते हुए अपनी सेना को पश्चिम में आक्रमण करने भेजा। जिन्होंने कश्यप क्षत्रियों की सहायता के लिए इसने मूषिक नगर को विनष्ट कर दिया। इस तथ्य से हमें यह पता चलता है की खारवेल सातवाहनों का समकालीन था जिससे खारवेल का काल ज्ञात करने में सहायता मिलती है जो कि प्रथम सदी ई.पू. में आंध्र में शासन करने वाला एक प्रमुख राजवंश था। इस पं.क्ति में खारवेल की सेना का सातवाहनों से युद्ध होने का वर्णन नहीं मिलता, संभव है की मूषिक नगर सातवाहनों के प्रभाव में या नियंत्रण में रहा होगा। इस लेख में उल्लेखित सातकर्णी सातवाहन वंश का कौन स शासक था यह स्पष्ट नहीं है।

तीसरे वर्ष में खारवेल ने अपनी विजय के उपलक्ष्य में उत्सव का आयोजन करवाया जिससे राज्य की प्रजा का मनोरंजन हुआ।

खारवेल ने अपने राज्य के चौथे वर्ष पुनः रठिक और भोजकों पर आक्रमण कर उनके छत्र और स्वर्ण पात्र को तोड़ दिया था, उनकी रत्न और संपत्ति छिन ली और उन्हें चरणों में झुकने के लिए विवश कर दिया। इसी वर्ष उसने विद्याधरों के अधिवास और उनके वितथ मुकुट हो जाने की चर्चा है। डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार इस संदर्भ में जैन संप्रदाय के विद्याधर के नाम लेने से लगता है कि रठिक और भोजकों को जीतना उद्देश्य नहीं था बल्कि विद्याधर संप्रदाय की सुरक्षा के लिए युद्ध लड़ होगा संभवतः रठिक व भोजकों को खारवेल ने अपने साम्राज्य में विलीन नहीं किया होगा।

पांचवें वर्ष में नन्द राजा द्वारा 300 वर्ष पूर्व निर्मित तनसुली नामक नहर को उसने अपनी राजधानी में सिंचाई की सुविधा प्रदान के लिए बढ़ावा दिया।

छठे वर्ष में उसने पुर तथा जनपद के लोगों को 1,00,000 मुद्राओं के व्यवय से अनेक सुविधाएं प्रदान किया।

सातवें वर्ष में वाजिरधर की रानी से खारवेल को एक पुत्र प्राप्त हुआ।

आठवें वर्ष खारवेल को पर आक्रमण किया और राजगृह के बाह्य भाग में गोरखगिरी पर तूफान की तरह यह चढ़कर वहां की जनता को उत्पीड़ित किया। इससे दिमित (डेमेट्रियस ?) डर कर अपनी सेना सहित और वाहनों के साथ भाग गया। पर यह द्वितीय शताब्दी ई.पू. का शासक था जो की खारवेल का समकालीन नहीं हो सकता। अतः यह कोई पूर्वी पं.जाब और मथुरा का स्थानीय हिन्द–यवन शासक रहा होगा। अब यह दिमित पाठ भी गलत बताया जा रहा है।

नवें वर्ष में खारवेल ने मगध की विजय के उपलक्ष्य में एक महाविजय प्रसाद का निर्माण कराया तथा हाथी, घोड़े और घुड़सवार को ब्राह्मणों को दान दिया।

दसवें वर्ष में उसने भरधवस (भारतवर्ष) का विजय अभियान में निकला। यहाँ भारतवर्ष से तात्पर्य उत्तरापथ से है किन्तु इस अभियान में किन राज्यों को विजिट किया तथा किनपर इसका प्रभाव पड़ा स्पष्ट नहीं है। संभवतः उसने उत्तरापथ के राज्यों को विजित कर केवल वहां की धन व संपत्ति लेकर वापस लौट गया होगा।

अपने राज्यवर्ष के ग्यारहवें वर्ष में उसने दक्षिण की ओर अभियान किया जिसने पिथुण्ड नगर को गदहों से जुतवाया था तथा पराजित शत्रुओं का मणि–रत्न प्राप्त किया। इसी वर्ष खारवेल ने राजाओं के संघ को तोड़ दिया था। टॉलमी के अनुसार मूसल की राजधानी था जो कृष्णा और गोदावरी नदियां के बीच स्थित था।

खारवेल में अपने राज्यवर्ष बारहवें वर्ष में उत्तरापथ के राजाओं पर आक्रमण कर उन पर विजित किया। जिसके बाद वह मगध को ओर गया जहाँ उसने अपने हाथी घोड़ों को गंगा का पानी पिलाया। यहाँ मगध के राजा वृहस्पतिमित्र से अपने चरणों का वंदन कराया तथायहाँ से उसने 300 वर्ष पूर्व नन्द शासक द्वारा पाटलिपुत्र ले जाई गई जैन प्रतिमाओं को वापिस लाया। इस विजय के बाद खारवेल मगध और बंग से बहुत सा धन लेकर आया। इसके बाद वह दक्षिण में पाण्ड्यों को विजित प्राप्त कर 10000 मणि और मोती लाया तथा पर्वत की चोटियों को गोपुरों और प्रासादों से सुशोभित कराया। डॉ.

काशीप्रसाद जायसवाल ने वृहस्पतिमित्र की तुलना पुष्यमित्र से किया है क्योंकि दोनों के नामों में अंत में मित्र शब्द है एवं ज्योतिष में बृहस्पति को पुष्य नक्षत्र का स्वामी माना जाता है इसलिए वह मानते की यहाँ पुष्य के स्थान वृहस्पति लिखा गया है। इसके बाद इसने वासियों को अपने नियंत्रण में ले लिया। पर डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार यह धारणा मान्य नहीं है लगती है क्योंकि मगध के शासन के तेरहवें वर्ष में खारवेल ने कुमारी खलटिक पर्वत पर जैनों की एक सभा बुलायी और मंदिर बनवाया। इस सभा में जैन धर्म के आठों अंगों और चौसठों कलाओं को पुनः संगठित किया गया।

इसके बाद श्रमणों व अरहंतों के विश्रामावास के लिए 1105 मुद्राओं के व्यवय से चत्वर में अंतर्भाग में वैदूर्ययुक्त स्तम्भ स्थापित करवाया।

इसके बाद खारवेल ने आनंदमय जीवन व्यतीत किया और अपने देश में जनता का गौरव पुनः स्थापित किया। उसका सम्राज्य में अदर था तथा वह विभिन्नन गुणों से युक्त और कलाओं से सम्पन्न था उसका साम्राज्य अंत्यन्त विस्तृत था।

अभिलेख की समस्याएं

इस अभिलेख के अध्ययन में हमें कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो की निम्न है –

1. इस अभिलेख में खारवेल को वसु के परिवार का बताया है, वसु महाभारत में कुरुवंश के पौरव राजा के परिवार का पाँचवाँ शासक कहा गया है। उसने सम्राट तथा चक्रवर्तिन की उपाधि धारण की थी तथा उसके राज्य में मगध तथा मत्स आदि सम्मिलित थे। किन्तु यह चेदि वंश का नहीं था। क्योंकि उसने यादवों से चेदि राज्य को जीता था इसलिए इसकी उपाधि 'चेदिपरिचर' मिलती है।
2. खारवेल के लिए 'ऐट' की उपाधि से संबोधित किया गया है। डॉ. बनर्जी के अनुसार इसका संस्कृत रूप 'ऐल' है तथा उन्होंने इस नाम की समता पौरव की माता या पिता के नाम से किया है। बी. एम. बरुआ के अनुसार इसका संस्कृत रूप 'आर्य' है तथा इसका अर्थ 'स्वामी' है। डॉ. जायसवाल ने भी यही स्वीकार किया है किन्तु इसका प्रयोग करने का उद्देश्य संभवतः कलिंग के द्रविड़ लोगों से खारवेल को अलग दिखाना माना है। डॉ. सुकुमार सेन ने 'ऐट' की समता वैदिक 'इर्य' से किया है जिसका अभिप्राय ईश्वर संप्रदाय के उपासकों से है, जो मान्य नहीं प्रतीत होता। डॉ. दिलीप कुमार गांगुली ने 'आर्य' की ही समता को ठीक माना

है तथा इसका प्रयोग उसको सम्मान प्रदान करने वाला कहा है।

3. खारवेल के पूर्व के शासकों का ज्ञान इस अभिलेख से प्राप्त नहीं होता। डॉ. राखलदास बनर्जी के अनुसार इसके दो कारण हो सकते हैं– (1) चाहे तो अल्पायु में ही उसने गद्दी प्राप्त की हो या (2) उसका पैत्रिक पक्ष संदिग्ध रहा हो क्योंकि खारवेल कलिंग में किसी प्रकार का मातृसत्तात्मक परिवार रहा हो। पर ये दोनों संभावनाएं भी स्वीकार नहीं की जा सकती क्योंकि खारवेल पुरुषयुग में गद्दी पर बैठा तथा कलिंग में मातृसत्तात्मक परिवार होने के प्रमाण नहीं हैं। संभव है की चतुर्थ सदी के पूर्व तक अभिलेखों में वंशावली के विवरण की परम्परा न होने के कारण यह अभाव हाथीगुंफा अभिलेख में भी मिलता है।

4. इस अभिलेख का 'महामेघवाहन' कौन था इस प्रकार डॉ. दिनेश चंद्र सरकार का मत है की उक्त अभिलेख में महामेघवाहन इस वंश की तीन पीढ़ी के शासकों के प्रथम था। जिसके अनुसार खारवेल का दादा कहा जा सकता है की जो अमान्य है। एक फ्रांसीसी विद्वान के अनुसार खारवेल की तरह महामेघवाहन (महा़मेघवाहन) दो शब्दों के योग से बना है। डॉ. बरुआ के अनुसार कलिंग के चेदि, पुराणों में वर्णित मेघवंशीय हैं। पर यह मान्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि मेघ कोशल में थे और चेदि कलिंग है।

5. खारवेल की तिथि अत्यंत विवादास्पद है जिसके निराकरण में विद्वानों ने अनेकों मत दिए है। खारवेल की तिथि के लिए इसी अभिलेख में उल्लेखित नंद शासक के 300 वर्ष पूर्व होने, सातकर्णी का उल्लेख, तथा खारवेल की पत्नी मंजपुरी गुहालेख जैसे अन्य स्रोतों के आधार पर कुछ समाधान करने का प्रयास किया गया है जो की निम्न है –

    5.1 इस अभिलेख में वर्णित सातकर्णी का वर्णन है जो की सातवाहन शासक था, सातवाहनों का काल ई.पू. प्रथम शताब्दी माना जाता है।

    5.2 अभिलेख में एक स्थान पर वर्णन है की खारवेल 300 वर्ष पूर्व नन्द शासकों द्वारा बनवाए गए तनसुलीय नहर को अपने नगर ले आया था। यह सर्वविदित है की नंदों का काल मौर्यों से पूर्व लगभग चौथी शताब्दी व उससे पूर्व का है।

    5.3 इस अभिलेख में मगध के शासक वृहस्पतिमित्र का उल्लेख

मिलता है जो संभवतः शुंग शासक रहा होगा। शुंगों का काल भी ई.पू. 2 शताब्दी के लगभग था।

5.4 अभिलेख में वर्णित दिमित संभवतः हिन्द–यवन शासक डेमीट्रियस रहा होगा, हिन्द–यवन शासकों का काल भी लगभग ई.पू. 2 शताब्दी माना जाता है।

इन सभी तथ्यों के आधार पर विद्वानों के विभिन्नन तर्क हैं। डॉ. काशी जायसवाल तथा बनर्जी के अनुसार यह दूसरी सदी ई.पू. के पूर्वार्ध में सिंहासन पर बैठा। जिसका आधार उन्होंने दिमित को डेमीट्रियस तथा वृहस्पतिमित्र को पुष्यमित्र मानकर लिया। डॉ. भगवान लाल इन्द्रजी के अनुसार यह 103 ई.पू. में कलिंग का शासक था। इन्होंने मौर्यकाल (मौरियकाल) होने की संभावना को स्वीकार किया है जो 255 ई.पू. में स्थापित किया गया होगा तथा खारवेल के शासन का 13 वां वर्ष मौर्यकाल का 165 वर्ष माना गया है। ब्यूलर ने नंदराज के पूर्व 103 तिथि को आधार मानकर 302, 226ई.पू. के बीच इसका शासन बताया है। फ्लीट ने 154 ई.पू. इसकी तिथि माना है तथा स्मिथ ने 223 ई.पू.। जगन्नाथ जी के अनुसार खारवेल का काल द्वितीय सदी ई.पू. के प्रारंभ का हो सकता है।

इन सभी मतों के बीच निम्न आधारों पर अध्ययन कर सकते हैं –

जायसवाल आदि अनेक विद्वान वृहस्पति की समता पुष्यमित्र से तथा नन्द की समता नंदिवर्धन स्थापित कर खारवेल का काल ई.पू. दूसरी सदी के पूर्वार्ध में मानते हैं तथा लेख में मोरिय संवत के 165 वें वर्ष का उल्लेख भी किया। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार यह मत भी सहीं नहीं लगता। डॉ. जायसवाल आदि ने वृहस्पतिमित्र व पुष्यमित्र के बीच समता दिखाने के लिए यह तर्क दिया की दोनों के नां का उच्चारण एक जैसा है तथा ज्योतिष में वृहस्पति पुष्य नक्षत्र का स्वामी है। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप जी के अनुसार लेखक ने ज्योतिष के इस समीकरण को यहाँ यहाँ नहीं लिखा है। दुसरा अभिलेख में '**मगधं च राजनम् वृहस्पति मितम**' का उल्लेख है जिससे यह स्पष्ट होता है की खारवेल ने मगध को हराने के साथ–साथ वृहस्पतिमित्र को भी पराजित किया था। वृहस्पतिमित्र के सिक्के मगध व उसके पड़ोसी पांचाल व कौशांबी से प्राप्त हुए हैं। जायसवाल के अनुसार ये शुंगों के सिक्के हैं जबकि शुंगों ने संभवतः सिक्के नहीं चलाए थे। संभव है की शुंगों के बाद किसी अन्य वंश मगध पर शासन किया हो जिनका साम्राज्य पांचाल व कौशांबी तक विस्तृत रहा हो। इन तीनों स्थानों से प्राप्त मित्र नामांत वाले सिक्कों में एकरूपता के आधार पर यह माना जा सकता है की एक एक ही परिवार के होंगे, गया की वेदिका में इनका नाम भी मिलता है जिसमें वृहस्पतिमित्र का भी नाम है, भास

अभिलेख में भी इसका नाम आता है। संभव है की वृहस्पतिमित्र कोई स्थानीय शासक रहा होगा जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र रही होगी। इस अभिलेख में मौर्यकाल पाठ को भी गलत माना गया, डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार इसका सही पाठ मुखीय कला हो सकता है। अशोक के अभिलेख उसके राज्याभिषेक के काल का निर्धारण करते हैं अगर ऐसा होता तो वह मौर्यकाल की गणना में लिखे गए होते। इस प्रकार इसमें उल्लिखित नन्दराजा की समता नंदिवर्धन से नहीं की जा सकती। नंदिवर्धन के विषय में कोई साक्ष्य नहीं मिलता की जो मगध का बड़ा शासक रहा हो तथा उसने कलिंग पर विजय प्राप्त किया हो व वहां नहर का निर्माण करवाया हो।

खारवेल की तिथि निर्धारण के लिए एक अन्य आधार अभिलेख में वर्णित 'दिमित' है, जिसे यूनानी शासक डेमीट्रियस से समता बताकर खारवेल को उसका समकालीन बताया जाता है। अभिलेख के अनुसार खारवेल ने जब गोरखगिरी पर आक्रमण किया तो दिमित पाटलिपुत्र से मथुरा भाग गया था। किन्तु डॉ. शिवस्वरूप के अनुसार अभिलेख में वर्णित 'दिमित' पाठ सर्वमान्य नहीं है तथा इसे डेमीट्रियस प्रथम नहीं माना जा सकता। गार्गी संहिता में यवनों के भारतीय विजय के अभियान में कहीं भी पुष्यमित्र का वर्णन नहीं आता। इस ग्रंथ के अनुसार यवनों का आक्रमण शालिशुक मौर्य के बाद हुआ था। शालिशुक का काल 206 ई.पू. में होगा जबकि पुष्यमित्र का काल ई.पू. 184 से ई.पू. 148 के बीच का माना जाता है। अतः यह आक्रमण इससे पूर्व का ही माना जा सकता है।

अभिलेख के अनुसार खारवेल ने सातकर्णी के काल में कलिंग के पश्चिम में आक्रमण किया था किन्तु यह सातकर्णी कौन था यह स्पष्ट नहीं है क्योंकि सातवाहन वंश में कई शासकों के नाम में सातकर्णी मिलता था। किन्तु खारवेल की तिथि संभवतः ई.पू. प्रथम शताब्दी रही होगी। अतः यह सातकर्णी प्रथम के समकालीन रहा होगा।

डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार अभिलेख में वर्णित नन्द शासक संभवतः मौर्यों से पूर्व मगध पर शासन करने वाले नन्द वंश का कोई शासक रहा होगा जिनके दिग्विजय का वर्णन पुराणों में आता है। अभिलेख के अनुसार खारवेल का काल नंदों से 300 वर्ष बाद आता है। एतिहासिक स्रोतों के अनुसार महापद्मनन्द का काल ई.पू. चौथी सदी के अंतिम चरण लगभाग ई.पू. 322 था। इस आधार पर खारवेल का काल ई.पू. प्रथम शताब्दी मानी जा सकती है। सिमुक ने कण्व वंश का अंत करके सातवाहन वंश की संस्थापक की थी। सातकर्णी सिमुक का भतीजा था अतः वह खारवेल और सातकर्णी समकालीन थे जिनका समय पहली सदी ई.पू. का उत्तरार्ध होगा।

लिपि के आधार पर चन्दा जी का मत है की इसकी लिपि बेसनगर

गरुड़ स्तम्भलेख (लगभग 2 सदी ई.पू. के अंतिम चरण) तथा नानाघाट अभिलेख (प्रथम शताब्दी ई.पू.) के पूर्वार्ध के बाद की है। पुरातत्विक के आधार पर भी यह सिद्ध होता है की खारवेल का काल ई.पू. प्रथम सदी का होगा क्योंकि मंचपुरी का गुहा शुंगकालीन भरहुत के स्थापत्य कला के बाद का है। शुंगों के बाद कण्व वंश के काल व उसके बाद मगध साम्राज्य पहले जितना शक्तिशाली नहीं था संभवतः वृहस्पतिमित्र एक साधारण शासक था जिसे खारवेल ने पराजित किया। इस आधार पर भी खारवेल का काल ई.पू. प्रथम शताब्दी है।

13.6 सारांश

अतः कलिंग के शासक खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख प्राचीन भारत तथा कलिंग के इतिहास के स्रोत के रूप एक महत्वपूर्ण स्रोत है। जिससे हमें मौर्यों के बाद के कलिंग व मध्य–पूर्वी भारत के इतिहास का ज्ञान मिलता है। यह अभिलेख खारवेल के जीवन व इतिहास का एक मात्र स्रोत है। इस अभिलेख से हमें खारवेल के व्यक्तित्व, उसके विजय अभियानों व उसके द्वारा किए कार्यों का विवरण मिलता है। इस अभिलेख से हमें खारवेल के जैन धर्मावलम्बी होने के साथ–साथ स क्षेत्र में जैन धर्म के प्रभाव का ज्ञान मिलता है उसने श्रमणों के लिए आश्रयगुहाओं का निर्माण कराया। उसने प्रजा के मनोरंजन व उनके हित के लिए कई कार्य करवाए उसके द्वारा किये गए अनेक निर्माण कार्यों से हमें ज्ञात होता है की खारवेल एक महान निर्माणकर्ता था। वह सभी विद्याओं में पारंगत तथा प्रतापी शासक था जिसने भारत विजय के उद्देश्य से दक्षिण व उत्तरापथ का युद्ध भी किया जिसके अंतर्गत उसने कई क्षेत्रों की विजित भी किया। इस अभिलेख से हमें ब्राह्मी के विकास का भी ज्ञान मिलता है तथा अभिलेखों में संस्कृ त प्रभावित प्राकृत के प्रयोग का उदाहरण मिलता है।

हाथीगुम्फा अभिलेख कलिंग के सबसे प्रतापी शासकों में से एक चेदिवंशीय महामेघवाहन वंश खारवेल से संबंधित है जो लगभग प्रथम शताब्दी ई.पू. में कलिंग (उड़ीसा) का शासक था। इस अभिलेख में उसके खारवेल के बाल्यकाल से लेकर उसके 13 वें राज्यवर्ष तक के जीवन काल का क्रमवार वर्णन किया गया है। इस अभिलेख में उसके द्वारा बाल्यकाल में ली गई शिक्षा–दीक्षा का वर्णन किया गया है। 24 वर्ष की आयु में खारवेल शासक बना जिसके बाद उसने अपने नगर में कई निर्माण कार्य करवाए जैसे तालाबों व दुर्गों, गोपुरम आदि, नंदों द्वारा उद्घाटन कीये गए नहर को उसने नगर तक लाया, मनोरंजन उत्सव का आयोजन कराया, उसने राजगृह पर आक्रमण किया। शतकर्णी के काल में पश्चिम पर आक्रमण किया। मगध पर आक्रमण किया तथा मगध के राजा वृहस्पतिमित्र को हराया। नंदों द्वारा ले जाई गई जिन मूर्तियों को वापस लाया। उसने अरहंतों के कार्य और विश्राम के लिए कुमारी पर्वत पर

गुहाओं का निर्माण करवाया। इस अभिलेख से ज्ञात होता है की खारवेल का राज्यकाल सफल रहा व महान शासक रहा।

13.7 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, डॉ. शिव स्वरूप सहाय
2. भारतीय पुरालिपि, डॉ.राजबली पाण्डेय
3. Select Inscriptions Bearining India-n HistoryAnd Civilization – DC Sarkar

13.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. हाथीगुंफा अभिलेख किस शासक से संबंधित है ?
2. हाथीगुंफा अभलेख किस भाषा व लिपि में लिखित है ?
3. हाथीगुंफा अभिलेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।
4. हाथीगुंफा अभिलेख के धार्मिक, राजनैतिक व आर्थिक महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई 14 : हुविष्क का मथुरा प्रस्तर अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 मूल पाठ

14.3 संस्कृत पाठ

14.4 हिंदी अर्थान्तर

14.5 भाषा एवं लिपि

14.6 ऐतिहासिक महत्व

14.7 सारांश

14.8 संदर्भ ग्रंथ

14.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

मथुरा से गोवर्धन जाने के मार्ग पर चौरासी जैन मंदिर के पास कुएं पर पड़े एक स्तम्भ पर एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जो आज मथुरा संग्रहालय में रखा गया है। यह अभिलेख कुषाण शासक हुविष्क से सम्बंधित है। प्रमाणों से ज्ञात होता है की हुविष्क कुषाणशासक वसिष्क के बाद शासक बना था। यह अभिलेख हुविष्क का यह सबसे पुराना अभिलेख है, हुविष्क का इससे पूर्व का कोई अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम कुषाण शासक हुविष्क के मथुरा प्रस्तर अभिलेख के एतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक व् आर्थिक पक्षों का अध्ययन करेंगे। यह अभिलेख हमें कुषाण शासकों के राजनैतिक इतिहास का अध्ययन करने में महत्वपूर्ण है।

14.2 मूल पाठ

1. सिद्ध (प्रतीक) (।।) संवत्सरे 20 (+) 8 गुर्षि्णये दिवसे 1 अयं पुण्य–
2. शाला प्राचीनीकन सरुकमान–पुत्रेण खरासले–
3. र–पतिन वकन–पतिना अक्षय–नीवि दिन्न (ा) (।) तुतो वृ (द्धि)–
4. तो मासानुमासं शुद्धस्य चतुदिशि पुण्य–शा (ला) –
5. यं ब्राह्मण–शतं परिविषितव्यं (।) दिवसे दिव (से)
6. च पुण्य–शालाये द्वार–मुले धारिये साद्यं–सक्तना () आ–
7. ढका 3 ळवृण–प्रस्धो 1 शक्त–प्रस्थो 1 शक्त प्रष्थो 1 हरित–कलापक–
8. घटक (ा) 3 मल्लक (ा) 5>(।) एतं अनाध (आ) नां कृतेन द (तव्य)
9. बभक्षितन पिबसितनं (।) य चत्र पुण्य तं देवपुत्रस्य
10. षाहिस्य हुविष्कस्य (।) येषा च देवपुत्रो प्रियः तेषामपि पुण्य
11. भवतु (।) सर्वायि च पृथिवीये पुण्य भवतु (।) अक्षय–निवि दिन्ना
12. .... (र)आक–श्रेण (इ) ये पुराण–शत 500 (+) 50 समितकर–श्रेणी–
13. (ये च) पुराण–शत 500 (+) 50 (।।)

14.3 संस्कृत पाठ

सिद्धम् संवत्सरे 28 गुर्पिये दिवसे 1 इयं पुण्यशाला प्राचीनेकेन सरुकमाण पुत्रेण खरासलेरपतिना वकनपतिना अक्षयनिवि दत्ता। ततः वृद्धितः मासानुमासं शुद्धस्य चतुर्दश्यां पुण्यशालायां ब्राह्मणंशतं परिवेशयितव्यं दिवसे दिवसे च पुण्यशालायां द्वारमूले धार्य स्वाध सक्तूनां आढ़काः 3, लवणप्रस्थ 1, शुक्तप्रस्थ 2, हरितकलापक घटका, मल्लाकः 5। एतत् अनाथानां कृतेन दातव्य वुभुक्षितानां पिपासितानां। यतं च अत्र पुण्यं ततं देवपुत्रस्य पुत्रस्य षाहे, हुविष्कस्य। येषां च देवपुत्र प्रिय तेषाम् अपि पुण्यं भवतु। सर्वस्याः च पृथिव्याः पुण्यं भवतु। अक्षयनीविः दत्ता श्रेण्यां पुराणं शतानि 500, सामिताकर श्रेण्यां च पुराण शतानि 550।

14.4 हिन्दी अर्थान्तर

1. सिद्धम। संवत्सर 28में गुर्पियमसा के प्रथम दिन यह पुण्य
2. शाला प्राचीनीक सरुकमाण–पुत्र खरासले

3. राधिपति के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को पुण्यशाला में
4. सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और प्रत्येक दिन
5. पुण्यशाला के द्वारमूल चौखट में रखना चाहिए–स्वाद्य सत्तू के
6. तीन आढक, लवण–प्रस्थ 1 आढक, शूक्तप्रस्थ 1 आढक, तरकारियों के
7. तथा बुभुक्षित, पिपसितों के लिए 1 जो इससे पुण्य हो वह देवपुत्र
8. षाहि हुविष्क को हो और जिनका देवपुत्र प्रिय है उनको भी पुण्य हो
9. और सम्पूर्ण पृथ्वी को पुण्य हो। इस हेतु अक्षयनीवी गयी
10. श्रेणी में 500 पुराण और समिताकार श्रेणी में पुराण 550।

14.5 भाषा एवं लिपि

हुविष्क का यह मथुरा प्रस्तर अभिलकह संस्कृत प्रभावित संस्कृत में उत्कीर्ण है तथा इसकी लिपि शुंगकाल के बाद विकसित कुषाणकालीन ब्राह्मी है।

14.6 ऐतिहासिक महत्व

हुविष्क का मथुरा प्रस्तर अभिलेख कुषाण साम्राज्य व कुषाण राजवंश के इतिहास पर प्रकाश डालता है अतः यह अभिलेख प्राचीन भारत में इतिहास के अध्ययन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अभिलेख हुविष्क के 28 वें राज्यवर्ष का है। इसी वर्ष का 10 माह पूर्व का एक अभिलेख साँची से प्राप्त हुआ था जिसमें वसिष्क का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है की वसिष्क के बाद हुविष्क शासक बना। हुविष्क का इससे पहले कोई कोई अभिलेख प्राप्त नहीं होता। डॉ. सिंह के अनुसार दोनों के अंतर से अनुमान लगाया जा सकता है की कनिष्क का कुषाण संवत कार्तिक मास में प्रारंभ हुआ होगा।

इस अभिलेख में हुविष्क के लिए देवपुत्रशाही उपाधि प्राप्त होती है न की देवपुत्र–शाही–शाहानुशाही अर्थात महाराज। किन्तु आगे उसे यह उपाधि मिलती है। संभव है की इस अभिलेख के काल में वह शासक न रहा होगा। सरोजनी कुलश्रेष्ठ के अनुसार उत्कीर्ण लेख में नाम स्पष्ट अक्षरों में हुविष्क न होकर पुविष्क है। अभिलेख प्रकाशित करते समय स्टेन कोनो ने भी पुविष्क हो पढ़ा था जिसे पाद टिप्पणी में लिखा भी था किन्तु पुविष्क अथवा विष्क नामांत किसी अन्य नाम की जानकारी के अभाव में ही उन्होंने हुविष्क पाठ ग्रहण किया। डॉ. सरकार ने भी यही स्वीकार किया किन्तु पुविष्क पाठ पर मौन थे।

कुलश्रेष्ठ ने अभिलेख में पुविष्क के लिए प्रयुक्त विरुद षाहि पर कहती हैं की वर्ष 84 से पूर्व कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के जितने भी अभिलेख हैं, उन सभी में समान रूप से 'महाराज राजतिराज देवपुत्र' विरुद का प्रयोग मिलता है। वर्ष 84 के बाद के वासुदेव के जो भी अभिलेख प्राप्त हैं उनमें तथा उन मूर्तियों के आलेखों में, जिन्हें लोहिजों और रोजेनफील्ड ने कला–शैली के आधार पर वसुदेवोत्तर काल का स्वीकार किया है तथा उन पर तिथि शतसंख्या के विलोपन के साथ अंकित की गयी है। इसके अतिरिक्त एक अन्य विसद 'षाहि' का प्रयोग किया गया है। इन सभी के आधार पर कुछ विद्वानों का यह मानना है की इस लेख पर अंकित तिथि शत–संख्या विलुप्त (1)28 है तथा इसे वासुदेव के पूर्व नहीं रखा जा सकता।

इस अभिलेख में उल्लेखित 'गुर्पिय' शब्द मैसोडोनिया के संवत गणना का बोधक है। ब्राह्मी लिपि में लिखा यह एक मात्र अभिलेख है जिसमें इस संवत का उल्लेख है। डॉ. शिवस्वरूप के अनुसार संभव है की यह अभिलेख जिसके लिए उत्कीर्ण करवाया गया था वह कोई विदेशी रहा हो जो इसी संवत में ही काल गणना जानता हो।

डॉ. हरिपद चक्रवर्ती के मत में चवनीज के अनुसार पाँचवी शताब्दी तक बदखशां यूचियों का केंद्र था। जब ये पूर्व की ओर बढ़ते हुए मथुरा में अपना राज्य स्थापित कर लिया तब उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र में इनके लग मथुरा आए होंगे। यहाँ 'शाही' शब्द का प्रयोग मथुरा पर उसका अधिकार सिद्ध करता है तथा इससे यह सिद्ध होता हुविष्क ने अपने पिता के प्राप्त राज्य को अक्षुण रखा था इस अभिलेख में वर्णित 'प्राचीनिक' हुविष्क के अधीन प्रांतपति रहा होगा।

स्टेनकोनों के अनुसार अक्षयनीवि के साथ पुण्यशाला का भी दान दिया गया था, किन्तु डॉ. गुप्त के अनुसार ऐसी कोई बात इस अभिलेख में नहीं है। उनके अनुसार अक्षय नीवि के रूप में दाता ने 1100 पुराण डॉ. श्रेणियों के पास आधा–आधा जमा किया था।

आर्थिक इतिहास के अध्ययन में भी यह एक महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करता है की रौप्य मुद्रा 'पुराण' का प्रयोग इस समय कर–विक्रय के लिए किया जाता था। पुरातात्विक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है की कुषाणों के काल में प्रायः स्वर्ण या ताम्र के ही प्राप्त होते हैं। केवल विमकडफिसेस के चांदी व ताम्र के सिक्के प्रचलित थे। मनुस्मृति में सिक्कों के रूप में पुराण का उल्लेख मिलता है। इनका भार 32 रत्ती के अदृत सिक्के थे जो मुख्यतः चांदी के बने होते थे। दूसरी ओर इसमें बाट या मापक इकाइयों का उल्लेख मिलता है। डॉ. शिव

स्वरूप के अनुसार संभव है की नाप एवं तौल के लिए आढक (बीस सेर का माप), प्रस्थ (आढक की चौथाई इकाई), घटक (निश्चित माप का घड़ा) का प्रयोग किया जाता रहा होगा यद्यपि घटक पानी के लिए घड़े के अर्थ में प्रयुक्त है पर डॉ. चक्रवर्ती ने इसे किसी तरल पदार्थ के मापक की इकाई माना है।

इस अभिलेख से कृषि और उद्योग पर भी प्रकाश पड़ता है। डॉ.. गुप्त के अनुनार श्रेणी व्यवसायियों की संस्था थी जो व्यापार के साथ–साथ बैंकों का भी काम करती थी। अभिलेखों से प्रकट होता है की दान में दिए गए धन का उत्तरदायित्व प्रायः श्रेणियों को दिया गया था। यहाँ उल्लेखित समितिकर श्रेणी से आटा पीसने के उद्योग का प्रमाण मिलता है। अभिलेख में जिन दो श्रेणियों को धन देने का उल्लेख है उसमें से एक नाम अक्षरों के मिट जाने से नहीं पढ़ा जा सका है तथा दूसरा नाम है समितकर। उद्योगों में पीसने, थाली बनाने आदि का ज्ञान प्राप्त होता है क्योंकि चने को पीसकर सत्तू का निर्माण होता है और थाली का निर्माण कारीगरों द्वारा होता है। नारद स्मृति में श्रेणियों की व्याख्या इस प्रकार किया गया था – एकेन शिल्पेन ये जीवते तेषां समूहः श्रेणी।

इस अभिलेख से जनकल्याणकारी कार्यों के प्रति जन–मानस की भावना का पता चलता है। इस अभिलेख में अक्षयनीवि द्वारा मास में एक बार 100 ब्राह्मणों को भोजन करवाने के साथ–साथ नित्य भूखे–प्यासे लोगों को भी खिलाने–पिलाने की व्यवस्था की गई। इसके लिए नित्य 3 आढक, ताजा (सद्यः) पीसा हुआ सत्तू, 1 प्रस्थ, लवण (नमक, 1 प्रस्थ शुक्त (डॉ. गुप्त के अनुसार संभवतः चटनीं, खटाई या आचार) और ताजी मूली तथा 3 घड़े और 5 थाली (मल्लक) रखने की व्यवस्था है। सत्तू तथा मूली का उल्लेख कृषि के उत्पादों का भी विवरण देते हैं। सत्तू के साथ नामक, आचार और मूली की प्रयोग आज भी होता है और सत्तू बेचने वाले ये सभी वस्तुएं प्रस्तुत करते हैं। पूर्वी उत्तर–प्रदेश और बिहार के अनेक स्थानों में वे लोग खाने के लिए पानी और थाली की भी व्यवस्थित रखते हैं।

इस अभिलेख के अनुसार विदेशियों में भी दान देने की महत्ता थी। लोग मार्ग में किसी भी जाति द्वारा पकाया हुआ अन्न स्वीकार नहीं करते थे तभी सूखा अन्न व सत्तू मूली और चटनी का उल्लेख मिलता है। ये भोजन के साथ खाने वाली सहयोगी सामग्रियां सत्तू के साथ प्रयोग की जाती रही होंगी।

दाताओं के दान के द्वारा ये मध्य एशिया विदेशी लगते है, क्योंकि उन्होंने गुर्पिय संवत का प्रयोग किया गया है। इससे संकेत मिलता है की मध्य–एशियाई लोगों में भी ब्राह्मण धर्म का प्रचार था तथा वे पुण्य प्राप्ति के

लिए ब्राह्मणों को भोजन कराने की परम्परा को मानते थे।

अभिलेख में दूसरी–तीसरी पंक्ति में उल्लेखित प्रचिनीकन सरुकमान व प्रचिनी को स्टेन कोणों ने प्राचीनी कनासरुकमान के रूप में और प्रचिनी को पुण्यशाला के विशेषण के रूप में ग्रहण किया है। उनके अनुसार पूर्वी और पश्चिमी डॉ. शालाएं थी। उनमें विभेद करने के लिए इसका प्रयोग हुआ है। पं. क्ति 4 में चतुदिशी पुण्यशाला पढ़कर उन्होंने पुण्यशाला को चारों ओर से खुला अनुमान किया है। किन्तु डॉ. गुप्त के अनुसार इस लेख में इस प्रकार का कोई भाव नहीं है।

स्टेनो के अनुसार कनसरुकमाण–पुत्र का अर्थ कनसरुकमान–वंश ग्रहण किया लिया है, पर स्टेनों के अनुसार कनसरुकमान व्यक्तिवाचक नाम भी हो सकता है।

डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल ने प्रचिनीकान को प्राचीतिकन पढ़ा है और तिकन और तुर्की उपाधि तिगिन अनुमान किया है। किन्तु नीकन पाठ स्पष्ट है। अतः इस लेख में तिकिन जैसी उपाधि के उल्लेख की बात नहीं उठती। डॉ. जायसवाल के अनुसार प्राची तिकिन को रुकमान का पुत्र है। डॉ. सरकार इसके तीनों रूपों को स्वीकार करते है 1. प्राचीनी–केन सरुकमाण–पुत्र 2. प्राचीना (पूर्वोदिग्वर्तिनी अथवा पुरातन) कनसरुकमाण–पुत्र, 3. प्राचीनीकस्य रुकमाण–पुत्र। डॉ. गुप्त के अनुसार पहले रूप का कोई तर्क नहीं बनता तथा दूसरे व तीसरे रूप के ग्रहण करने में कठिनाई यह है कि इन रूपों में पुत्र का नाम उपलब्ध नहीं होता, जो आवश्यक और अनिवार्य है।

इस अभिलेख में प्राचीनीकन को खरासलेर–पति और बकन–पति कहा गया है। खरासलेर का अर्थ किसी स्थान से ग्रहण कर उसे उस स्थान का शासक कहा जा सकता है। वकनपति शब्द का उलकह मथुरा से प्राप्त एक अन्य कुषाण–कालीन अभिलकह में भी मिलता है। इस शब्द के ईरानी होने की भी कल्पना की जाती है जिसका अर्थ 'मंदिर' का प्रबंध–अधिकारी समझा जाता है।

14.7 सारांश

अतः हम कह सकते हैं की हुविष्क का मथुरा प्रस्तर अभिलेख प्राचीनन भारत के इतिहास में कुषाण काल से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी मिलती है। यह अभिलेख हमें कुषाण वंश के अनुक्रम ज्ञात करने में सहायता करता है। इससे हमें कुषाणों द्वारा भारतीय परम्पराओं को अपनाने का

संकेत मिलता है। इस अभिलेख में जनकल्याण हेतु किए जाने वाले कार्यों की परम्परा के प्रमाण देखने की मिलता है। इसमें उल्लेखित विनमय साधनों से उस काल के आर्थिक इतिहास का ज्ञान होता है जिसमें उस काल मे प्रचलित मुद्रा प्रणाली की जानकारी मिलती है। इस अभिलेख में उल्लेखित खाद्य पदार्थों व भोज्य पदार्थों व उत्पादों के वर्णन से उस काल में कृषि उत्पादों व भोजन के लिए उपयोग में लाई जाने वाली भोज्य पदार्थों की जानकारी मिलती है।

हुविष्क का मथुरा अभिलेख कुषाण वंश के शासक हुविष्क से संबंधित है। यह अभिलेख मथुरा के समीप चौरासी जैन मंदिर के कुए से प्राप्त हुआ था। इस अभिलेख में हुविष्क के 28 वें वर्ष में उत्कीर्ण कराया गया था। इस अभिलेख में खरासलेर नामक स्थान में वकनस्वामि द्वारा अक्षय निधि देने का वर्णन है। जिससे प्रत्येक मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को पुण्यशाला में सौ ब्राह्मणों को भोजन कराने तथा द्वारा पर सत्तू, आढक, लवण, तरकारियों आदि को रखने का वर्णन है। तथा इसमें हुविष्क को देवपुत्रषाहि की उपाधि दी गई है। इस अभिलेख में जनकल्याणकारी कार्यों के समाज में परम्परा का इतिहास ज्ञात होता है।

14.8 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ. शिव स्वरुप सहाय
2. प्राचीन भारतीय मुद्राएं, रजवन्त राव
3. Epigraphy Indica Vol21

14.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. हुविष्क के मथुरा अभिलेख पर लेख लिखिए।
2. हुविष्क के मथुरा प्रस्तर अभिलेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।
3. हुविष्क के मथुरा अभिलेख के राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई 15 : समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख (प्रयाग प्रशस्ति)

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 मूल पाठ

15.3 हिन्दी अर्थान्तर

15.4 भाषा व लिपि

15.5 तिथि

15.6 ऐतिहासिक महत्व

15.7 सारांश

15.8 संदर्भ ग्रन्थ

15.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

समुद्रगुप्त का प्रयाग–प्रशस्ति अभिलेख चतुर्थ शताब्दी में उत्तर भारत में शासन करने वाले चक्रवर्ती गुप्तवंश के चतुर्थ शासक समुद्रगुप्त से संबंधित है। वर्तमान में यह स्तम्भलेख प्रयागराज किले में स्थित है। किन्तु यह स्तम्भ मूल रूप से कौशांबी में स्थापित था किन्तु बाद के काल में इसे संभवतः यमुना नदी में बहाकर लाया गया था इसकी रचनामहादण्डनायक भवभूति के पुत्र समुद्रगुप्त के कुमारामात्य एवं संधिविग्रहिक हरिषेण ने की थी। यह अभिलेख अशोकस्तम्भ पर उत्कीर्ण किया गया है। समुद्रगुप्त के इतिहास व व्यक्तित्व की सर्वाधिक व प्रामाणिक जानकारी देने वाला यह एक मात्र अभिलेख है। जबकि समुद्रगुप्त के अन्य अभिलेखों में एरण अभिलेख कोई विशेष सूचना नहीं देता, इससे केवल एरण पर उसके अधिकार की जानकारी मिलती है जबकि गया व नालंदा से ताम्रपत्र नकली माने जाते हैं। डॉ. उदयनारायण के लिखते हैं ...this epigraphic record isA unique oneAmong India-nAnnals in its wealth of detail. इस स्तम्भ में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति का उलकह है तथा यह प्रयाग में है। इस कारण इसे '**प्रयाग प्रशस्ति**' भी कहा जाता है। चूँकि इस प्रशस्ति की रचना हरिषेण ने की

थी इस कारण इसे '**हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति**' भी कहा जाता है।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य हरिषेण रचित समुद्रगुप्त के प्रयागप्रशस्ति (छायाचित्र पृ.193) का ऐतिहासिक, राजनैतिक, एतिहासिक, सांस्कृतिक व धार्मिक अध्ययन करना है। यह प्रशस्ति गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की उपलब्धियों व उसके व्यक्तित्व की जानकारी देने वाला एक मात्र स्रोत है अतः इस अभिलेख का अध्ययन गुप्त शासकों के इतिहास विशेषकर राजनैतिक इतिहास की जानकारी के लिए करना आवश्यक है।

15.2 मूलपाठ

1. यहः....कुल्यैः (?)....
2. स्वै....ातस....(यस्य ?) ....(॥) (1)
3. ———मुं (?) व....
4. (स्फु)रद्वं (?) ....क्षःस्फुटोद्ध ( )सित....प्रवितत....(॥) (2)
5. यस्य प्र(ज्ञानु)षङ्कोचित–सुख–मनसः शास्त्र–त (त्व)ार्त्थ–भर्त्तः ———स्तब्धो———नि———नौच्छृ——— (।)
6. (स) त्काव्य–श्री–विरोधाबन्धु–गुणित–गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा (वि) द्वल्लोके (5) वि (ना) (शि () स्फुटबहु–कविता–कीर्ति–राज्यं भुनक्ति (॥) (3)
7. (आ) (र्य्यो) हीत्युपगुह्य भाव–पिशुनैरुत्कीर्णोण्तै रोमभिःसभ्येषूच्छ्वसितेषु तुल्य–कुलज– म्लाननोद्वीक्षि(त)ः (।)
8. (स्ने) ह–व्यालुलितेन बाष्प–गुरुणा तत्वेक्षिणा चक्षुषायः पित्राभिहितो नि(रीक्ष्य) निखि (लां) (पाह्येव) (मुर्वी) मिति (॥) (4)
9. (दृ) ष्ट्रवा कर्माण्यनेकान्यमनुज–सदृशान्य (द्भु) तोद्भिन्न–हर्षाभा (।) वैरस्वादय (न्तरू) –(के) चित (।)
10. वीर्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते (5) प्रणामे– () प्य (र्ति?) – ग्रस्तेषु——— ——— ——— ——— (।) (5)
11. संग्रामेषु स्व–भुज–विजिता नित्यमुच्चापकारा : श्वरू–श्वो मान–प्र ———

——— ——— ——— ——— ——— (।)

12. तोषोतुङ्गैः स्फुट–बहु–रस–स्नेह–फुल्लैर्म्मनोभिः पश्चात्तापं. व ——— ——— ——— ——— ——— ——— म(?)स्य( )द्वसन्त(म?) (।) (6)

13. उद्वेलोदित–बाहु–वीर्य्य–रभसादेकेन येन क्षणा–दुन्मूल्याचुत–नागसेन–ग ——— ——— ——— ——— ——— (———)

14. दण्डैर्गाहयतैव कोतकुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता सूर्य्ये (?) नित्य (?) ——— ——— तट ——— ——— ——— (॥) (7)

15. धर्म्म–प्राचीर–बन्धः शशि–कर–शुचयः कीर्तयः स–प्रतानावैदुष्यं तत्त्व–भेदि प्रशम् ——— ——— ———, कु———यमु(सु?) ——— तार्त्थम् (?) (।)

16. (अद्धयेयः)सूक्त्तमार्ग्गः कवि–मति–विभवोतसारणं चापि काव्यंको नु स्याद्यो (अ)स्य न स्यादगुण–मति–(वि)दुषां ध्यानपात्रं य एः (॥) (8)

17. तस्य विविध–समर शतावतरण–दक्षस्य स्वभुज–बल–पराक्क्रमैकबन्धोः पराक्क्रामांकस्य परशुशर–शंक–शक्ति–प्रासासि–तोमर–

18. भिन्दिपाल–न(ा)राच–वैतस्तिकाद्यनेक–प्रहरण–विरुढाकुल–व्रण–शतांक–शोभा– समुदयो–पचित–कान्ततर–वर्ष्मणः

19. कोसलमहेन्द्र–माह(ा)कान्तारकव्याघ्रराज–कौरालकमण्टराज–पैष्टपुरक–महेन्द्रगिरि–कौट्टूरकस्खामिदत्तैरण्डपल्लकदमन–काञ्चेयकविष्णुगोपावसमुक्त्तक

20. नीलराजवैङ्गेयकहस्तिवर्म्म–पाल्लकोग्रसेन–दैवराष्ट्रकुबेर–कौस्थलपुरक–धनञ्जय–प्रभृति–सर्व्वदक्षिणापथराज–ग्रहण–मोक्षानुग्रह–जनित–प्रतापोन्मिश्र–महाभाग्यस्य

21. रुद्रदेव–मतिल–नागदत्त–चन्द्रवर्मा–गणपतिनाग–नागसेनाच्युत–नन्दि–बल–वर्म्मा–द्यनेकार्य्यावर्त्त–राज–प्रसभोद्धरणोद्धृत–प्रभाव–महतः परिचारकीकृत– सर्व्वाटविक– राजस्य

22. समतट–डवाक–कामरूप–नेपाल–कर्त्तृपुरादि–प्रत्यन्त–नृपतिभिर्म्मालवार्जुनायन–यौधेय–माद्रकाभीर–प्रार्जुन–सनकानीक–काक–खरपरिकादिभिश्च सर्व्व–कर – दानाज्ञाकरण–प्रणामागमन–

23. परितोषित–प्रचंड–शासनस्य.....
अनेक–भ्रष्टराज्योत्सन्न–राजवंश–प्रतिष्ठापनोद्भूत
–निखिल–भु(व)न–(विचरण–शा)न्त–यशसहदेवपुत्रषाहीषाहनुषाहि–शकमु
रुंडैःसैंहलका दिभिश्च

24. सर्व्व–द्वीप–वासिभिरात्मनिवेदन–कन्योपायन–दान–गुरुत्मदंकस्वविषयभूि
क्तशासन (य)ाचनाद्यु–पाय–सेवा–कृत–बाहु–वीर्य्य–प्रासर–धरणि–बंधस्य
प्रिथिव्यामप्रतिरथस्य..

25. सुचरित–शतालंकातानेक–गुण–गणोत्सिक्तिभिश्चरण–तल–प्रमृष्टान्य–
नरपति–कीर्तेः साद्धृ साधूदय–प्रलय–हेतु–पुरुषस्याचिंत्यस्य भक्तपवनति–
मात्र–ग्राह्य– मृदुहृदयस्यानुकंपावातो–(ऽ)नेक–गो–शतसहस्त्र –प्रदायिन
(:)

26. (कृप)ण–दीनानाथातुर–जनोद्धरण–समन्त्रदीक्षाभ्युपगत–मनसः समिद्भस्य
विग्रहवातो लोकानुग्रहस्य धनद–वरुणेन्द्रान्तक–समस्य स्वभुज–बल–
विजितानेक–नरपति– विभव–प्रत्यर्पणा–नित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य

27. निशितविदग्धमति–गांधर्व्वललितैव्रीडित–त्रिदशपतिगुरु–तुंबुरूनारदादेर्व्विव
द्वज्जनोप –जिव्यानेक–काव्य–विक्रयाभिः प्रतिष्ठित–कविराज–शब्दस्य
सूचिर– स्तोतव्यानेकाद्भुतोदार–चारितस्य

28. लोकसमय–विक्रयानुविधान–मात्र–मानुष्य लोकधाम्नों देवस्य महराज–
श्री–गुप्त–प्रपौत्रस्यकृमहाराज–श्री–घटोत्कच–पौत्रसी महाधिराजाधीराज–
श्री–चंद्रगुप्त–पुत्रस्य

29. लिच्छवि–दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्फन्नस्य महाराजाधिराज
–श्री– समुद्रगुप्तस्य सर्व्व–पृथिवी–विजय–जनितोदय–व्याप्त–
निखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपति–

30. भवन–गमनावाप्त–ललित–सुख–विचरणामचक्षाण इव भुवो बहुरयमुछितः
स्तम्भ (।) यस्य।

31. प्रदान–भुजविक्क्रम–प्रशम–शास्त्रवाक्योदै–रूपर्य्युपरि–सञ्चयोच्छ्रितमने
कमर्ग्गं यशः (।)

32. पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा–नरोध–परिमोक्ष–शीघ्रमिव पांडु
गङ्ग

33. (पयः)(।।) एतच्च काव्यमेषामेव भट्टारकपदानां दासस्य समीप–

परिसर्प्पणानुग्रहोन्मीलित–मतेः

34. खाद्य(कू)टपाकिकस्य महादण्डनायक–ध्रुवभूति–पुत्रस्य सान्धिविग्रहिक–कुमारामात्य– म(हादण्डनाय)क–हरिषेणस्य सर्व्व–भूत–हित–सुखायास्तु अनुष्ठितं च परमाभट्टारक– पादानुध्यातेन महादण्डनायक–तिलभट्टकेन

15.3 हिन्दी अर्थान्तर

1. अपने कुलवालों द्वारा
2. (जिसका ?)
3. .....
4. ....विस्तृत ?
5. विद्वानों के सत्संग में प्रसन्न मन वाले शस्त्रों के तत्वार्थ का पोषक ..
6. जो विद्वज्जनों के बहुत गुणों की शक्ति से सत्काव्य के विरोधों को दबा कर बहुत–सी स्फूट काव्य से प्राप्त कीर्ति राज्य का भोग करता है।
7. जिसके दरबारियों में हर्ष का उच्छ्वास था एवं जिसे समान कुल वाले म्लान मुख से देखते थे, पिता उसे भाव प्रवण एवं रोमांच सहित गले लगाते हुए कहा कि कि तुम वास्तव में आर्य हो।
8. स्नेहाकुल, आँसू युक्त तत्वदर्शी नेत्रों से देखकर, यह कहा कि 'तुम सम्पूर्ण पृथ्वी का पोषण करो'।
9. जिसके अनेक मानवेत्तर कार्यों को देख कुछ लोग अत्यंत प्रसन्नता से भावपूर्वक आस्वादन करते थे।
10. और कुछ लोग जिसके शौर्य से संतप्त होकर शरणागत होते हुए उसको नमन करते थे।
11. जिसने युद्धों में नीती अपकार करने वाले को जीता था
12. आनंद से भरे, बहुत हर्ष एवं स्नेह से युक्त मन से ....पश्चाताप ... वसंत।।
13. जिसने सीमा से बड़े बाहु द्वारा अकेले ही अच्युत तथा नगसेन की अविलंब जड़ से उखाड़ दिया..
14. जिसने पुष्प नाम के नगर को क्रीड़ा करते हुए स्वाधीन किया तथा

अपने सैन्य द्वारा जो कोटकुलोत्पन्न था उसको पकड़वा लिया

15. धर्म प्राचीर की तरह जिसकी कीर्ति चंद्र रश्मि की तरह उज्ज्वल और विस्तृत थी तथा जिसकी विद्वत्ता शास्त्र तत्वभेद करने वाली थी...

16. वेदों द्वारा प्रतिपादित मार्ग जिसका ध्येय था तथा कवि के मति–वैभव को स्पष्ट व्यक्त करने वाली उसकी कविता थी। ऐसा क्या गुण था जो इसमें नहीं था जो गुण और प्रतिभा ज्ञाताओं का एक मात्र ध्यान पात्र है।

17. सैकड़ों युद्दों में उतरने मे दक्ष, अपने भुजबल पर एक मात्र बहरोस करने वाला, पराक्रम वाला, फारसा, शर, शैकू, प्रास, असि, तोमर

18. भिंदिपाल, नाराच, वैतस्तिक आदि अनेक शस्त्रों प्रहार से जनित सैकड़ों घावों की चिन्हों से जिसका शरीर सुशोभित था।

19. कोसल के महेंद्र, महाकांतर के व्याघ्रराज, केयरल के मण्टराज, पिष्टपुर के महेंद्रगिरि, कोट्टूर के स्वामिदत्त, एयण्डपल्ल के दमन, कांची के विष्णुगोप, अवमुक्त के

20. नीलराज, बेङ्गई के हस्तिवर्मन, पल्लक के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, कुस्थलपुर के धनंजय आदि समस्त दक्षिणापथ के राजाओं के ग्रहण करने एवं तदुपरांत अनुग्रह द्वारा उनको मुक्त करने से उत्पन्न प्रताप से संयुक्त महाभाग्य वाला था।

21. जिसने रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चंद्रवर्मन, गणपतिनाग, नगसेन अच्युत नंदि, वलवर्मन आदि अनेक अर्थावर्त के राजाओं को उन्मूलित कर अपना महान प्रभाव बढ़ाया तथा सम्पूर्ण अटवी प्रदेश (जंगल) के राजाओं का अपना परिचायक बनाया।

22. समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर आदि सीमा के राजों तथा मालव, आर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीकम् काक, खनपरिक, आदि सभी जातियाँ करों के देने, आज्ञा पालन, प्रणाम तथा

23. प्रचंड शासन प्रति संतोष आगमन द्वारा व्यक्त करती थीं, जो अनेक च्युत राज्यों तथा नष्ट राजवंशों की पुनः स्थापना से उत्पन्न भुवनों में व्याप्त शांत यशवल था तथा जिसे देवपुत्र शाहि शाहानुशाहिशक मुरुनड़ तथा सिंहल आदि

24. द्वीपों के निवासी आत्म समर्पण, पैर पर अपनी कन्याओं का समर्पण

करते थे तथा गरुड़ चिन्ह युक्त अपने विषय एवं भुक्ति के शासन की याचना करते थे। इस प्रकार की सेवाओं से जिसमें भुजबल के विस्तार से पृथ्वी को बांध लिया था तथा समस्त पृथ्वी पर जिसका कोई शत्रु नहीं था।

25. शत सत्कार्यों से भूषित, अपने बहुसंख्यक गुणों के समुदाय से अन्य अनेक राजाओं की कीर्ति को मिटाने वाला जो साधु के लिए उदय तथा असाधु के लिए अंत का कारण था, अचिनत्यपुरुष, भक्तिपूर्वक नमन मात्र से जिसका मृदुल हृदय वंश में हो जाता था, अनुकम्पावान, जो शतसहस्त्र गायों को दान करने वाला था।

26. कृपण, दीन, अनाथ एवं व्यग्र लोगों के कष्ट–निवारण तथा दीक्षा में लगे अन्तः–करणवाले जो अनुकंपा का प्रतिमा था जो धनद, वरुण, इन्द्र, यम, सदृश, अपने बाहुबल से विजित अनेक राजाओं की संपत्ति लौटाने में नित्य लगा हुआ था।

27. तीक्ष्ण एवं विदग्धमति, वाद्य एवं कण्ठ संगीत द्वारा इन्द्र, गुरु वृहस्पति तुंबुरु तथा नारदादि को लज्जित करने वाला था, विद्वानों की जीविकार्जनोपयोगी अनेक काव्यों की रचना द्वारा 'कविराज' उपाधि को प्रतिष्ठा करने वाला था, चिर–काल तक स्तुत्य जिसके अनेक विलक्षण एवं उदार कार्य थे।

28. जो केवल लौकिक–कार्य सम्पादन से ही मनुष्य था अन्यथा भूलोकवासी देवता था वह महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज श्रीघटोत्कच का पौत्र, महाराजाधिराज श्री चनद्रगुप्त का पुत्र था जो

29. लिच्छवि वंश की लड़की का लड़का, जो महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न था। महाराज चंद्रगुप्त के समस्त पृथ्वी की विजय द्वारा उत्पन्न अभ्युदय से समस्त संसार व्याप्त है यहाँ पृथ्वी इन्द्र के

30. भवन पँहुचने वाली, सुंदर–सुखमय गति वाली कीर्ति को घोषित करता हुआ, पृथ्वी की भुज की भांति यह स्तम्भ ऊंचा है। जिसका यश

31. दान, बाहु–विक्रम, प्रज्ञा एवं शास्त्र–विधान के अभ्युदय से, उच्चोच्च उन्न होता हुआ, अनेक मार्गों से त्रैलोक्य को, शिव की जटा के अन्तः गुहा–बंध से मुक्त त्वरित पीले गंगाजल की भांति निकालकर पवित्र करता है।

32. यह काव्य उन्हीं स्वामी के चरणों के दस, समीप रहने के अनुग्रह से

विकसित मतिवाले, महादण्डनायक भवभूति के पुत्र, खाद्यत्पाकिक, संधिविग्रहिक, कुमारामात्य हरिषेण ने रचा। यह समस्त प्राणियों के हित एवं सुख का हो।

33. परमभट्टारक के चरणों का चिंतन करने वाले महादण्डनायक द्वरा इसकी स्थापना की गयी।

15.4 भाषा एवं लिपि

इस अभिलेख की भाषा संस्कृत है तथा इसकी लिपि गुप्तकालीन ब्राह्मी है। इस अभिलेख के अनुसार इस अभिलेख को चंपू शैली में की गई है।

समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति समुद्रगुप्त के बारे में सर्वाधिक जानकारी प्रदान करने वाला एक मात्र स्रोत है। इसके अतिरिक्त अन्य एरण अभिलेख व गया व नालंदा ताम्रपत्र से कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। किन्तु भाषा, व्याकरण संबंधी त्रुटियों के कारण फ्लीट, सरकार आदि विद्वानों ने गया और नालंदा के ताम्रपत्रों को जाली माना है।

15.5 तिथि

यह अभिलेख तिथिविहीन है, किन्तु अभिलेख के अनुसारउसने सिंहासन को सुरक्षित करने के लिए अपने संबंधियों से युद्ध करना पड़ा था, जिसके बाद समुद्रगुप्त ने उत्तरापथ व दक्षिणापथ का अभियान किया युद्धों के बाद उसने कला व विद्वानों को आश्रय दिया था जिससे यह स्पष्ट होता है की यह काल शांति काल में ही हुई होंगी जिसका अर्थ है की यह अभिलेख समुद्रगुप्त के शासन काल में बहुत बाद में उत्कीर्ण करवाया गया होगा। चूँकि समुद्रगुप्त के अश्वमेध सिक्के हमें प्राप्त होते हैं तथा इस अभिलेख में समुद्रगुप्त द्वारा अश्वमेध यज्ञ किए जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता जिसका अर्थ है की प्रयाग प्रशस्ति लिखवाए जाने के बाद समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया होगा। इतिहासकारों के अनुसार समुद्रगुप्त का काल लगभग 335/50 ईसवी से 375 ईसवी के बीच माना है। डॉ. डिस्कल्कर के अनुसार यह अभिलेख 350 ई का हो सकता है।

15.6 ऐतिहासिक महत्व

समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति स्तम्भलेख भारतीय इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। यह अभिलेख गुप्त राजवंश, 4–5 वीं सदी में भारत की राजनैतिक स्थिति की जानकारी का प्रमुख स्रोत है। इस अभिलेख से हमें कुषाण सम्राज्य के अंत के बाद भारत की स्थिति की जानकारी डेने वाले

सबसे प्रमुख स्रोतों में से एक है। इस अभिलेख से गुप्त साम्राज्य के विस्तार, उसके प्रशासनिक तंत्र, गुप्त साम्राज्य की विशालता, गुप्त वंश के अनुक्रम व समुद्रगुप्त के व्यक्तिगत चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

गुप्तकालीन भारत की राजनैतिक अवस्था का ज्ञान

इस अभिलेख में प्रशस्तिकार ने समुद्रगुप्त की विजय अभियानों का वर्णन किया है, जिससे हमें गुप्तकालीन भारत के मध्य व पश्चिमी भाग को छोड़कर शेष अन्य भारतीय प्रदेशों की राजनैतिक स्थिति का ज्ञान मिलता है। इस लेख में कहीं राज्य और राज्य व्यवस्था, कहीं केवल राज्य, कहीं केवल राजा, कहीं केवल क्षेत्रीय विभाजन का उल्लेख मिलता है जिससे भारत में विभिन्नन क्षेत्रों की राजनैतिक इकाइयों की राजनैतिक व्यवस्था का ज्ञान मिलता है।

भारतीय इतिहास में कुषाणों के बाद व गुप्तों के पूर्व तक के इतिहास का कोई समकालीन साहित्यिक व अभिलेखीय इतिहास हमें नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति हमें इस काल के राजनैतिक इतिहास का जानकारी मिलती है। डॉ. केपी जायसवाल ने इसे अंधकार युग कहा है। इस प्रयाग प्रशस्ति में उल्लेखित राजनैतिक इकाइयों का अध्ययन करने पर निम्न राजनैतिक इकाइयों व राज्यों का ज्ञान मिलता है –

सीमा–प्रदेश के राज्य

अभिलेख में कई सीमा प्रदेशों का वर्णन है। जिसमें – समतट (समुद्रतटीय भाग = दक्षिण–पूर्वी बंगाल), डवाक (फ्लीट के अनुसार ढाका, स्मिथ के अनुसार दिनाजपुर के पास, बसाक के अनुसार ढाका का उत्तरी भाग, बरुआ के अनुसार आसाम में नवगांव जिले का डवोक), कामरूप(आसाम प्रांत का गोहाटी), नेपाल (काठमांडू की घाटी का प्रदेश जहाँ के शासक लिच्छवि थे) तथा कर्तृपुरा (फ्लीट के अनुसार कर्तापुर, रायचौधरी गढ़वाल कुमायूं का भाग, किन्तु अब विद्वानों के अनुसार यह कश्मीर का एक भाग जहाँ के के शासक 'क्रितिय' थे। इनके संदर्भ में 'नृपतिमिः' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अतः उत्तरी पश्चिमी तथा पूर्वी सीमा के ये राजतंत्रयी राज्य थे।

पश्चिमी भारत के राज्य

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में आज के हरियाणा, पं.जाब, राजस्थान के क्षेत्र का भू उल्लेख आता है जिसमें छोटे–छोटे गणराज्यों का वर्णन है जो निम्न है –

1. **मालव** (अजमेर–टोंक–मेवाड़ प्रदेश)– प्रायः सभी विद्वान मालव का

तात्पर्य यवन लेखकों द्वारा उल्लिखित मल्लोई से अनुमान करतेहैं जिन्होंने एलेक्जेंडर के आक्रमण का विरोध किया था यह धारणा भंडारकर ने प्रस्तुत की है। मलावों का उल्लेख लोगों का उल्लेख महाभारत में है। इसके अंतर्गत पं.जाब का सतलज और घग्घर नदी के बीच का भूभाग, जिसके अंतर्गत फिरोजपुर, फरीदकोट, भटिंडा, लुधियाना, संगरूर, पटियाला, रूपड़, चंडीगढ़ और अंबाला का क्षेत्र आते हैं, इन्हें मालवा या मालव कहा जाता है। इसी के साथ ही राजस्थान का दक्षिणी, पूर्वी भाग तथा मेवाड़ और टोंक में भी मालव निवास करते थे। टोंक के निकट कर्कोटनगर के आसपास के क्षेत्र में मलावों के सिक्के मिलते हैं।

2. **आर्जुनायन** (देहली, आगरा, जयपुर के निवासी) – अर्जुनयनों का उल्लेख पाणिनी के अष्टाध्यायी में मिलता है। बृहतसंहिता के अनुसार वे उत्तरी भाग के निवासी थे जिसका प्रमाण इस क्षेत्र में मिलने वाले उनके सिक्कों से होते हैं।

3. **यौधेय** (दक्षि–पूर्वी पं.जाब तथा उत्तरी राजस्थान के लोग) – यौधेयों का उल्लेख भी पाणिनी अष्टाध्यायी में मिलता है। इनकी स्थिति वाह्विक (पश्चिमी पं.जाब) के बीच है। सतलुज और व्यास के क्षेत्र से तीसरी सदी के आसपास के सिक्के मिलते हैं।

4. **मद्रक** (रावी–चिनाब दोआब में पं.जाब का मद्र देश) – मद्र का उल्लेख उपनिषदों में मिलता हैं। इनकी चर्चा अष्टाध्यायी और महाभारत में भी हुई है। वे पूर्व और ऊपर डॉ. भागों में बटें हुए थे। पूर्व मद्र रवि से चिनाव तक और अपर भद्र चिनाव से झेलम तक फैला था। पाणिनी के अनुसार मदर का नाम भद्र भी था। भद्र राजस्थान में घग्घर के किनारे बीकानेर के उत्तर–पूर्वी सीमा पर स्थित है।

5. **आभीर** (पंजाब, पश्चिमी राजस्थान तथा मध्य–प्रदेश का अहिरवाड़ा क्षेत्र) झांसी और विदिशा के मध्य का भाग अहिर्वर कहलाता है। किन्तु महाभारत में आबहिरों की अवस्थिति सरस्वती और विनशन नदियों के निकट अर्थात निचले सिंधु–काठे और पश्चिमी राजस्थान में बताया है।

6. **प्रार्जुन** – भंडारकर तथा स्मिथ के अनुसार नरसिंपुर–मध्यप्रदेश का क्षेत्र था, डॉ. पी.एल. गुप्ता के अनुसार उत्तर पश्चिम का क्षेत्र था। किन्तु कौटिल्य ने इनका उल्लेख गंधारों के साथ किया है। अर्थशास्त्र के टीका में उन्हे चांडाल–राष्ट्र कहा गया है।

7. **सनकानिक** (मध्य–प्रदेश में) – चन्द्रगुप्त द्वितीय के सामंतों में एक सनकानिक महाराज थे जिन्होंने उदयगिरी के एक देवालय को दान दिया था। इस कारण रायचौधरी और उनके अनुकरण में अन्य लोगों ने मान रखा है। इसमें यह बात ध्यान देनी चाहिए की इसी काल में गणपति नाग को विदिशा का शासक था। सनकानीक महाराज उन सैनिक और प्रशासनिक अधिकारियों में रहें होंगे जो चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता के संरक्षणकाल में वाकाटक राज्य की शासन व्यवस्था के लिए पाटलिपुत्र से भेजे गए थे। वीरसेन और अम्रकादेव गुप्त राज्य के कुछ अन्य अधियाकरी हैं, जिनका उल्लेख उदयगिरी और सांची के अभिलेखों में मिलता है। वे निःसंदेह इस भूभाग के निवासी न थे। इस आधार पर यह माना जा सकता है की सनकानीक महाराज विदिशा के निवासी रहे होंगे इसी कारण हरिषेण ने इन्हे प्रारजूनों और कार्कों के बीच रखा है।

8. **खरपरिक** (दमोह जिला–मध्यप्रदेश)– बटियागढ़ अभिलेख में खर्पर शब्द का प्रयोग देख कर अनुमान लगाया गया है की खरपरिक मध्य प्रदेश के दामोह जिले के निवासी रहे होंगे। किन्तु इस अभिलेख में मात्र इतनी सि बात कही गई है कि सुल्तान महमूद ने मीर जुलाच को, जो खर्पर सेना के विरुद्ध लड़ा था, चेदि का सूबेदार नियुक्त किया था। मध्यकालीन ग्रंथों में खर्पर का तात्पर्य मँगोल बताया गया है। इस आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि समुद्रगुप्त कालीन खर्परीक लोगों को उत्तरपश्चिमी प्रदेश का निवासी ही अनुमान किया जाना चाहिए।

9. **काक**– राखलदास बनर्जी ने कार्को की समता कश्मीर के कार्को से की है। सांची में काकनादबोट नामक एक विहार था इसलिए स्मिथ ने कार्कों का संबंध सांची से जोड़ने का प्रयास किया है। भिलसा के निकट ककपुर नामक एक ग्राम है, उसका भी संबंध कार्कों से जोड़ने का प्रयास किया गया है। किन्तु महाभारत में कार्कों का उल्लेख ऋषिक, तंगण, प्रतंगण और विढ़ल लोगों के साथ हुआ है। विद्वानों के अनुसार तो ऋषिक यू–ची (कुषाणों का कबीला) थे। पुराणों के अनुसार तंगण कश्मीर के निकट के प्रदेश के निवासी थे। विढ़ल संभवतः यू–चियों की ही एक शाखा का नाम है। इस प्रकार काक भी उनके पड़ोसी रहे होंगे।

डॉ. मजुमदार के अनुसार जनता द्वारा शासित ये गणराज्य दो भागों में विभक्त थे – एक भाग में मालव, खरपरिक, आर्जुनायन और मद्र तथा दुसरे में अन्य पांच थे, पर यह विभाजिकरण किस आधार पर था यह स्पष्ट नहीं है।

आर्यावर्त के राज्य

इस अभिलेख में आधुनिक उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश एवं बंगाल के शासकों को आर्यावर्त के राजा के रूप में कहा गया है। मनु और उनके भाष्यकार मेधातिथि के अनुसार आर्यावर्त की सीमा पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक तथा हिमालय से विन्ध्य तक थी। इसके पश्चिमी भाग में गणराज्य थे जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है। शेष राजाओं के लिए आर्यावर्त का राजा कहा गया है इसे ही उत्तरापथ भी कहा जाता था।

इस अभिलेख में केवल राजाओं का नाम दिया गया है इनके राज्यों का नहीं जो निम्न हैं –

1. **रुद्रदेव**– रुद्रसेन की समता कुछ विद्वानों ने शकक्षत्रप रुद्रदामन या रुद्रसेन तृतीय से की है जो की डॉ. शिव स्वरुप के अनुसार उचित नहीं है क्योंकि शकों का उल्लेख अभिलेख में अनाग से किया गया है। डॉ.. गोयल के नुसार यह वाकाटक शासक रुद्रसेन प्रथम था किन्तु इसे भी उचित नहीं माना जाता क्योंकि वाकाटक मुख्यतः दक्षिण के शासक थे। डॉ..सहाय के अनुसार यह कौशाम्बी का शासक रहा होगा जो समुद्रगुप्त के काल में उभर कर आया होगा डॉ..नागर एवं चट्टोपाध्याय का भी यही मत है।

2. **मंतिल**– बुलंद शहर एवं उसके समीप के क्षेत्र से मिली मिट्टी की मुहर पर जो मतिल नाम अंकित है उसके आधार पर फ्लीट और ब्राऊस का कहना है की यह बुलंदशहर के आसपास के क्षेत्र का शासक रहा होगा।

3. **नागसेन**– पद्मावती, ग्वालियर–मध्य प्रदेश का आधुनिक पदमपताया जो नरवर से 25 मील उत्तर–पूर्व में है)।

4. **गणपतिनाग**– भंडारकर के अनुसार विदिशा का शासक पर, डॉ.. अल्तेकर ने सिक्कों के आधार पर इसे मथुरा का क्षेत्र बताया है।

5. **अच्युत**– अहिछत्र उत्तर पांचालकी राजधानी–आधुनिक बरेली का रामनगर।

6. **नन्दिन**– गोयल नागराज के अनुसार चुकी इसका उल्लेख अच्युत के साथ हुआ इस कारणसंभव है की यह अच्युत के समीप का ही कोई राजा रहा होगा।

7. **नाग्दत्त**– दिस्कल्कर के अनुसार इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है किन्तु

संभव है की मथुरा के पड़ोसी नाग परिवार से ही सम्बंधित होगा तभी नाग शब्द जुड़ा है।

8. **चन्द्रवर्मा**– बंगाल का शासक, जिसका उल्लेख सुसुनिया लेख में मिलता है।

9. **बलवर्मा**– गोपाल चन्द्र वर्मा का वंश, डॉ..जायसवाल के अनुसार कौमुदी महोत्सव का कल्याण वर्मा। वसु दांडेकर के अनुसार यह पश्चिमी असम का शासक था जो हर्ष के समकालीन भास्कर वर्मा का पूर्वज रहा होगा।

डॉ..रैम्प्सन ने इन नौ नामों को नौ नन्द राजा माना है जो उचित नहीं लगता। चन्द्रवर्मा, बल्वार्मा और मलित नन्द वंशीय नहीं हो सकते।

आटविक राज्य

आटविक का अर्थ वन्य क्षेत्र होता है, अतः ये वन्य प्रदेश के राज्य रहे होंगे। डॉ..रायचौधरी के अनुसार यह गाजीपुर से जबलपुर तक विस्तृत था, किन्तु गाजीपुर तो मगध का भाग था जहाँ का वह स्वयं महाराधिराज था। बुंदेलखंड से प्राप्त दो अभिलेखों में महाराज हस्ती को डहाल और पड़ोस के अठारह आटवी राज्यों का स्वामी कहा गया है, अतः डहाल जबलपुर के समीप का भाग रहा होगा। अतः यह जबलपुर से छोटा नागपुर तक विस्तृत रहा होगा।

दक्षिणापथ के राज्य

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में उसके दक्षिण अभियान का उल्लेख गौरवशाली ढंग से किया गया है। राजशेखर जी ने विन्ध्य के दक्षिण में स्थित नर्मदा नदी के उत्तर का भाग उत्तरापथ तथा दक्षिण के भाग को दक्षिणापथ माना है। दक्षिणापथ में कई छोटे–छोटे राज्य था जिसमें से 12 राजाओं और उनके राज्यों का नाम इस अभिलेख में उल्लेखित है। चुकिइस अभिलेख में पहले राज्य का नाम फिर राजा का नाम बताया गया है अतः विद्वानों को इसे पढने में प्रमुख कठिनाई इसे समास पदों को तोड़ने में आती है और फिर राज्यों को पहचानने में।

समुद्र गुप्त के प्रयाग प्रशस्ति में उल्लेखित दक्षिणापथ के राज्य निम्न है –

1. **कोसल के महेंद्र**– कोसल वर्तमान छत्तीसगढ़ का मध्य भाग था जिसमें रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, गंजाम व उड़ीसा का सम्बलपुर आदि जिलों के क्षेत्र आते थे, यहाँ का शासक महेंद्र था जो संभवतः शरभपुरीय शासक था।

2. **महाकान्तार का व्याघ्रराज** – वर्तमान छत्तीसगढ़ का बस्तर क्षेत्र, महावन, डॉ. मजुमदार के अनुसार उड़ीसा जयपुर नामक वन्य प्रदेश। विद्वान इस व्यघ्रराज की समता बस्तर के नलवंशी शासक व्ययघराज से करते हैं।

3. **कोराल का मन्टराज** – डॉ..सरकार के अनुसार कॉलेर झील के निकट का प्रदेश, फ्लीट ने कैरलक पढ़कर इसकी समता केरल से की है।

4. **पिष्टपुर का महेंद्रगिरी** – गोदावरी जिले का पीठापुर।

5. **कोट्टुर का स्वामिदत्त** – डेब्रू ने इसे गंजाम जिले का कोट्टूर माना है, जबकि आयंगर ने पिथापुरम के समीप का कोट्टूर माना है किन्तु स्मिथ ने इसे कोयंबटूर माना है।

6. **एरंडलपल्ल का दमन** – फ्लीट के अनुसार यह खानदेश का एरण्डोल, रामदास के अनुसार विजगापट्टम के एंडिपल्ली।

7. **कांची का विष्णुगोपीय** – यह पल्लवों की राजधानी कांजीवरम है तथा विष्णुगोपीय संभवतः पल्लववंशी राजा था।

8. **अवमुक्त का नीलराज**– गोदावरी जिले का अवमुक्ति क्षेत्र।

9. वेंगी का हस्तिवर्मा दृ मद्रास के पास वेंगी या पेड–वेग्गी

10. **पालकक का उग्रसेन** – स्मिथ ने मालवार जिले के उत्तर का पायघाट माना है, मान्य है। डैब्रूएल का मत कि यह नल्लोर जिले का पलक्कड़ है।

11. **देवराक्षत्र का कुवेर** – फ्लीट ने महाराष्ट्र, सुथियनथियर ने महाराष्ट्र के खानपुर का महाराठे गांव पर डेब्रूएल ने ठीक पहचाना है विजगापट्टम जिले का एलमंञ्ज्चीकलिंग देश।

12. **कुस्थलपुर का धनञ्जय** – वार्नेट ने उत्तरी आर्कट का कुत्तलूर, स्मिथ ने द्वारका पर, डॉ..गोपाल ने अज्ञात कहा है।

दक्षिणी पश्चिमी भारत की विदेशी जातियाँ

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में भारत में उपस्थित कुछ विदेशी जातियों का उल्लेख मिलता है जिन्हे समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। ये पश्चिमी भारत के पहले के विदेशी शासकों के वंशज थे। अभिलेख की 23 वीं पं.क्ति में वर्णित

'देवपुत्रषहवाहानुवाहिशकमुरुण्डैः'। 'देवपुत्र' उपाधि का प्रयोग कुषाण शासक करते थे। समुद्रगुप्त के काल में किदार कुषाण इनका उत्तराधिकारी था जिसक लिए इसका प्रयोग किया गया होगा। डॉ. आर एस शर्मा के अनुसार कुषाण स्वयं इसका प्रयोग नहीं करते थे बल्कि भारतीय यह उपाधि उनके लिए करते थे। इनके सिक्कों पर 'शा' (षाहि) अंकित है। इसी से देवपुत्रषाहि यहाँ कुषाण जातीय राजा का बोधक है। 'षाहानुषाहि' ईरानी राजाओं की उपाधि थी, जिसका रूप पह्लव सिक्कों पर 'शाओ' तथा 'शाओनानोशाओ', यूनानी सिक्कों पर 'वैसीलिओस' तथा 'बैसीलिओस बैसीलिओन' कुषाण सिक्कों पर 'महरज' तथा 'महरज राजदिरज' मिलता है। इसी का संस्कृत रूप 'राजा', 'राजाधिराज' है। 'शकमुरुण्डै' (शक और मुरुण्ड) में शक एक विदेशी जातियाँ थी जो पश्चिमी भारत में शासन करते थे तथा मुरुण्ड शकों की एक जाति विशेष का नाम था। ये पश्चिमी भारत के शक–क्षत्रप रहे होंगे। इस प्रकार यह सिद्ध होता है समुद्रगुप्त के काल में पश्चिमी भारत में कुषाण, ईरान तथा शक जातियाँ थी। रघुवंश में भी रघु (समुद्रगुप्त) द्वारा कंबोजो, हूणों और पारसिकों के पराजय का उल्लेख भी इसे पुष्ट करता है।

सीमा के बाहर के द्वीप

समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति में भारतवर्ष के अनेकों राज्यों के साथ–साथ भारत भूमि क्षेत्र से बाहर के द्वीपों पर भी विजय का उल्लेख किया गया है। इसमें केवल सिंहल का नाम लिया गया है और 'सर्वद्वीप वासिभिः' से अन्य द्वीपों की ओर संकेत हैं। इससे भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र के विस्तार का ज्ञान होता है। सिंहल का प्रयोग 'सिंघल' का प्रयोग आज के लंका द्वीप के लिए किया है। जबकि सर्वद्वीप से आशय दक्षिण–पूर्व एशिया के अनेक द्वीपों से है। जिससे समुद्रगुप्त के राजनैतिक व भारत के सांस्कृतिक विस्तार का ज्ञान मिलता है। भारत के बाहर अनेकों द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रभाव भविष्य में भी रहा जब चोल शासकों ने मलाया द्वीपों तक सैन्य अभियान किया। यह प्रभाव आज भी इन द्वीपों पर आज भी दिखाई देता है।

समुद्रगुप्त के सत्ता में आने के स्रोत के रूप में

प्रयाग प्रशस्ति के चतुर्थ श्लोक में समुद्रगुप्त के लिए 'आर्यो हित्युपगुह्य–पाह्येवमूर्वीमिति' का प्रयोग किया गया है। इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि इसका पिता चंद्रगुप्त प्रथम योग्यता का पारखी था – तत्वेक्षिणा। उसने अन्य तुल्य कुलज होने पर भी योग्यता के कारण उसे पृथ्वी पालन का कार्य सौंपा – पाह्वेवमूर्वीमिति। इसकी पुष्टि ऋद्धपुर एवं पूना ताम्रपत्रों द्वारा भी होती है –

तत्पादपरिगृहीत (पिता द्वारा चुना हुआ)। वहाँ स्पष्ट है कि इसके और भी भाई इससे बड़े थे जीमें से इसे चुना गया था। इससे उनमें इसके प्रति विरोध होना स्वाभाविक था। तभी वे 'मलानानने द्विक्षितः' अर्थात दुखी होकर राज्याभिषेक को देख रहे थे।

रैप्सन और हेरास के अनुसार राज्याभिषेक के बाद समुद्रगुप्त को गृह युद्ध का सामना करना पड़ा। इसके लिए कांच की मुद्राओं की प्राप्ति के आधार पर विरोधी दल का नेता उसके भाई (?) कांच को ही माना गया है। इस लेख के अनुसार – 'सग्रामेषु स्वभुजबलविजिताः नियमुच्चापकाराः' अर्थात कुछ को संग्राम में पराक्रम से जीता और कुछ स्नेह से – स्नेहयुलैर्म्मनोभिः। पर कुछ लोग काच और समुद्रगुप्त की मुद्राओं में तौल, उपाधि, उत्कीर्ण लेख की दृ ष्टिगत दोनों को एक–एक ही व्यक्ति मानकर कांच को समुद्रगुप्त का दूसरा नाम मानते हैं, जो उसका मौलिक नाम था। विजय के बाद उसने समुद्रतट तक विजय करने के कारण अपने को समुद्रगुप्त नाम से संबोधित किया। पर यह बहुत मान्य नहीं प्रतीत होता।

समुद्रगुप्त की विजय नीतियाँ

अभिलेख में समुद्रगुप्त के विजय अभियान का क्रम दक्षिणापथ से आरंभ होता है। डेब्रूएल ने इस क्रम को ही सही विजय क्रम मिलता है। किन्तु यह तार्किक नहीं लगता, क्योंकि अभिलेख में समुद्रगुप्त के उत्तरापथ अभियान का उल्लेख है। यह संभव नहीं लगता कि यदि उत्तर भारत समुद्रगुप्त के नियंत्रण में नहीं था तो वह अपने विजय अभियान का आरंभ दक्षिण से कैसे आरंभ कर सकता है ? यदि उसके दक्षिणापथ अभियान कारण राजधानी पाटलिपुत्र में उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर कोई भी राज्य राजधानी पर आक्रमण कर सकता था। ऐसे में अपनी राजधानी के समीप के राज्यों को सुरक्षित किये बिना समुद्रगुप्त का दक्षिणापथ अभियान तार्किक नहीं लगता। अतः इन तथ्यों व तर्कों के आधार पर विद्वानों ने समुद्रगुप्त के विजय अभियान का निम्न क्रम दिया है–

1. आर्यावर्त का युद्ध
2. आटविक राज्यों पर विजय,
3. पूर्वी व उत्तरी सीमा के राज्यों पर विजय,
4. पश्चिम के गणराज्यों पर विजय,
5. दक्षिणापथ अभियान।

यह तार्किक भी लगता है की पहले समुद्रगुप्त ने पहले उत्तर, पश्चिमी व पूर्वी राज्यों को सुरक्षित करने के बाद ही उसने दक्षिण का अभियान किया होगा। उसके बाद उसने विदेशी और द्वीपवासियों को विजित किया। विद्वानों के अनुसार दक्षिणापथ अभियान को अभिलेख में पहले करने का कारण संभवतः समुद्रगुप्त के सबसे प्रभावक गुण को सामने रखना रहा होगा। अशोक के बाद किसी शासक ने इतने बड़े स्तर पर दक्षिण का विजय अभियान नहीं किया था। दक्षिणापथ के अभियान को अभिलेख में पहले रखने का कारण संभवतः यही रहा होगा।

समुद्रगुप्त को दक्षिणापथ अभियान के बाद पुनः आर्यावर्त (उत्तरपथ) का युद्ध लड़ना पड़ा था। पिता द्वारा समुद्रगुप्त को अयोध्या का राजा बनाया गया था किन्तु अभिलेख से ज्ञात होता है की दूसरों से यहाँ कब्जा कर लिया था जिस पर अधिकार करने के लिए उसे युद्ध करना पड़ा। संभवतः इन सभी ने मिलकर समुद्रगुप्त के विरुद्ध युद्ध किया था। किन्तु समुद्रगुप्त ने एक ही लड़ाई में (एकेन....उन्मूलय) इनको अपने भुजबल से पराजित किया था (उद्वेलोदित–बाहु–वीर्य्यभसादेकेन येन क्षणादु मूल्य)। कुछ विद्वानों ने आर्यावर्त के दोनों युद्दों में समान नाम होने के कारण एक ही युद्ध होने की संभावना जताई है। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप के अनुसार यह सही नहीं है। समुद्रगुप्त ने प्रथम युद्ध पाटलिपुत्र पर अधिकार के लिए हुआ था तथा समुद्रगुप्त ने इस युद्ध में केवल उन्मूलित किया था किन्तु आर्यावर्त के दूसरे युद्ध में समुद्रगुप्त ने इन्हे पुरी तरह समाप्त कर दिया।

शासन की सुविधा और विजय के स्थायित्व के लिए विभिन्नन क्षेत्रों के विजय में उसने विविध नीतियों का अनुसरण किया था। समुद्रगुप्त जैसे महत्वाकांक्षी व राजनैतिक निपुण शासक के लिए यह नीति अपनाना आवश्यक भी था जो की निम्न है –

1. आर्यावर्त के प्रथम युद्ध में अच्युत, नागसेन तथा कोतकुलज को उन्मूलित किया (उन्मूल्यात)।
2. सीमावर्ती राज्य व पश्चिमी भारत के गणराज्यों को आदेश दिया था कि वे सर्वकरदान, आज्ञाकरण और प्रणाम करने हेतु उपस्थित होकर राजा को संतुष करें (सर्व्व–कर–दानाज्ञाकरण–प्रणामागमन–परितोषित–प्रचंड–शासनस्य)।
3. आर्यावर्त के राजों को उन्मूलित किया था जिससे उसका प्रताप फैला (प्रसभोद्धरणोदृत्त–प्रभाव–महतः)।

4. आटविक प्रदेश के राजाओं को अपना सेवक बना लिया (परचारकीकृत सर्व्वाटविक–राजस्य)।

5. दक्षिणापथ के राजों को ग्रहण करके पुनः उन पर अनुग्रह करके छोड़ दिया जिससे उसके प्रताप की वृद्धि हूई (राजग्रहण–मोक्षानुग्रह–जनित–प्रतापोन्मिश्र महाभगस्य)।

6. दक्षिण पश्चिम की विदेशी जातियों तथा द्वीपवासियों को बाध्य किया कि वे आत्मनिवेदन करें, कन्याओं का उसे दान भेट दें और अपने विषय–भुक्ति पर शासन करते रहने के लिए गरुड़ान्कित आज्ञापत्रों की याचना करें (आत्मनिवेदन–कन्योपायदान–गरून्मदक्ङ्गस्व– विषयभुक्ति शासनायाचन)।

दक्षिणापथ के विजय क्रम में डेब्रूएल का अनुमान कि पहले उड़ीसा के समीपस्थ राज्यों को जीता गया होगा उसके बाद समुद्रगुप्त दक्षिण की ओर बढ़ते हुए कृष्णा नदी तक गया होगा। यहीं पूर्वीघाट के शासकों के सम्मिलित संघ ने उसे परास्त किया होगा किन्तु डॉ. शिव स्वरूप के अनुसार यह काल्पनिक है। इस अभिलेख में समुद्रगुप्त के कहीं भी पराजित होने का उल्लेख नहीं हुआ है इससे लगता है की उसके दक्षिणी–पूर्वी, मध्य–प्रदेश के शासकों को पहले परास्त किया होगा तथा उड़ीसा के राजाओं को जीतते हुए दक्षिण में कांची तक गया होगा।

डॉ..जायसवाल के अनुसार दक्षिणापथ के राजाओं के डॉ. संघों ने अलग–अलग इससे युद्ध किया था। एक संघ था कोराल के भण्टराज के अधीन एरण्डपल्लव दमन और कोट्टूर के स्वामिदत्त तथा दूसरा संघ शेष नौ राजाओं का कांची के विष्णुगोप के अधीन था, पर इसका कोई एतिहासिक आधार नहीं हैं। दण्डेकर का मानना है कि दक्षिणापथ के सभी राजाओं ने कांची के विष्णुगोप के अधीन संघ बनाकर युद्ध किया था। किन्तु विद्वानों के अनुसार यह संभव नहीं है कि इतनी दूर के राजाओं ने कोई संघ बनाया होगा। अतः यह तार्किक लगता है कि समुद्रगुप्त ने अलग–अलग युद्धों में समुद्रगुप्त ने इन्हे परास्त किया होगा।

दक्षिणी भारत से लौटने का मार्ग

समुद्रगुप्त दक्षिण के विजय के लिए कलिंग प्रदेश से चलकर पूर्वीघाट होते हुए गया था, किन्तु दक्षिण विजय के बाद वह किस मार्ग से लौटा इस पर दो मत हैं।

कुछ इतिहासकार उसके इस अभियान को पूर्वी घाट तक ही सीमित मानते हैं, जहाँ से वह उसी मार्ग से लौट आया। कुछ कतिपय वर्णित स्थानों का समीकरण पश्चिमी घाट के स्थानों से करके उसके लौटने की मार्ग पश्चिमी तथा मध्य भारत होकर बताते हैं। ऐसा मानना निम्न स्थलों के पहचान में भेद के कारण हैं –

1. **पलक्क**– स्मिथ ने पलक्क की समता पश्चिमीघाट के मालावार जिले के उत्तर में स्थित पालघाट से की है जो पश्चिमी घाट है।
2. **देवराष्ट्र**– फ्लीट के अनुसार यह महाराष्ट्र था। सुथियंथियस और दीक्षित भी इसे वहीं महाराष्ट्र के खानपुर तालुक के देवराठा ग्राम बताते हैं। महाराष्ट्र पश्चिमी घाट में है।
3. **एरण्डपल्ल** – फ्लीट और दीक्षित के अनुसार महाराष्ट्र के पूर्वी खानदेश का एरन्डोल नामक स्थान था।

यदि उपरोक्त कथन को मान लिया जाए तो यह संकेत मिलता है कि समुद्रगुप्त पूर्वीघाट के विजय के बाद पश्चिमीघाट गया होगा। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप के अनुसार यह मान्य नहीं है क्योंकि पूर्वीघाट के राज्यों के बीच–बीच में पश्चिमी घाट का उल्लेख भौतिक दृष्टि से क्रमिक व व संभव नहीं लगता। अतः ये सभी पूर्वीघाट के ही स्थान होंगे। डैब्रूएल ने ठीक ही पूर्वीघाट में स्थित पल्लक की समता कृष्णा नदी के तटवर्ती निलौर जिले के पलक्कड़ से जो पल्लवों की राजधानी थी, देवराष्ट्र को विजगापट्टम जिले में वेलमञ्जिली प्रदेश से तथा एरण्डपल्ल को उड़ीसा के तटवर्ती एरण्डपल्ली नगर से की है। अतः जब समुद्रगुप्त काभी महाराष्ट्र की ओर गया ही नहीं तो पश्चिमीघाट होकर लौटाने की बात उठती ही नहीं। इसकी पुष्टि में हम यह भी तर्क दे सकते हैं कि –

1. पश्चिमीघाट से होकर लौटते समय समुद्रगुप्त को वाकटकों से युद्ध करना पड़ता, किन्तु अभिलेख में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। वाकटकों के संबंध में स्मिथ ने लिखा है – (The Vakataka Kings occupied suchAn impirant geographical position in which he could be of much serice or disservice to the Northen invader in the dominions of the Khatraps of Gujrat or Saurashtra) जिससे स्पष्ट होता है की वाकाटक आज के महाराष्ट्र के क्षेत्र की एक बहुत बड़ी शक्ति थे। ऐसे में यदि समुद्रगुप्त पश्चिमी घाट होकर लौटता तो बिना उनसे युद्ध किए वह आगे नहीं बढ़ सकता था और यह भी संभव नहीं लगता की इतनी बड़ी

शक्ति पर विजय का उल्लेख प्रशस्तिकार न करे।

2. पूर्वीघाट से पश्चिमीघाट जाने के रास्ते के बीच में आने वाले राज्यों भी पर भी विजय का उल्लेख अभिलेख में नहीं है। अर्थात यदि समुद्रगुप्त पूर्वी घाट से पश्चिमी को जाता तो अवश्य ही उसे इन दोनों के बीच स्थित राज्यों को अवश्य जीतता। किन्तु अभिलेख में इसका भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इन दोनों तर्कों के आधार पर विभिन्नन विद्वानों का मत है की समुद्रगुप्त पूर्वीघाट से होते हुए दक्षिण भारत पर आक्रमण किया था तथा उसी मार्ग से अपनी राजधानी को लौटकर आया।

राज्य विस्तार

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने केवल आर्यावर्त के राजाओं को पूर्णतः उन्मूलित किया था जबकि अन्य शेष के साथ अन्य नीतियों को अपनाया था तथा निश्चित अनुबंधों के साथ शासन करने की छूट दी। समुद्रगुप्त ने यही नीति विदेशी जातियों के साथ भी अपनाई थी। किन्तु उत्तरापथ (आर्यावर्त) के वे क्षेत्र जिनमें प्रयाग से पूरब विहार तक के राज्यों का उल्लेख नहीं हैं, जिससे ऐसा संकेत मिलता है की संभवतः ये क्षेत्र समुद्रगुप्त को पैतृक उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। इसमें आर्यावर्त के युद्ध मे सम्मिलित हुए नौ राजाओं के राज्य भी थे जो पश्चिमोत्तर और मालवा के राज्य, मध प्रदेश एवं पश्चिमी बंगाल के कुछ क्षेत्र भी थे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि समुद्रगुप्त का अधिकार क्षेत्र गंगा और यमुना के क्षेत्र में उसका अधिकार था। इसी कारण गुप्त कालीन मंदिरों की द्वार शाखा पर गंगा यमुना का अंकन होने लगा था। समुद्रगुप्त के सिक्कों पर सिंहवाहिनी दुर्गा को देखकर डॉ..रायचौधरी ने यह माना है कि उसका सम्राज्य हिमालय से विंध्याचल तक था। इसके अतिरिक्त शेष सीमा के राज्य, पश्चिम के गणराज्य, आटविक प्रदेश के शासक, दक्षिणापथ के राजा और दक्षिण–पश्चिम की विदेशी जातियाँ जो आर्यावर्त को चारों दिशाओं से किसी घेर हुआ था सभी समुद्रगुप्त के अंतर्गत सामंत बन चुकि थी जिन पर उसका प्रभाव व नियंत्रण था।

गुप्त वंशावली के स्रोत के रूप में

इस अभिलेख से हमें आरंम्भिक गुप्त शासकों की वंशावली का ज्ञान मिलता है। अभिलेख की 28 वीं पं.क्ति में यह लिखा है – 'देवस्य महाराज–श्रीगुप्त–प्रपौत्रस्य महाराजा–श्री–घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज–

श्री–चन्द्रगुप्त–पुत्रस्य लिच्छवि महदेव्यां कुमार–देव्यां उत्पन्नस्य महाराधिराज–श्री–समुद्रगुप्त'–इससे समुद्रगुप्त के पूर्वराजाओं और उसके वंश का परिचय मिलता है। यह पहला गुप्त अभिलेख है जिसमें गुप्त वंश के शासकों का क्रम उसके समुद्रगुप्त के काल तक प्राप्त होता है। अभिलेख के अनुसार इस वंश का प्रथम शासक समुद्रगुप्त का प्रपितामह श्रीगुप्त था जिसकी उपाधि 'महाराज' थी। जिसके बाद घटोत्कच शासक बना जिसकी उपाधि भी 'महाराज' थी। किन्तु घटोत्कच के बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त गुप्त राजवंश का अगला शासक बना तथा उसकी उपाधि 'महाराजाधिराज' थी। इससे यह संकेत मिलता है कि श्रीगुप्त एवं घटोत्कच संभवतः एक अधीनस्थ सामंत शासक रही होंगे तथा संभवतः इस समय तक इस वंश का नामकरण गुप्त नहीं हुआ होगा। जबकि चन्द्रगुप्त के लिए महाराजाधिराज के लिए प्रयुक्त होना यह संकेत देता है कि संभवतः चन्द्रगुप्त एक स्वतंत्र शासक था।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि श्रीगुप्त व घटोत्कच किसके सामंत थे ? सिलवांलेवी ने विदेशी विवरणों और सुधारकर चट्टोपाध्याय ने वायु व विष्णु पुराणों के प्रमाणों के आधार पर गुप्तों को 'मूरुन्डों' का सामंत माना है। फ्लीट तथा आर डी बनर्जी ने गुप्तों को शकों का सामंत माना है जो मगध पर शासन करते थे। विन्सेंट स्मिथ और काशी प्रसाद जायसवाल ने इन्हे लिच्छवियों का सामंत है, क्योंकि चन्द्रगुप्त की मुद्राओं पर लिछवयः लेख अंकित है तथा समुद्रगुप्त के लिए इस अभिलेख में 'लिछवि दौहित्रः' का प्रयोग किया गया है।

समुद्रगुप्त के चरित्र चित्रण

इस अभिलेख में हमें समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व चरित्र के बारें में विशेष जानकारी प्राप्त होती है जो की निम्न है –

1. धर्म प्राचीर बांधः– अर्थात धर्म में जो बंधा हुआ है।
2. शास्त्र तत्वार्थ भर्तुः– शस्त्रों के तत्वों को समझने वाला।
3. कविता कीर्ति राज्य भुनक्ति– काव्य के क्षेत्र में उसकी कीर्ति व्याप्त थी।
4. शशिकर शुचयः कीर्तयः – चंद्रमा के समान धवल कीर्तिवाला।
5. उसका शरीर युद्ध क्षेत्र में अनेक शस्त्रों के प्रहार से घायल था।
6. विदेशी जातियों तथा द्विपवासियों से उसका संबंध था।
7. कूटनीतिज्ञ– समुद्रगुप्त ने अपने विजय अभियान में विविध राज्यों के साथ भिन्न नीतियों को अपनाया था इसलिए उसे राजनैतिक कूटनीतिज्ञ

बताया गया है।

8. समुद्रगुप्त ने लोक– कल्याण धनद, वरुण और इन्द्र के समान था।
9. समुद्रगुप्त को संगीत में गुरु, तम्बुरु और नारद जैसे आचार्यों को पराजित करने वाला बताया गया है।
10. समुद्रगुप्त के ज्ञान, दान, शौर्य की ख्याति गंगा की धारा की तरह सर्वत्र व्याप्त थी।
11. समुद्रगुप्त को महान विजेता बताया गया है जिसने अपने बाहुबल से अनेकों राज्यों को विजित किया था।

प्रशासनिक इतिहास के स्रोत के रूप में महत्व

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से हमें गुप्त कालीन प्रशासनिक व्यवस्था की भी जानकारी मिलती है जिसमें विभिन्नन पदाधिकारियों का उल्लेख निम्न है –

1. **संधि–विग्रहिक**– यह मित्र एवं सामंत राज्यों के साथ राज्य की देख–रेख करने वाला अधिकारी था। उसका मुख्य काम कदाचित सामतों और मित्र–राजाओं के साथ सद्भाव बनाये रखने के प्रति सजग रहना और विद्रोहोन्मुख राज्यों का दमन करना था। कदाचित वह युद्ध में सम्राट के साथ उपस्थित भी रहता था। कुछ विद्वानों ने आधुनिक युद्ध के ढंग पर उसके युद्ध और शांति मंत्रि होने की कल्पना की है।
2. **कुमारामात्य**– गुप्त अभिलेखों और मुहरों में कुमारामात्य का उल्लेख आता है, संभवतः यह आजकल के आई.सी.एस और आई.ए.एस के समान उच्चवर्गीय अधिकारियों का वर्ग था। इस वर्ग से केन्द्रीय तथा स्थानीय शासन के लिए अधिकारियों का मनोनयन अथवा निर्वाचन होता था। दूसरे शब्दों में गुप्त शासन के शासन–तंत्र का नाम कुमारामात्र था।
3. दंडनायक और महादंडनायक दृ दंड का अर्थ सेना और नये दोनों से लिए जाता है। इस कारण कुछ लोग इन पदों का समबंध सेना और कुछ न्याय से अनुमान करते हैं, इससे अनुमान है की ये उच्च पुलिस अधिकारियों के पद रहे होंगे। किन्तु दंड शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर (टैक्स) कर के अर्थ में भी हुआ है। यदि इस भाव को ग्रहण करें तो इसका तात्पर्य कर से संबंधित अधिकारी से लिया जा सकता है।

अभिलेख के उत्कीर्णनन के काल की समस्या

इस अभिलेख के अध्ययन में विद्वानों को जो समस्या है वह है इसके लेखन के काल की। यह अभिलेख समुद्रगुप्त के शासनकाल के किस समय में की गई थी यह निश्चित करना अभी भी कठिन है। डॉ. फ्लीट ने जब पहली बार इस लेख का सम्पादन किया तब इसे समुद्रगुप्त के मृत्योपर्यंत लिखा जाना माना गया था। किन्तु विद्वानों ने इस समस्या के अध्ययन के लिए निम्न बिन्दु निर्देशित किए हैं –

1. अभिलेख की 30 वीं पं.क्ति में 'आचक्षाणः वभूव' पढ़ा गया। इस आधार पर इस अभिलेख को उसकी मृत्यु के बाद का माना गया।
2. इसी पं.क्ति में 'त्रिदशपति भवनगमन' का अर्थ समुद्रगुप्त को 'इंद्रलोक गमन करने वाला' लिया गया है।

किन्तु इन तर्कों के विरुद्ध निम्न तर्क प्रस्तुत किए गए हैं –

1. 30 वीं पनकी का शुद्ध पाठ 'आचरण इव भुवो' है जिससे समुद्रगुप्त की मृत्यु का अर्थ नहीं निकलता।
2. 'त्रिदशपति भवनगमन' अभिप्राय समुद्रगुप्त की कीर्ति का स्वर्ग तक पँहुचना है न कि उसके शरीर का।
3. यहाँ भूतकाल की क्रिया का अभाव है। इससे महरौली स्तम्भ लेख की तरह भूतकालिक क्रिया का उल्लेख से विदित नहीं है जिससे समुद्रगुप्त के मृत्यु पर्यंत उसे माना जाय।
4. यदि इस अभिलेख को समुद्रगुप्त के बाद के किसी शासक द्वारा उत्कीर्ण करवाया गया होता तो इसमें उसका नाम भी अवश्य अंकित होता। कर्मदंडा शिवलिंग अभिलेख से विदित है की उत्कीर्ण कराने वाला कुमारगुप्त के पिता के समय का मंत्रि था पर यहाँ हरिषेण तो संधिविग्रह और महादंडनायक के पद पर था जब समुद्रगुप्त के शासक था।
5. इस लेख में हरिषेण का कथन 'एतमेव भट्टारकपादानां' से स्पष्ट है इसी भट्टारक के चरण कमलों में। अतः यह समुद्रगुप्त के जीवन काल को उजागर करता है।
6. समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार प्रकार के सिक्कों तथा एरण अभिलेख से उसके द्वारा किए गए असवमेध यज्ञ का ज्ञान मिलता है जिसका उल्लेख इस अभिलेख में नहीं मिलता। जिसका अर्थ है की संभवतः इस लेख के लिखे जाने के समय तक समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ नहीं किया था।
7. इसमें समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों की उपाधियां जिनका प्रयोग उन्होंने

किया है जैसे– 'चतुरुदधिसलिलास्वादितयशसा' आदि यहीं है।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर यह माना जा सकता है की यह अभिलेख समुद्रगुप्त के जीवन काल में ही लिखा गया होगा जब वह समस्त आर्यावर्त और दक्षिणापथ को जीतकर अपनी राजधानी में शांतिपूर्वक शासन कर रहा था तथा, संगीत, कला, दान आदि जन कल्याण व राज्य के विकास के कार्य कर रहा था।

15.7 सारांश

समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति स्तंभ लेख गुप्त शासकों में से सबसे प्रतापी शासक गुप्त वंश के चौथे व दूसरे स्वतंत्र सम्राट समुद्रगुप्त से संबंधित है। यह अभिलेख अशोक स्तंभ पर उत्कीर्ण है। विद्वानों के अनुसार यह स्तंभ पहले कौशांबी में था जिसे जहाँगीर के काल में प्रयागराज (इलाहाबाद) किले में लाया गया। यह अभिलेख प्रशस्ति की शैली में लिखा गया है जिसकी रचना समुद्रगुप्त के संधिविग्रहिक हरिषेण ने की थी। इस अभिलेख में समुद्रगुप्त के विजय अभियानों का वर्णन है जिसमें उसके द्वारा लड़े गए आर्यावर्त के दो युद्ध और दक्षिणपथ के अभियान का वर्णन है। इस अभिलेख के अनुसार समुद्रगुप्त का सम्राज्य अत्यंत विस्तृत था जिसमें अनेक समतटीय प्रदेश जैसे बंगाल, डवाक, नेपाल असम आदि,पश्चिम भारत के राज्य हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, मालव, आदि, आर्यावर्त के राज्य जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, बंगाल आदि, अटविक प्रदेश, दक्षिण भारत के क्षेत्र जिसमें छत्तीसगढ़, कलिंग, कांजीवरम, एरण्डपल्ल, पालक्क, वेंगी, देवराष्ट्र आदि तक का क्षेत्र था। उसने शक मुरुण्ड आदि विदेशी जातियों पर भी विजय प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त समुद्रगुप्त को सिंहल द्वीप सहित अनेक द्वीपों पर शासन करने वाला बताया गया है द्यइन सभी क्षेत्रों को समुद्रगुप्त ने अलग अलग नीतियों के तहत विजिट किया था इस अभिलेख में समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व का भी वर्णन है जिसमें उसे महान योद्धा, संगीतज्ञ, कवि, दिन–आनाथों के कष्ट निवारण करने वाला बताया गया है इस अभिलेख में समुद्रगुप्त के वंश का भी वर्णन मिलता है जिसमें उसे श्रीगुप्त का प्रपौत्र, घटोत्कच का पौत्र, व चन्द्रगुप्त का पुत्र बताया गया है इस में समुद्रगुप्त को परमभट्टारक बताया गया है जिससे उसके भागवत धर्म के अनुयायी होने का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं, कि समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति प्राचीन भारतीय के सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है जिससे हमें उत्तर कुषाण कालीन भारत के इतिहास की अनेकों महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इससे हमें यह ज्ञात होता है की मौर्य शासक अशोक के बाद समुद्रगुप्त ने ही सर्वाधिक क्षेत्र को विजित करने के उद्देश्य से सबसे बाद सैन्य अभियान

किया। यह कहा जा सकता है की अशोक के बाद यह प्रथम बार था जब भारत वर्ष का एक बाद भूभाग किसी एक राजवंश के अधीन था। समुद्रगुप्त द्वारा विजित क्षेत्र को उसके उत्तराधिकारियों ने भी लंबे समय तक अक्षुण रखा। यह विशाल सम्राज्य ही भविष्य में भारत के आर्थिक, धार्मिक, कला व अन्य क्षेत्रों में समृधि के शिखर पर पँहुचने का आधार बना क्योंकि बिना बड़े भूभाग से ही राज्य की अर्थव्यवस्था, स्थापत्य, कला आदि के विकसित होने के लिए स्रोत प्रदान करता है। यह कहना अनुचित नहीं होगा की गुप्त काल को भारत के स्वर्ण काल कहलाने के पीछे संभवतः समुद्रगुप्त का यह विजय अभियान प्रमुख भूमिका प्रदान करता है। आगे चलकर भारत में कला, साहित्य, स्थापत्य का जो विकास हुआ उसका प्रभाव सम्पूर्ण भारत में देखने को मिलता है चाहे वो कालिदास, वराहमिहिर के ग्रंथ हो या आरंम्भिक मंदिरों के स्थापत्व। गुप्त काल में बड़ी मात्रा में स्वर्ण सिक्कों को चलना गुप्तसाम्राज्य की समृद्ध आर्थिक स्थिति का बोध कराता है। अतः इस अभिलेख को प्राचीन भारत के सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक माना जा सकता है।

15.8 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ. शिव स्वरुप सहाय
2. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख भाग 2, डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त
3. Select Inscriptions Bearining India-n HistoryAnd Civilization – DC Sarkar

15.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेख किससे संबंधित है ?
2. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।
3. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेख की रचना किसने की थी ?
4. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेखके राजनैतिक महत्व पर लेख लिखिए।
5. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेख के धार्मिक महत्व पर लेख लिखिए।
6. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्तिलेख के आधार पर समुद्रगुप्त के राजनैतिक विस्तार का वर्णन कीजिए।
7. प्रयाग प्रशस्तिलेख के आधार पर समुद्रगुप्त के व्यक्तिगत चरित्र का वर्णन कीजिए।

8. समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति का भारतीय इतिहास के अध्ययन में क्या महत्व है ?

9. समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति के आधार पर भारत के तात्कालिक राजनैतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

10. समुद्रगुप्त के प्रयागप्रशस्ति के आधार पर गुप्तवंश के इतिहास का वर्णन कीजिए।

छायाप्रति

मौर्य कालीन ब्राह्मी का स्वरूप

अ 𑀅	आ 𑀆	इ 𑀇	ई 𑀈	उ 𑀉	ऊ 𑀊
ए 𑀏	ऐ 𑀐	ओ 𑀑	औ 𑀒		

क 𑀓	ख 𑀔	ग 𑀕	घ 𑀖	ङ 𑀗
च 𑀘	छ 𑀙	ज 𑀚	झ 𑀛	ञ 𑀜
ट 𑀝	ठ 𑀞	ड 𑀟	ढ 𑀠	ण 𑀡
त 𑀢	थ 𑀣	द 𑀤	ध 𑀥	न 𑀦
प 𑀧	फ 𑀨	ब 𑀩	भ 𑀪	म 𑀫
य 𑀬	र 𑀭	ल 𑀮	व 𑀯	
श 𑀰	ष 𑀱	स 𑀲	ह 𑀳	

	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
अ	𑀓	𑀔	𑀕	𑀖	𑀗	𑀘	𑀙	𑀚	𑀛	𑀜	𑀝	𑀞	𑀟	𑀠	𑀡
आ	𑀓𑀸	𑀔𑀸	𑀕𑀸	𑀖𑀸	𑀗𑀸	𑀘𑀸	𑀙𑀸	𑀚𑀸	𑀛𑀸	𑀜𑀸	𑀝𑀸	𑀞𑀸	𑀟𑀸	𑀠𑀸	𑀡𑀸
इ	𑀓𑀺	𑀔𑀺	𑀕𑀺	𑀖𑀺	𑀗𑀺	𑀘𑀺	𑀙𑀺	𑀚𑀺	𑀛𑀺	𑀜𑀺	𑀝𑀺	𑀞𑀺	𑀟𑀺	𑀠𑀺	𑀡𑀺
ई	𑀓𑀻	𑀔𑀻	𑀕𑀻	𑀖𑀻	𑀗𑀻	𑀘𑀻	𑀙𑀻	𑀚𑀻	𑀛𑀻	𑀜𑀻	𑀝𑀻	𑀞𑀻	𑀟𑀻	𑀠𑀻	𑀡𑀻
उ	𑀓𑀼	𑀔𑀼	𑀕𑀼	𑀖𑀼	𑀗𑀼	𑀘𑀼	𑀙𑀼	𑀚𑀼	𑀛𑀼	𑀜𑀼	𑀝𑀼	𑀞𑀼	𑀟𑀼	𑀠𑀼	𑀡𑀼
ऊ	𑀓𑀽	𑀔𑀽	𑀕𑀽	𑀖𑀽	𑀗𑀽	𑀘𑀽	𑀙𑀽	𑀚𑀽	𑀛𑀽	𑀜𑀽	𑀝𑀽	𑀞𑀽	𑀟𑀽	𑀠𑀽	𑀡𑀽
ए	𑀓𑁂	𑀔𑁂	𑀕𑁂	𑀖𑁂	𑀗𑁂	𑀘𑁂	𑀙𑁂	𑀚𑁂	𑀛𑁂	𑀜𑁂	𑀝𑁂	𑀞𑁂	𑀟𑁂	𑀠𑁂	𑀡𑁂
ओ	𑀓𑁄	𑀔𑁄	𑀕𑁄	𑀖𑁄	𑀗𑁄	𑀘𑁄	𑀙𑁄	𑀚𑁄	𑀛𑁄	𑀜𑁄	𑀝𑁄	𑀞𑁄	𑀟𑁄	𑀠𑁄	𑀡𑁄

	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
अ																		
आ																		
इ																		
ई																		
उ																		
ऊ																		
ए																		
ओ																		

कुषाणकालीन ब्राह्मी

अ आ इ उ

ए ओ औ

क ख ग घ ङ

च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

य र ल व

श ष स ह

गुप्त ब्राह्मी

ब्राह्मी के विकासक्रम

	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	न	त	थ	द	ध	न
अशोक	+	ϒ	∧	Ь	⊏	ɗ	ɓ	E	⊬	ϧ	⊂	○	ɾ	ɓ	I	ʌ	⊙	ɔ	D	⊥
गिरनार	⊀	ϒ	∩	Ш	⊏	⊿	⋔	E	⊬	ϧ	⊂	○	⊁	ɓ	I	ϧ	⊙	ɔ	D	⊥
कुषाण	⊀	ϑ	∩	ш	⊏	⊿	⋔	E	⊬	ϧ	⊂	○	⊦	ϭ	⊥	⋔	⊙	ɛ	ɑ	⊥
गुजरात	⊀	ϑ	⊓	ш	⊏	⊿	⋔	E	⊬	ϧ	⊂	○	⊦	ϭ	⊼	⋔	⊙	⊂	○	⋔
गुप्ता	⊀	ϑ	∩	ш	⊏	⊿	⋔	E	⊬	ϧ	⊂	○	⊦	ϭ	⊼	∩	⊙	⊂	○	⋔

	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
अशोक	Ь	Ь	◻	⊬	⊎	⊥	⊦	⊿	ϧ	⊀	Ь	⋔	Ь
गिरनार	Ь	Ь	◻	⋔	⊠	⊍	⊦	⊿	⊼	⊀	Ь	⊻	Ь
कुषाण	Ш	Ь	◻	⋔	⊠	⊍	⊦	⊿	⊼	⊓	ш	⊻	Ь
गुजरात	Ш	Ь	◻	⋔	⊠	⊍	⊦	⊿	⊼	⊓	ш	⊻	⊂
गुप्ता	Ш	Ь	◻	⋔	⊻	⊍	⊦	⊿	⊼	⊓	ш	⊻	Ь

MODIFICATIONS OF THE SANSKRIT ALPHABET FROM 543 B.C. TO 1200 A.D.

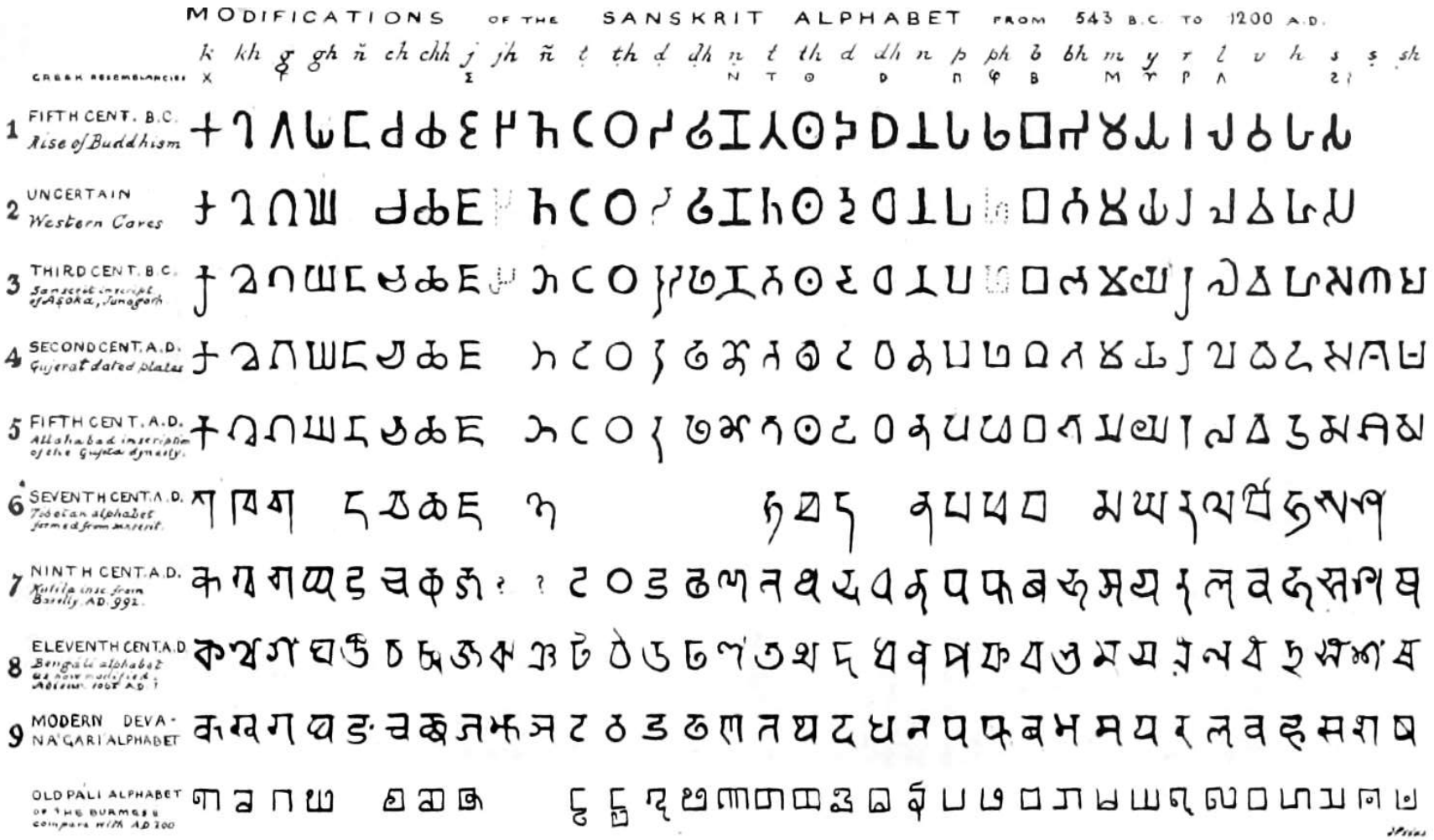

खरोष्ठी

a	go	tra	psa	yu	ṣa
aṃ	gha	tha	pha	ye	ṣi
ā medial	cha	thi	phi	ra	spa
i	chha	the	phthi	raṃ	ṣva
iṃ	ja	da	phre	ri	sha
u	jha	di	ba	ru	shka
e	ju	du	bi	rkhe	sa
o	jha	de	bu	rhe	saṃ
ka	jho	dra	bra	rna	si
ki	ṭa	dha	bha	rma	su
ku	ṭha	dhra	bhe	rva	sra
ke	ḍa	na	bhra	la	skra
kra	ḍi	ni	ma	li	sya
kri	ṇa	no	maṃ	lu	ssa
kre	ṇi	pa	mi	lo	ha
kha	ta	pi	me	va	haṃ
khu	ti	pu	mo	vi	hi
ga	tu	pe	ya	vu	he
gaṃ	te	pra	yaṃ	ve	ho
gu	to	pri	yi	vra	ṃ

KHAROṢṬHĪ LETTERS ON GRAECO-INDIAN COINS

अशोक का लघु स्तम्भलेख (रुम्मनदेई)

RUMMINDEI PILLAR-INSCRIPTION

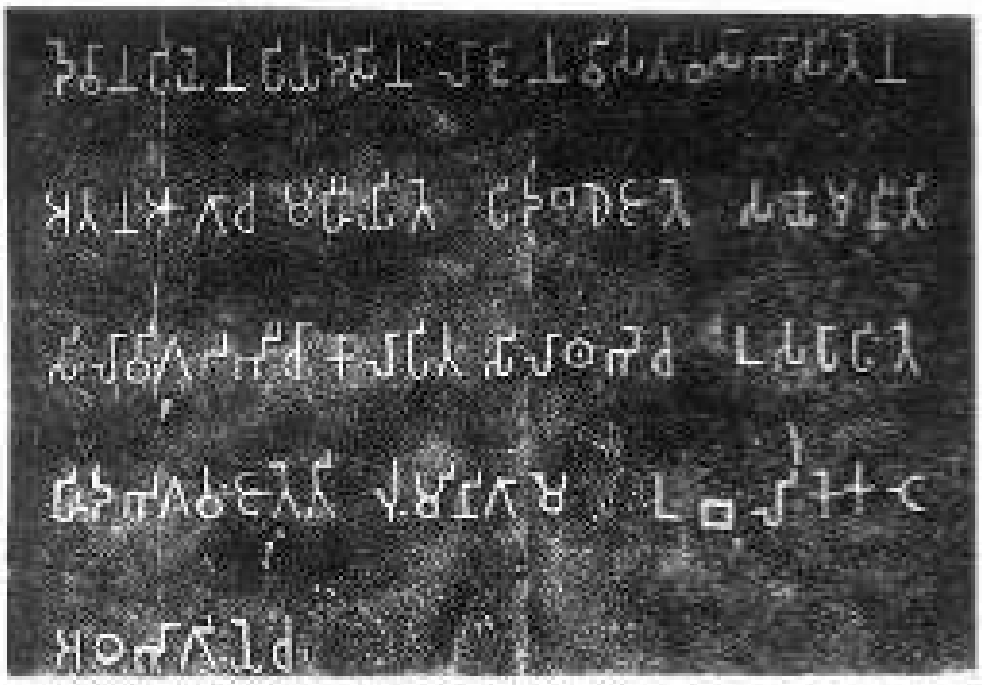

पिपरहवा बौद्धपत्र अभिलेख

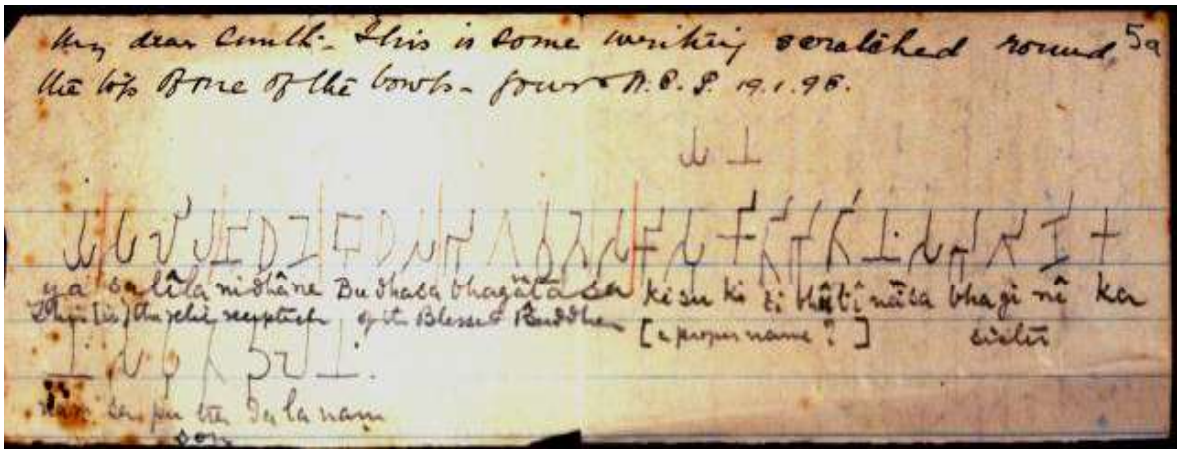

सौहगौरा अभिलेख

हेलियोडोरस गरुड़ स्तम्भ अभिलेख

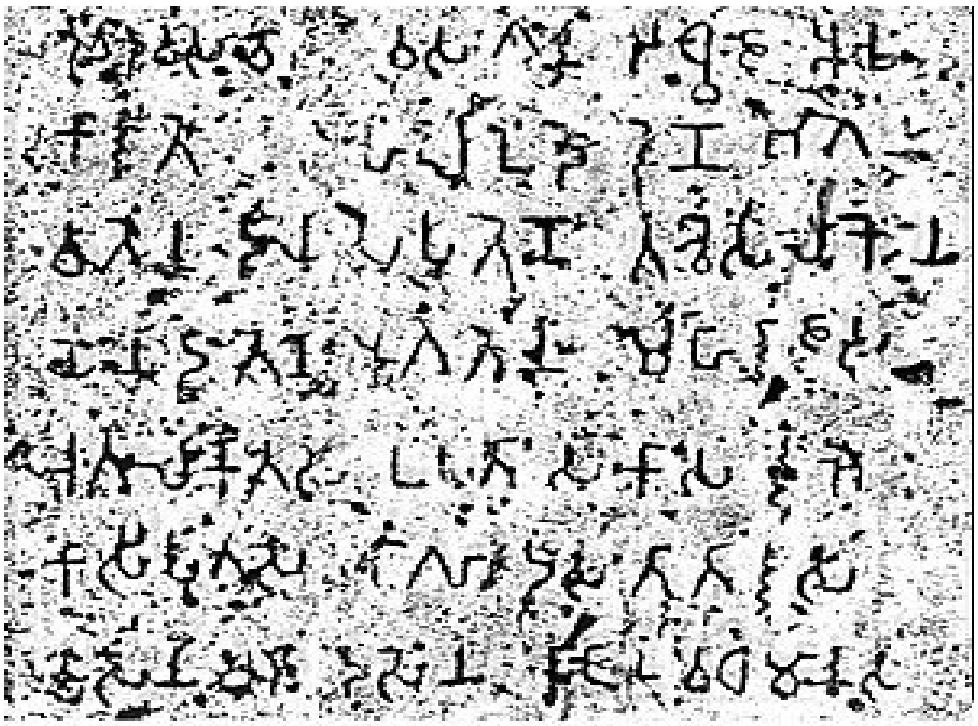

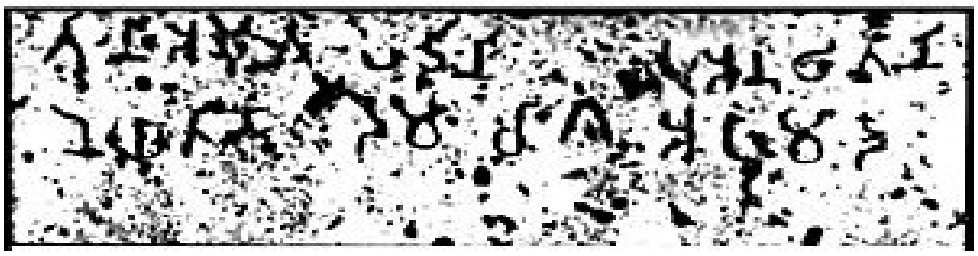

खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख

समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भलेख (प्रयाग प्रशस्ति)

छायाचित्र स्रोत

1. अशोक लघु स्तम्भलेख (रुम्मनदेई) – Inscriptions ofAsoka. New Edition by E. Hultzsch, p164
2. पिपरहवा बौद्धपात्र अभिलेख – Handwritten note by discoverer W.C. Péppe to VincentArthur SmithAbout the inscription, 1898m Wikipedia- The PiprāhwāStūpa, Containing Relics of Buddha, Willia-m Claxton Peppé, The Journal of the RoyalAsia-tic Society of Great BritainAnd Ireland, (Jul., 1898), pp. 573-588 (18 pages)
3. सौहगौरा अभिलेख – Proceedings of theAsia-tic Society of Bengal] 1885] p84
4. हेलियोडोरस स्तम्भ लेख – India-n Epigraphy:A Guide to the Study of Inscriptions in Sanskrit, Prakrit,And the other Indo-Aryan Languages, p. 265–267
5. खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख– Hathigumpha inscription of King KhāravelaAt Udayagiri HillsAs first drawn in "Corpus InscriptionumIndicarum, VolumeI: Inscriptions ofAsoka byAlexander Cunningham", 1827
6. समुद्रगुप्त का इलाहबाद स्तम्भ लेख (प्रयाग प्रशस्ति) – Inscription by Gupta king Samudragupta Photograph by Fleet, John Faithfull (1847 – 21 February 1917), wikipedia-

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013
www.uprtou.ac.in
टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

भाषांतर का प्रकाशन 1905ई. में इंडियन एंटिक्वेरी तथा मैसूर रिव्यू (1906–09ई.) में हुआ कश्मीर के इतिहास पर रचित कल्हण की राजतरंगिणी, बाणभट्ट का हर्षचरित आदि अनेक प्राचीन ब्राह्मण, बौद्ध व जैन पाण्डुलिपियों का अध्ययन व उनका भाषांतर भी इसी प्रकारकिया गया तथा इतिहास के प्रमुख स्रोतों के रूप में उनका उपयोग किया जाता है। यह सब बिना भाषा व लिपि के ज्ञान के नहीं हो सकता क्योंकि प्राचीन पांडुलिपियों व साहित्यों के भाषांतर के लिए सबसे पहले उनकी लिपि को पढ़ना आना आवश्यक है।

1.5 सारांश

लेखन कला मानव सभ्यता के विकासक्रम में सबसे महत्वपूर्ण आविष्कारों में से एक है, जिसके बाद मानव ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में अपना इतिहास संकलित किया। सम्पूर्ण विश्व में लेखन की प्राचीनता अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग काल तक जाती है। प्राचीन मानवों व सभ्यताओं के अध्ययन के लिए, उनके इतिहास का अध्ययन करने के साधन के रूप में जिन दो प्रमुख स्रोतों का अध्ययन किया जाता है उसमें एक है पुरातत्व (पुरावशेष, मुद्राएं, जीवाश्म आदि) व दूसरा है लिखित स्रोत (अभिलखिय व साहित्यिक स्रोत)। लिखित स्रोतों के अध्ययन के लिए लेखन व पुरालिपि विद्या का ज्ञान होना आवश्यक है। लेखनकला व उसके विकास का अध्ययन करना ही पुरालिपि शास्त्र कहलाता है। अतः हम यह कह सकते हैं की वह विद्या जिसमें प्राचीन भारत के अभिलेखों की लिपियों व अभिलेख लिखने की प्रक्रिया, उनके विषय व उनके उद्देश्यों तथा उनके माध्यम से इतिहास का अध्ययन करना पुरालिपि व पुरालेख विद्या कहलाती है।

1.6 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन – डॉ.शिवस्वरुप सहाय,
2. भारतीय पुरालिपि – डॉ. राजबलीपाण्डेय

1.7 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. पुरालिपिशास्त्र से क्या तात्पर्य है ?
2. पुराभिलेख विद्या क्या है ?
3. पुरालिपि विद्या का क्या महत्व है ?
4. प्राचीन लिपियों को पढ़ने की विद्या क्या कहलाती है ?

इकाई 2 : प्राचीन भारत में लेखन की प्राचीनता एवं उत्पत्ति

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 लेखन की प्राचीनता

2.4 लेखन कला का उद्भव

2.4.1 विदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

2.4.2 भारतीय उत्पत्ति का सिद्धांत

6.2.1 परंपरिक एवं अनुश्रौतिक प्रमाण

6.2.2 विदेशी अनुश्रुतियों के प्रमाण

2.5 साहित्यिक स्रोत

2.6 पुरातात्विक स्रोत

2.7 सारांश

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

लेखन कला मानव के विकास क्रम के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। लेखन के माध्यम से ही मानव ने अपने ज्ञान–विज्ञान व तकनीक की परम्परा को विकसित तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया है। अतः इस कला के विकास का अध्ययन करना आवश्यक है ताकि हम अपने इतिहास का अध्ययन कर सके।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य विश्व व विशेषकर भारत में लेखन कला के इतिहास व उसकी उद्भव का अध्ययन करना है। जिसके लिए विदेशी अनुश्रुतियों, साहित्यों के साथ साथ भारतीय अनुश्रुतियों, साहित्यों व पुरातात्विक

स्रोतों का अध्ययन करेंगे।

2.3 भारत में लेखन कला की प्राचीनता

वैश्विक दृष्टि से लेखन के प्रारम्भिक साक्ष्य मेसोपोटामिया व मिस्र की सभ्यताओं में मिलते हैं किन्तु भारतीय उपमहाद्वीप की दृष्टि से लेखन कला के सबसे प्राचीन साक्ष्य सिंधु–सरस्वती (हड़प्पा) सभ्यता से प्राप्त होती है जिसकी तिथि 3000 ई.पू. मानी जाती है। सिंधु–सरस्वती सभ्यता से प्राप्त मिट्टी के मुहरों में चित्रात्मक शैली में विभिन्नन प्रतीक उकेरे गए हैं जिन्हे विद्वानों ने अक्षर स्वीकार किया है। किन्तु दुर्भाग्य से सैन्धव लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। पं.. प्राणनाथ विद्यालंकार जैसे विद्वानों ने इसे पढ़ने का प्रयास किया किन्तु कोई निष्कर्ष नहीं मिला।

भारत में लेखन कला का इतिहास अस्थिर है तथा विद्वानों में परस्पर विरोधी मत हैं। प्राचीन भारत में लेखन कला को दैवीय कृति की तरह माना जाता था इसी कारण इसे ब्रह्मा द्वारा निर्मित बताई जाती है। बादामी से प्राप्त 580 ई. के एक प्रस्तर खंड में ब्रह्म की आकृति बनी हुई है जिनके हाथों में तड़पत्रों का समूह है जो दर्शाता है की प्राचीन काल में लेखन को ब्रह्म से जोड़ा जाता था।

भारत में लेखन कला की उत्पत्ति के लिए मुख्यतः दो विचारधराएं हैं –

विदेशी विचारधारा

20 वीं सदी के आरंभ तक लगभग सभी पश्चिमी विद्वान भारत में लेखन के इतिहास को ई.पू. 6ठी सदी से प्राचीन नहीं मानते थे, इनमें बर्नेल, ब्यूलर, डेविड डीरिन्जर व मैक्समूलर आदि विद्वान आते है।

मैक्स म्यूलर के अनुसार– क्योंकि पाणिनी (ई.पू. चौथी सदी) द्वारा संस्कृत व्याकरण अष्टाध्यायी में एक भी सूत्र लेखन कला की ओर संकेत नहीं करता।

बर्नेल के अनुसार– ब्राह्मी सबसे प्राचीन लिपि है और इसका उद्भव ई. पू. चौथी–पाँचवीं सदी के लगभग फिनिशियन लिपि से हुआ है।

डॉ.. डेविड डीरिन्जर के अनुसार– ब्राह्मी भारत की आदि लिपि है तथा इसकी तिथि किसी उपलब्ध तर्क के आधार पर पाँचवी सदी ई.पू. से पहले निर्धारित नहीं की जा सकती। डीरिन्जर के अनुसार सुदूर अतीत में लेखन के प्रति जनरुची थी जिसकी पुष्टि के लिए डीरिन्जर ने पाणिनीय शिक्षा के

निम्नलिखित श्लोक को आधार बनाया –

गीति शीघ्री शिरः कंपी तथा लिखित–पाठकः।

अनर्थज्ञोअल्पकण्ठश्च षडेते पथकधमः।।32।।

इस श्लोक में पाठकों के दोषों का विवेचन किया गया है पर कहीं लेखक का वर्णन यही है। अतः लेखन कला का विकास बाद हुआ, पहले लोगों ने पढ़ना सीखा फिर लिखना।

डॉ. ब्यूलर के अनुसार–चीन के विश्वकोश 'फा–वान–शू–लिन' के अनुसार ब्रह्म ने एक ऐसी लिपि का अन्वेषण किया था जो बाएं से दायें लिखी जाती थी। 'ललित विस्तर' में एक ऐसी लिपि का उल्लेख है जिसे ब्राह्मी या बम्मी कहा गया है। इस ग्रंथ के अनुसार बुद्ध के समय 64 कलाओं का विकास हो चुका था। पुनः पाणिनी के अष्टाध्यायी से ज्ञात होता है की पाणिनी से पूर्व व्याकरण का अध्ययन 'यावनीय' (ग्रीक या यवन भाषा) भाषा में होता था।

क्योंकि पहले की अन्वेषणों के परिणामस्वरूप ब्राह्मी का विस्तार 500 ई.पू. या इससे पहले पूर्ण हो चुका था अतः ई.पू. 800 सेमेटिक वर्णों के भारत में प्रवेश की वास्तविक तिथि मानी जा सकती है। यह निरूपण समयिक है जो भारतवर्ष या सेमेटिक देशों में नवीन शिलालेखों के प्रकाश में आने पर परिवर्तित किया जा सकता है। यदि इस प्रकार का परिवर्तन आवश्यक हो तो नूतन अनुसंधानों के परिणाम मुझे इस विश्वास के लिए प्रेरित करते हैं की लेखन कला का प्रवेश काल **पुरवेत्तार** प्रामाणिक होगा और उसे ई.पू. 1000 या इससे भी पूर्व रखना होगा।

उपरोक्त विचार 19 वीं सदी या 20वीं सदी के आरंभ में रखे गए थे किन्तु 20वीं सदी के तीसरे दशक में प्रकाश में आई सिंधु–सरस्वती सभ्यता से प्राप्त लेखन के प्रमाणों के बाद भारत में लेखन कला की प्राचीनता और पीछे चली गई।

आलोचना

विदेशी विद्वानों के इन मतों का भारतीय विचारकों ने एक स्वर में खंडन किया है जिसमें डॉ. गौरीशंकर ओझा, डॉ. राजबली पांडे व डॉ. ए. सी. दास आदि प्रमुख हैं।

डीरिन्जर द्वारा पाणिनीय शिक्षा के श्लोक के आधार पर प्रतिपादित मत का खंडन करते हुए डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने तर्क दिया है कि जहाँ

पाठकः शब्द पाठकों के स्थिति का अनुमान करते हैं, वहीं **लिखितः** शब्द इस बात का। द्योतक है कि पाठक लिखे हुआ पढ़ता था अथवा बोल–बोल कर लिखता था। यह कथन सटीक प्रतीत होता है क्योंकि श्लोक में गीती, शीघ्री, शिरः कंपी, अनर्थक एवं अल्प कंठ आदि पाठकों के दोष बताए गए हैं। क्योंकि पाठक का अभिप्राय पढ़ने वाले से है, तो बिना लेखन के प्रसंग के पाठन का प्रसंग आना अस्वाभाविक है अतः निश्चित रूप से उस समय लेखन का विकास हो चुका था।

इसी प्रकार डॉ. दास ने बर्नेल के फोनएशियन लिपियों से भारतीय लिपियों के विकास के मत का खंडन करते हुए कहा है, कि लेखन के कौशल का विकास वेदों के समय से हो चुका था। इस बात का समर्थन पं.. गौरीशंकर ओझा ने भी किया है। उनके अनुसार वेदों को श्रुति इसलिए नहीं कहा जाता कि उन्हे सुनकर कंठस्थ किया जाता था, बल्कि इसलिए कहा जाता था की पाठक को अपनी मेधा से इसे ग्रहण के लिए पड़ने इस प्रकार बनानी चाहिए की उन्हे सुनकर ही याद कर लें ताकि आवश्यकता पड़ने पर प्रमाणों का समुचित प्रयोग कर सकें क्योंकि भारतीय विचारधारा में कंठस्थ की हुई विद्या का महत्व रहा है।

फोनएशियन उत्पत्ति पर यह मत दिया गया की फोनएशियन व्यापारी थे तथा व्यापारिक उपयोग के लिए बेबीलोनीयन से लिखने की कला सीखकर उसमें कुछ बदलाव किए यह इनकी स्वयं की भाषा नहीं थी। जबकि बेबीलोनीयन से पहले ही सिंधु घाटी में लेखन कला का प्रचलन हमें देखने को मिलता है। अतः भारतीय विचारकों के अनुसार भारत में लेखन कला के विदेशी उत्पत्ति का मत निराधार सिद्ध होता है।

भारतीय विवरण

उपर्युक्त विरोधाभासी तथ्यों के समक्ष वास्तविक ज्ञान के लिए हम निम्न लिखित स्रोतों को आधार मानकर यदि अध्ययन करें तो तथ्यों का स्पष्टीकरण हो सकता है–

1. पारंपरिक एवं अनुश्रौतिक प्रमाण।
2. साहित्यिक स्रोत।
3. पुरातात्विक स्रोत।

पारंपरिक एवं अनुश्रौतिक प्रमाण

भारतीय लिपि के अध्ययन के लिए केवल भारतीय स्रोतों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता इसका कारण है, कि अनेकों विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा विनष्ट कर दिए गए तथा कुछ का विनाश अन्यमनस्क पीढ़ियों द्वारा कर दिया गया। इनके कुछ अंश आज बहु पड़ोसी व देशों के साहित्यों से प्राप्त होता है। अतः हमें निम्नलिखित सभ्यताओं के स्रोतों का भी अध्ययन करना होगा –

1. भारतीय,
2. चीनी,
3. अरबी,
4. यूनानी तथा
5. लंका की परम्परा व अनुश्रुतियाँ।

भारतीय परम्परा व अनुश्रुतियाँ –

अधिकांश विदेशी विद्वानों के विरुद्ध भारतीय अनुश्रुतियाँ भारत में लेखन कला को अत्यंत प्राचीन सिद्ध करतीं हैं। उदाहरण के लिए –

नारद–स्मृति (5 वीं सदी) के अनुसार –

ना करिष्यति ब्रह्म लिखितं चक्षुरुत्तमम्।

तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यत् शुभांगतिः।।

अर्थात –"यदि ब्रह्म उत्तम नेत्रतुल्य लेखन–कला की सृष्टि न करते तो इस लोक की यह शुभ गति न होती।

वृहस्पति–स्मृति के अनुसार –

षाण्मासीके तु समये भ्रांतिः सञ्जायते यतः।

धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढ़ाण्यतः पुरा।।

– आह्निक–तत्त्व से उद्धृत।

पहले स्मृति में भी इसी प्रकार लिखा है की पहले सृष्टिकर्ता ने अक्षरों को पत्तों पर अंकित का विधान किया। चूँकि 6 मास के अनंतर किसी घटना के विषय में भ्रांति उत्पन्न हो जाती है?

बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तर के अनुसार–बुद्ध के समय 64 लिपियों का विकास हो चुका था जिनमें सबसे पहले ब्राह्मी लिपि का उल्लेख है।

जैन ग्रंथों में एक प्रसंग आता है की ऋषभनाथ ने अपनी पुत्री बम्पी को पढ़ाने के लिए एक लिपि विकसित की थी इसी कारण इस लिपि का नाम बम्पी पड़ा। यहीं समवायण सूत्र व पणवणासूत्र में 18 लिपियों का वर्णन मिलता है जिसमें प्रथम नाम ब्राह्मी का है।

बादामी के उत्खनन से ब्रह्म व सरस्वती की खड़ी युगल मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें ब्रह्म के हाथों में ताड़पत्र तथा सरस्वती के हाथ में मुड़ी पुस्तक है। इससे स्पष्ट होता है की सरस्वती व ब्रह्म को लेखन कला के उद्‌भव से संबंधित किया गया है।

लेखन कला के प्राचीनता का प्रमाण कालिदास के इस कथन से स्पष्ट है की लिपि ही वह माध्यम है जिसे व्यंग्यमय की प्राप्ति होती है जैसे–नदी के मुख से चलने पर उसके उद्‌गम तक हम पहुंच सकते हैं (**कियेर्यथा वदग्रहणेन व्यंग्यमय नदी मुखेनेव समुद्रभाविशत**)।

यूरोपीय विद्वानों के मत की भारतीय प्राचीन साहित्य लेखन की सहायता के बिना ही मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता था, कालिदास साहित्य के यथोचित अध्ययन के लिए लिपि–ज्ञान अति आवश्यक है।

विदेशी अनुश्रुतियाँ

प्राचीन भारत में अनेक विदेशी यात्री समय–समय पर भारत की यात्रा में आते रहे है तथा उन्होंने यात्रा वृतांतों में भारत की कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक घटनाओं, प्रथाओं व परम्पराओं का उल्लेख किया है। इनमें हमें प्राचीन भारत में लेखन कला के होने के भी प्रमाण मिलते हैं।

चीनी परम्परा एवं अनुश्रुति

भौगोलिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आदि संपर्कों में भारत व चीन एक दूसरे के अत्यंत समीप रहे हैं। कई भारतीय साहित्यों के संकेत व उनके संदर्भ चीनी साहित्यों में प्राप्त होते हैं। चीनी साहित्यों ज्ञात होता है की भारत में लेखन कला का विकास अत्यंत प्राचीन है। चीन के प्राचीन विश्वकोश फा–वान–शू–लिन में लिखा है कि पुरातन विश्व में केवल तीन लिपियाँ प्रचलित थी। इनमें से एक ब्राह्मी थी। यह फान (ब्रह्म) द्वारा आविष्कृत थी तथा बाएं से दायें लिखी जाती थी तथा यह सर्वोत्तम लिपि थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि लेखन कला की उत्पत्ति सबसे पहले भारत में ही हुआ था। ह्वेनसांग लिखता है की भारत की लिपियाँ सभी लिपियों से

प्राचीन है। वह यह से लौटते समय बड़ी मात्रा में साहित्यों का भंडार ले गया था। उसके अनुसार भारत में जन्मपत्री का प्रचलन था, सड़कों के किनारे अंक लिखे हुए मील स्तम्भ थे।

अरबी परम्परा एवं अनुश्रुति

भारत तथा अरब देशों के मध्य संपर्क प्राचीन काल से ही रहा है। 11वीं सदी के अरबी इतिहासकार अल–बरूनी के अनुसार भारतीय लोग पराशर से पहले लिखना भूल चुके थे फिर कलियुग दैवयोग से पराशर ने कलियुग के आरंभ में हिन्दू धर्म–ग्रंथों–वेद, महाभारत तथा पुराणों आदि के संचयन एवं लेखन के लिए लेखन कला का पुनरान्वेषण किया और टीवी से क्रमित लेखन कला का प्रचलन हुआ। यह कथन स्वतः इस बात को प्रमाणित करता है की कलियुग के पहले के युगों में भी लेखन–कला से भारतीय परिचित थे। दूसरा यहाँ उल्लिखित व्यास वेदों के संकलनकर्ता तथा पुराण व महाभारत के रचयिता बताए गए हैं जिससे यह स्पष्ट होता है की वैदिक काल में भी लेखन की व्यवस्था भी अवश्य रही होगी।

युनानी परम्परा एवं अनुश्रुति

सिकंदर के अभियान में उसके साथ भारत आए तथा उसके बाद भारत का भ्रमण करने आए कई यूनानी इतिहासकारों व लेखकों की रचनाओं में भारत में लेखन की प्राचीनता के बारें में जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। उन्होंने यहाँ की कतिपय परम्परा व अनुश्रुति को अपने साहित्य में स्थान दिया है।

नियार्कस – सिकंदर का एक सेनापति था। वह पं.जाब में सिकंदर के साथ रहा था तथा सिंधु डेल्टा पर सेना का नेतृत्व किया था। वह लिखता है–"यहाँ के निवासी कपास व चिथड़ों से कागज बनाया करते थे। इन कागजों का प्रयोग संभवतः लिखने के लिए किया जाता रहा होगा जो की लेखन कला के प्रचलन की ओर संकेत करता है।

कर्टियस – कर्टियस जो एक यूनानी यात्री था लिखता है की भारतीय वृक्ष की छाल पर लिखते हैं। निश्चित ही वह भोजपत्र का उल्लेख कर रहा था। आज भी भारतीय सन्यासी इनका प्रयोग जंत्र–मंत्र के लिए करते हैं।

ब्यूलर के अनुसार – ये दोनों डॉ.. विभिन्नन लेखन सामग्रियों की ओर संकेत करते हैं, इससे ज्ञात होता है कि लेखन–कला इस समय ज्ञात थी वह बिल्कुल नई नहीं थी।

मेगस्थनीज– मेगस्थनीज प्रथम मौर्य सम्राट के दरबार में यूनानी राजदूत

था। मेगस्थनीज के विवरणों से ज्ञात होता है कि सडक़ों के किनारे मील के पत्थर 10–10 स्टेडिया की निश्चित दूरी पर लगे हुए थे जिससे डसड़को की दूरी व ठहराव की जगह ज्ञात होती है। इससे यह स्पष्ट होता है की भारतीय गणना से परिचित थे तथा वे अक्षरों के साथ गिनती करते थे। मेगस्थनीज के वृतांत में भारतीयों द्वारा कुंडली देखकर वर्षफल बताने तथा विभिन्नन स्मृतियों के आधार पर न्यायिक मसलों का निर्णय करने का वर्णन है। जिससे यह स्पष्ट होता है की भारतीयों के पास गणना की सुव्यवस्थित और उच्चतम व्यवस्था थी। कुछ लोगों ने स्मृति का अर्थ 'स्मरण शक्ति' लगाया है जबकि ब्यूलर व राजबली पांडे आदि विद्वानों ने इसका अर्थ स्मृतिग्रंथों से लिए है।

अरबी परम्परा एवं अनुश्रुति

लंका त्रिपिटिक साहित्य में 'लेख' शब्द का प्रयोग मिलता है। अपितु 'लेखक' शब्द का भी उल्लेख है। जिससे यह स्पष्ट होता है की लेखन परम्परा का विकास अति प्राचीन है तथा लेखन कला में पारंगत हुए लोगों के लिए 'लेखक' कहा जाता था।

साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोतों से हमें भारत में लेखन कला की प्राचीनता का ज्ञान मिलता है। भारतीय साहित्यों को मुख्यतः निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

1. **वेद** –
   - 1.1 ऋग्वेद
   - 1.2 यजुर्वेद
   - 1.3 अथर्ववेद
2. उत्तर वैदिक साहित्य (ब्राह्मण साहित्य)
3. बौद्ध साहित्य
4. जैन साहित्य

1.– वेद

ऋग्वेद –

वेद विश्व साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रंथों में से एक हैं। पं.. गौरीशंकर ओझा के अनुसार श्रुति वेदों को इसलिए श्रुति कहा जाता था क्योंकि वेदों को केवल सुनकर याद करना अधिक सुविधाजनक था। क्योंकि उस समय कंठस्थ

विद्या का अधिक महत्व था, अतः यह असंभव है इनके लिखित रूप में होने के बिना इन पर भाष्य किये गए हों; तथा इनके ब्राह्मण ग्रंथों की रचना की जा सकती। ऋग्वेद में गायत्री, वृहती, विराज, अनुष्टुप आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया गया है अर्थात ऋचाओं को छंदों में बांधने के लिए मात्राओं का उपयोग होता था इससे यह संकेत मिलता है की लेखन कला अवश्य रही होगी। ऋग्वेद में ही एक विवरण आता है की जुआ के एक पासे पर अंकित था तथा इसी ग्रंथ में लखड़ान्कित (आंकित) गायों का उल्लेख भी आता है। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार वैदिक काल में किसी न किसी प्रकार की लेखन कला का प्रचलन अवश्य रहा होगा। इस ग्रंथ में राजा सावर्णी द्वारा 1000 गौओं की भिक्षा में देने का उल्लेख है जिनके कानों पर आठ का चिन्ह अंकित था। इससे यह स्पष्ट होता है की लेखन कला के साथ–साथ अंक लेखन का भी प्रचलन था।

यजुर्वेद –

यजुर्वेद मे भी अनेकों छंदों का प्रयोग मिलता है जैसे क्षुरश, भ्राजश आदि। क्षुरश का अर्थ होता है छुरे की तरह किसी कठोर वस्तु से तथा भ्राजश का अर्थ है चमकने वाले वस्तु से लिखते थे। इससे यह संकेत मिलता है की संभवतः छंद तकुए से लिखे जाते रहे होंगे, जिनके अक्षरों पर चमकने के लिए रंगों का प्रयोग किया जाता रहा होगा जैसा आजकल के निमांत्रण पत्रों पर किया जाता है। एक अन्य स्थान पर 'गणक' का उल्लेख है जो गिनने का काम करते थे। यहाँ गिनना तभी संभव होगा जब गिनती लिखने का चलन हो।

अथर्ववेद –

अथर्ववेद में एक स्थान पर उल्लेख आता है की एक स्नातक कहता है 'मैं वेद को वहीं रख देता हूँ जहाँ से मैंने इसे लिए था।' इस विवरण से यह स्पष्ट संकेत मिलता है की वेद का अवश्य ही लिखित स्वरूप रहा होगा। एक अन्य उद्धरण में यह उल्लेख आता है की 'हे पृथ्वी, हम तुम्हें भौतिक बंधनों से आबद्ध कर देंगे। तुम्हारा शरीर दो योग का है–कृसमानी और वित्त – जो कुछ भी तुम पर लिखा गया है जिससे यह अर्जित ज्ञान शीघ्र ही लुप्त न हो जाय'।

2.– उत्तर वैदिक साहित्य (ब्राह्मण साहित्य)

उत्तर वैदिक साहित्यों से भी लेखन कला के अस्तित्व में होने के अनेकों प्रमाण मिलते हैं। इसके लिए सर्वप्रथम हम उत्तर वैदिक साहित्य को 4 भागों में विभक्त कर लेते हैं –

1. वेदांग

2. उपनिषद, ब्राह्मण एवं आरण्यक
3. महाकाव्य
4. अन्य ग्रंथ

वेदांग –

वेदांग में व्याकरण का स्थान प्रमुख है। पाणिनी (चौथी सदी ई.पू.) में संस्कृत व्याकरण का अध्ययन का संग्रह अष्टाध्यायी में किया। इस जैसा व्याकरण ग्रंथ आज तक संभव नहीं हुआ है। बिना लिखित सामग्री के व्याकरण का अध्ययन संभव ही नहीं है जिससे यह स्पष्ट होता है, कि पाणिनी के पूर्व से ही लेखन कला का विकास हो चुका था। पाणिनी अपने अष्टाध्यायी में लिपि शब्द का प्रयोग लिखने के संबंध में करते हैं। इसके अतिरिक्त 'लिपिकार' एवं 'ग्रंथ' शब्द का भी उल्लेख मिलता है जो लेखन कला के स्पष्ट प्रमाण है। अष्टाध्यायी में अंकों का भी उल्लेख मिलता है कुछ उदाहरणों में पशुओं के कानों में 5 तथा 8 लिखने का उल्लेख है। पाणिनी ने स्वयं से पूर्व भारद्वाज तथा कश्यप आदि वैयाकरणों का उल्लेख किया है जो पूर्व में ही वैयाकरण के अध्यापक थे। पणिनी से पहले ही यास्क ने निरुक्त लिखा था जिसमें कई अन्य वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है। अतः यह स्पष्ट है की 8वीं सदी ई.पू. में भी लेखन कला विकसित थी।

वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद तथा ज्योतिष) जो भारत में प्राचीनतम शास्त्रीय साहित्य का निर्माण करते हैं, विशिष्ट ज्ञान की सभी शाखाएं जो वर्गीकरण, व्यवस्थापन, अंतर्निर्देश, पुनरावृति तथा गुणन एवं विभाजन युक्त गणना को सूचित करते हैं निश्चित रूप से लेखन की पूर्व कल्पना करती है।

उपनिषद व आरण्यक –

छन्दोग्य उपनिषद में अक्षरों के लिखने का उल्लेख मिलता है। एतरेय ब्राह्मण में अक्षर उच्चारण का परिचय मिलता है। तैतरीय उपनिषद में वर्ण और मात्रा का उल्लेख मिलता है। उपनिषद दार्शनिक तत्वों का विवेचन करते हैं जिन्हें बिना लिखे व्यवस्थित नहीं किया जा सकता।

महाकाव्य –

रामायण व महाभारत प्राचीन भारत के दो प्रमुख महाकाव्य हैं। इनमें भी विभिन्नन प्रसंगों में लेखन कला के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। उदाहरण के लिए रामायण में जब हनुमान सीता की खोज में लंका जाते हैं तब राम उन्हें अपनी मुद्रिका देते हैं जिसमें "राम" नाम अंकित होता है। इसी मुद्रिका को हनुमान

लंका में अशोक वाटिका में सीता को देते हैं। जब सीता ने हनुमान से इस मुद्रिका के बारे में पूछा तब हनुमान कहते हैं –

'रामनामांकितं चेदि पश्य देवि अंकगुलियम। वाल्मीकि रामायण

(तब देखि मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर–मानस)

अर्थात ही देवी ! राम नाम अंकित इस अंगूठी को देखो ! इस कथन से स्पष्ट हो जाता है की रामायण काल में भी लिखने की कला प्रचलित थी। रामायण में ही एक स्थान पर उल्लेख है की संस्कार से हिन होने पर शब्द का अर्थ बदल जाता है।

'संस्कारेण यथा हीनां वाच्यमर्थान्तरंगतम्। वाल्मीकि रामायण 5–15–39

यहाँ उल्लेखित संस्कार के संदर्भ में आचार्य बलदेव उपाध्याय जी का विचार है की किसी–न–किसी प्रकार के व्याकरण के सिद्धांतों की ओर संकेत किया गया है अर्थात जो साहित्य को संस्कारित करता है। इसी प्रकार महाभारत में भी लिख, लेखन, लेखक आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। आदि पर्व में उल्लिखित है की व्यास जी ने महाभारत को लिखने के लिए लेखन कला में कुशल 'गणेश' को चुना था। डॉ.. राजबली पाण्डेय तथा ब्यूलर आदि के अनुसार यह लेखन कला के प्रचलन के प्रमाण हैं।

अन्य वेदोत्तर ब्राह्मण साहित्य –

इसके अतिरिक्त अन्य वेदोत्तर संस्कृत साहित्य जिनमें काव्य नाटक, स्मृतियाँ, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, आख्यायिका, दर्शन तथा अन्य शास्त्र सम्मिलित हैं विषय की प्रकृति, शैली, आकार तथा लेखन के कई प्रमाण देते हैं। चुकी इसमें से अधिकांश अशोक के शिलालेखों के बाद के हैं इस कारण इनके साक्ष्य लेखन–कला के पूर्वतर अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर सकते। परवर्ती संस्कृत साहित्य के विपरीत पूर्वकालीन संस्कृत साहित्य के प्रमाण अधिक मूल्यवान हैं। इस साहित्य का एक अंश बौद्ध साहित्य के समकालीन है किन्तु अधिकांश बौद्ध धर्म के उदय के पूर्व के हैं। प्राक् बौद्ध कालीन ब्राह्मण साहित्यों को मैक्स–मूलर ने भी ई.पू. 8वीं से ई.पू. 14 वी सदी के मध्य रखा है। किन्तु ब्यूलर वे विंटरनिट्ज इन्हें ई.पू. 3–4 सदी का मानते हैं।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र ब्राह्मण साहित्य का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह अशोक के पूर्व लगभग ई.पू. 4 सदी का है तथा इसमें भी लेखन कला से जुड़े अनेक प्रमाण हैं जैसे –

वृत्तचौलकर्मा लिपिं. संख्यानं चोपयुञ्जीत्। 1.05.02

चूड़ाकर्म के उपरांत लेखन और गणना सिखनी चाहिए।

पँचमें मंत्रिपरिषदा पत्रसंप्रेषणेन मंत्रयेत। 1.19.06

पं.चवे पहर में राजा को पत्र सम्प्रेषण द्वारा मंत्रिपरिषद से मंत्रणा करनी चाहिए।

संज्ञालिपिभिश्चारसञ्चारंकुर्युः। 9.12.08

संज्ञा और लिपि के साथ अपने गुप्तचरों को भेजना चाहिए।

अमात्यसम्पदाउपेताःसर्वाध्यक्षाःशक्तितःकर्मसुनियोज्याः। 2.09.28

लेखक लिखने और पढ़ने में समर्थ तथा रचना कुशल होना चाहिए।

सूत्र साहित्य – श्रौत, गृह एवं धर्म सूत्रों का समय ई.पू. दूसरी – 8वीं सदी के मध्य माना जाता है। इनमें भी लेखन कला से जुड़े अनेकों उदाहरण हैं। जैसे वशिष्ठ धर्मसूत्र में व्यावहारिक प्रमाण के लिए लिखित पत्रकों का उल्लेख है।

3. बौद्ध साहित्य

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्यों की रचना तथा संकलन निःसंदेह सिकंदर के भारतीय अभियान के पश्चात् ही हुआ था। किन्तु इनमें ई.पू. की 5वीं–6ठी शताब्दी के पूर्व के इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है। इनमें लेखन कला के अतिरिक्त लेखन के व्यवसाय, विषय, पद्धति एवं प्रयुक्त होने वाली सामग्रियों का भी उल्लेख मिलता है।

उदाहरण के लिए बौद्ध ग्रंथ सूत्तान्त में भिक्षुओं के आचरण पर उपदेश देते हुए 'अक्खारिक' नामक एक खेल का निषेध किया गया है। इस खेल में एक बौद्ध भिक्षु दूसरे बौद्ध भिक्षु की पीठ पर चढ़कर हवा में अक्षर बनाता था जिसे दूसरा पढ़ता था। विनय पिटक में उल्लेख आता है की भिक्षुओं को अक्षर लिखने का व्यसन था तथा कुछ गृहस्थ इसके माध्यम से अपनी जीविका भी अर्जित करते थे। इसमें लेख, गणना, रूप आदि की शिक्षा का विधान मिलता है। इसी ग्रंथ में लेखन कला को भिक्षुओं के लिए निर्दोष तथा सराहनीय बताकर उसकी प्रशंसा की गई है।इसके अतिरिक्त कई प्रसंगों में जातक कथाओं में लेखन कला का संकेत करती हैं जैसे –

1. व्यक्तिगत और आधिकारिक पत्र,

2. राजकीय घोषणा,

3. कौटुंबिक कार्य,

4. धार्मिक एवं राजनीतिक सुभाषित,

5. ब्याज एवं ऋण, पांडुलिपियाँ (पत्रक)

महावग्ग एवं जातक में ई.पू. 5वीं सदी के पूर्व उन संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है जहाँ लेखन कला की शिक्षा दी जाती थी। पाठ्य–विषय पर लिखित समग्री तथा लिखने की विधि एवं उपकरणों का भी उल्लेख मिलता है। महावग्ग लेख (लेखन), गणना (गणित) और रूप(मुख्यतः मुद्राशास्त्र विषयक व्यावहारिक गणित) आदि का उल्लेख करते हैं जो प्राचीन भारतीय पाठ्यशलाओं के पाठ्यक्रम के अंग थे। जातक में लेखन के उपकरण के रूप में फलक (पट्टिका) और वर्णक (काष्ठ–लेखनी) का भी वर्णन मिलता है। विनय पिटक में 'लिखितक्र चोर' का उल्लेख मिलता है जिसका अर्थ होता है राज्य के लिखित विवरण चुराने वाला। बौद्ध साहित्य में लेखन संबंधी शब्द जैसे 'छिंदन्ति', 'लिखति', 'लेख', 'लेखक' 'अक्खर' आदि तथा लेखन उपकरणों में काष्ठ, बांस पत्र एवं स्वर्ण पट्ट का भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त 'लिख' तथा 'लिखावित' जिसका अर्थ है लिखना तथा लिखने के लिए बाधित करना। उदान में लेखाशिल्प का उल्लेख मिलता है। अंगुत्तर निकाय में 'लेखनी' (कलम), जातकों में अपपोतथक (आपकी पुस्तक), पोत्थक (पुस्तक), इण्ण पोथक (ऋण की पुस्तक) आदि का उल्लेख आता है। परवर्ती ग्रंथ ललितविस्तर में बुद्ध की लिपिशाला में जाने तथा उनके शिक्षक विश्वामित्र के द्वरा चंदन–फलक पर स्वर्ण–लेखनी से उनको वर्ण परिचय कराने का उल्लेख मिलता है तथा इसी ग्रंथ में 64 लिपियों के अस्तित्व में होने का उल्लेख मिलता है जिसमें ब्राह्मी सर्वोपरि थी। जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है की लेखन कला ई.पू. 5वीं–6ठी शताब्दी में प्रचलन में थी। तथा यह कोई नई वस्तु नहीं थी जिसे विकसित हुए समय हो चुका था।

4. जैन साहित्य

जैन साहित्यों के अनुसार जैन भिक्षुओं का लिखना वर्जित था। यदि कोई भिक्षु लिखता तो पश्चाताप करना पड़ता था। जैन परम्परा लिपियों की दो तालिका प्रस्तुत करती है –

1. 12 अक्षरों की लिपि

2. 18 अक्षरों की लिपिं.

जैन ग्रंथ भगवती सुत्त ब्राह्मी की वंदना 'नमो वम्यिये लिखिए' से ही आरंभ होती है। इस प्रकार से जैन साहित्य भी प्राचीन भारत में लेखन कला का प्रमाण देते हैं।

पुरातात्विक स्रोत

साहित्यिक व पारम्परिक स्रोत परोक्ष साक्ष्य हैं इनकों प्रामाणिक बनान के लिए पुरातात्त्विक स्रोतों की आवश्यकता होती है। डॉ.. भंडारकर ने पाषाण काल के पत्थरों पर रेखांकित कुछ आकृतियों को लिपि के आरंभ से जोड़ने का प्रयास किया था, किन्तु बाद में यह मत गलत सिद्ध हुआ क्योंकि इन्हें रोमन लिपि पाया गया। पं.. गौरीशंकर ओझा ने अशोक कालीन अभिलेखों के पूर्व के अभिलेखों का विवरण प्रस्तुत किया जिसमें से एक अजमेर का था तथा दूसरा नेपाल घाटी का। प्रथम अभिलेख तीर्थंकरों के 84 वर्ष पूर्व लगभग ई.पू. 443 के तहत दूसरा अभिलेख डॉ.. ब्यूलर के अनुसार ई.पू. 487 का है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है की अशोक ने अपने लेखों को पत्थरों पर इसलिए खुदवाया था ताकि वे स्थाई बने रहे अर्थात अशोक से पूर्व में लेखन की परम्परा थी पर क्योंकि पूर्व काल में पेड़ों की छाल, भोजपत्र, कपड़ों और कागज जैसे नाशवान पदार्थों पर लिखे जाते थे इसलिए वे समय के साथ नष्ट हो जाते थे। साहगौर, महाथानगढ़ व पिपरहवा से प्राप्त अभिलेख भी अशोक के पूर्व के माने गए हैं यद्यपि इन पर आज भी एक मत नहीं है।

किन्तु इन सभी प्रमाणों से अधिक महत्वपूर्ण प्रमाण है सिंधु–सरस्वती सभ्यता से प्राप्त मिट्टी के मुहरों पर अंकित प्रतीक चिन्ह जिन्हे कई विद्वानों ने चित्रात्मक अक्षर माना है जो भारत में लेखन कला की प्राचीनता को लगभग ई. पू. 3000 तक ले जाता है।

2.7 सारांश

वैश्विक दृष्टि से लेखन कला का इतिहास लगभग तीसरी शताब्दी ई.पू. के आसपास तक जाता है। भारत में भी इसके समकालीन लेखन कला के प्रमाण सिंधु–सरस्वती सभ्यता से मिलते है, किन्तु अभी तक कोई इस लिपि को पढ़ने में समर्थ नहीं हो सका है। किन्तु भारत में पढ़े जाने वाली लिपि का इतिहास लगभग 4–3 शताब्दी ई.पू. तक जाता है। किन्तु विद्वानों में भारत में लेखन कला के उसके उद्‌भव व विकासक्रम पर मतभिन्नता है। कुछ के अनुसार भारत में लेखन कला का उद्‌भव विदेशी परम्परा से प्रेरित है जबकि कुछ के अनुसार यह पूर्णतः भारतीय मूल की है। जिसका अध्ययन करना आवश्यक है।

अतः इन सभी प्रमाणों व स्रोतों पर आधारित विवेचना से यह कहना कठिन है की भारत में लेखन कला निश्चित रूप से कब से आरंभ हुई थी उसका प्रारम्भिक रूप कैसा था। किन्तु यह तो अवश्य सिद्ध होता है की वैदिक काल से ही भारत में लेखन कला विद्यमान थी यद्यपि इसके निश्चित प्रत्यक्ष रूप के बारे में अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। विंटरनिट्ज का कहना है की लेखन कला का आरंभ भारत में ई.पू. 18वीं सदी से हो चुका था। किन्तु यह विचार भी अंतिम नहीं माना जा सकता क्योंकि अभी वेदों के रचना काल निश्चित नहीं हो सकी है। अतः यह माना जा सकता है कि वैदिक काल में भारत में लेखन कला पूर्ण विकसित थी। सिंधु–सरस्वती सभ्यता के काल से लेखन कला के इतिहास का आरंभ माना जा सकता है, जो धीरे–धीरे समय के प्रवाह के साथ क्रमशः विकसित हुआ।

2.8 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ. शिवस्वरुप सहाय
2. भारतीय पुरालिपि, डॉ. राजबली पाण्डेय

2.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. लेखनकला की प्राचीनता पर लेख लिखिए।
2. भारतीय उपमहाद्वीप में लेखनकला कितनी प्राचीन है ?
3. भारत की सबसे प्राचीन लेखन कला के प्रमाण कहाँ प्राप्त होते हैं ?
4. लेखन कला की उत्पत्ति पर लेख लिखिए।

इकाई 3 : सैन्धव लिपि–प्रकृति एवं इसके लिप्यांतरण की समस्या

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 सैन्धव सभ्यता का इतिहास

3.4 सैन्धव सभ्यता में लेखनकला के साक्ष्य

3.5 सैन्धव लिपि की उत्पत्ति

3.5.1 सुमेरियन, मिस्र व एलम सभ्यता से उत्पत्ति के सिद्धांत

3.5.2 द्रविड़ उत्पत्ति का सिद्धांत

3.5.3 स्वदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

3.6 सैन्धव लिपि की प्रकृति

3.7 सैन्धव लिपि के लेखन की दिशा

3.8 सारांश

3.9 सदंर्भ ग्रन्थ

3.10 आदर्श अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारत में लेखन कला के प्राचीनतम् प्रमाण सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त होते हैं, जिसे कुछ विद्वानों के अक्षर तो कुछ चित्रात्मक लिपि मानते हैं। अभी तक इस लिपि या प्रतीक समूहों को समझा या पढ़ा नहीं जा सका है जिसके कारण सैन्धव सभ्यता के इतिहास का एक बड़ा भाग अभी भी रहस्य बना हुआ है। अतः भारत में लेखन कला के इतिहास के अध्ययन के लिए सबसे प्रथम चरण सैन्धव सभ्यता से प्राप्त इन प्रतीकों का अध्ययन करना आवश्यक है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य प्राचीन सैन्धव (हड़प्पा) सभ्यता की लिपि की प्राचीनता, उसकी उत्पत्ति, उसकी प्रकृति तथा ऊसके लिपयांतरण में आने वाली समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

3.3 सैन्धव सभ्यता का इतिहास

सैन्धव लिपि के लिपयांतरण की समस्या सैन्धव 'सभ्यता जिसे हड़प्पा सभ्यता अथवा सिंधु–सरस्वती सभ्यता भी कहा जाता है भारतीय उपमहाद्वीप की आरंम्भिक सभ्यताओं तथा विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। इस सभ्यता की खोज 20वीं सदी के तीसरे दशक में हुई थी। जब दो प्रसिद्ध पुरातत्वशास्त्रियों दयाराम साहनी तथा राखलदास बैनर्जी ने हड़प्पा (पं.जाब के मॉन्टगोमरी जिले में स्थित) तथा मोहनजोदड़ों (सिंध के लरकाना जिले में स्थित) के प्राचीन स्थलों से पुरावस्तुएं प्राप्त करके यह सिद्ध किया की ये दोनों नगर कभी किसी प्राचीन सभ्यता के केंद्र रहे होंगे। इस सभ्यता की खोज के बाद भारत का इतिहास भी मेसोंपोटामिया और मिस्र के काल की प्राचीन सिद्ध हो गई जिसे एक समय तक सिकंदर के आक्रमण ई.पू. 326 जितनी प्राचीन माना जाता था। इस सभ्यता की कई विशेषताएं जैसे नगर शैली, व्यापारिक गतिविधियों के प्रमाण तथा यहाँ से प्राप्त सेलखड़ी की मुहरें आदि एक विकसित सभ्यता होने के प्रमाण देती है। विद्वानों के अनुसार इस सभ्यता का आरंम्भिक काल लगभग ई.पू. 3300 था जो ई.पू. 2500 के आसपास अपने पूर्ण विकसित स्वरूप में था तथा लगभग ई.पू. 1300 के आते आते यह सभ्यता विलुप्त हो गई। कुछ नए शोधों के अनुसार इस सभ्यता की तिथि ई.पू. 5500–7500 वर्ष पूर्व तक होने के प्रमाण मिले हैं। इस सभ्यता का विस्तार उत्तर में पाकिस्तान के पं.जाब प्रांत में स्थित रहमान ढेरी से दक्षिण में गुजरात के भोगत्रार तक लगभग 1400 किमी तथा पूर्व में आलमगीरपुर (मेरठ) से पश्चिम सूत्कागेनडोर तक लगभग 1600 किमी तक था। इस सभ्यता के अबतक 2000 से 2500 स्थलों की खोज हो चुकी है जो आज के बलूचिस्तान, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, पश्चिमी पं. जाब, राजस्थान, हरियाणा, गंगा–यमुना दोआब, जम्मू, गुजरात, उत्तरी अफगानिस्तान आदि में फैले हुए हैं। इस सभ्यता की खोज सर्वप्रथम हड़प्पा की खोज से हुई इस कारण इसे हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है। इसी तरह चुकी इस सभ्यता के अधिकांश पुरास्थल सिंधु नदी घाटी के क्षेत्रों में फैले हुए थे इसलिए इसे सिंधु घाटी की सभ्यता भी कहा जाता था, किन्तु अब इस सभ्यता के अधिकांश पुरास्थल भारत में प्रवाहित होने वाली घग्गर–हाकरा नदी के क्षेत्र से प्राप्त हो रहे हैं जिसकी पहचान ऋग्वैदिक सरस्वती नदी जो अब विलुप्त हो चुकी, से की गई है। इसके आधार पर अब विद्वान इसे सिंधु–सरस्वती सभ्यता भी कहते हैं।

परवर्ती भारतीय सभ्यता के अधिकांश तत्वों के मूल हमें भारत की इस प्राचीनतम सभ्यता में दिखाई देते हैं। भारतीय सभ्यता के सामाजिक, आर्थिक,

धार्मिक, कलात्मक पक्षों का भान हमें सैन्धव सभ्यता में ही मिलता है।

3.4 सैन्धव सभ्यता में लेखनकला के साक्ष्य

उपरोक्त वर्णित पक्षों के अतिरिक्त लेखन कला के प्रारम्भिक साक्ष्य भी हमें सैन्धव सभ्यता में देखने को मिलते हैं। सैन्धव पुरास्थलों से अबतक 3700 के लगभग उत्कीर्ण सामग्रियाँ जिनमें ताम्र, कांस्य की सामग्रियाँ तथा मृतभाण्ड आदि है तथा 2000 से भी अधिक मुहरें प्राप्त हो चुकी हैं जो सेलखड़ी, कांचली मिट्टी, चर्ट, गोमेट आदि से निर्मित हैं। सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त पुरावशेषों में सबसे विशेष है यहाँ से प्राप्त मिट्टी (सेलखड़ी) की मुहरें, जिनमें अनेकों प्रकार की आकृतियों के साथ–साथ चित्रात्मक शैली अंकित किये हुए कुछ प्रतीक चिन्ह मिलते हैं। इन मुहरों का आकार चौकोर व वर्गाकार है तथा ये सामान्यतः 2–8 वर्ग सेमी आकार के हैं। इनमें मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि का अंकन मिलता है। इन मुहरों पर कुछ रेखाओं के माध्यम से अनेक प्रतीक चिन्ह बने हुए हैं। विद्वान इसे लेखन की आरंम्भिक अवस्था तथा इसे चीनी लिपि की तरह चित्रात्मक लिपि (Pictographic) मानते हैं। सिंधु सभ्यता से प्राप्त लिपि के ये प्रमाण भारतवर्ष के सबसे प्राचीन ज्ञात लिपि है। किन्तु दुर्भाग्य से अभी तक इस लिपि को संतोषजनक रूप से पढ़ा नहीं जा सका है।

सैन्धव पुरावस्थलों से प्राप्त इन मुहरों को न पढ़ पाने के कारण इस सभ्यता के बौद्धिक पक्ष के विषय में बहुत कम ज्ञात है। अब तक प्राप्त मुहरों के अध्ययन से लगभग 400 प्रकार के चित्रात्मक अक्षरों का आकलन किया गया है। इन लिपि चिन्हों में स्पष्टता, विस्तार तथा विभिन्ननता है। सामान्यतः यह बाएं से दायें लिखी जाती थी लेकिन डॉ. बी.बी. लाल ने कालीबंगन की खुदाई से ऐसे मृत्पिण्ड प्राप्त किये जिनमें सैन्धव लिपि में लघु लेख खुदे हुए थे जिनके माध्यम से यह सिद्ध हुआ की यह लिपि दायें से बाएं थी। कहीं–कहीं लिपि की दिशा बताना कठिन हो जाता है।

3.5 सैन्धव लिपि की उत्पत्ति

अनेक विद्वान सैन्धव लिपि की उत्पत्ति के लिए अलग अलग मतों का समर्थन करते हैं तथा उसके मूल का संबंध अलग अलग लिपियों तथा भाषा से जोड़ते हैं। कुछ के अनुसार यह प्राचीन ब्राह्मी का आरंम्भिक रूप हैं, कुछ के अनुसार ये द्रविड़ लिपियों के आरंम्भिक रूप हैं वहीं कुछ विद्वान सैन्धव लिपि को मेसोपोटामिया तथा सुमेरियन लिपियों से जोड़ते हैं। किन्तु द्रविड़ अथवा मेसोपोटामिया से इस लिपी को जोड़ने का तर्क स्वीकार करने में यह आपत्ति है

की इस लिपि के लेखन के परवर्ती लेखन के उदाहरण उत्तर भारत में मिलते हैं न तो दक्षिण भारत में न ही मेसोपोटामिया आदि सभ्यताओं में। सुमेर व एलाम की लिपियों के समय के आधार पर कुछ विद्वानो की यह धारणा है की या लिपि पश्चिमी एशिया से भारत लाई गई है। किन्तु यह निर्णय करना कठिन है की कौन सी लिपि किसका अनुकरण कर रही थी।

3.5.1 सुमेरियन, मिस्र व एलम सभ्यता से उत्पत्ति सिद्धांत

एल.ए. वैडेल के अनुसार चतुर्थ सहस्त्राब्दी ई.पू. में सुमेर के लोग सिंधु घाटी में आकर बस गए थे और उन्हीं ने अपनी भाषा व लिपि का वहाँ प्रसार किया। उनके अनुसार आर्य सुमेर मूल के थे। उन्होंने मुद्राओं पर प्राचीन भारतीय साहित्य में उल्लेखित राजाओं और राजधानियों के नाम को भी पढ़ने का दावा किया। वैडेल के अनुसार सैन्धव लिपि सुमेर लिपि से ही निकली है। वैडेल के इस मत का समर्थन डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकार जी भी करते हैं। चुकी भारत, पश्चिमी एशिया, मिस्र आदि की प्राचीन लिपियों में चित्रात्मकता तथा व्यापार द्वारा उनके मध्य संबंध के कारण समानता दिखती है, किन्तु यह कहना कठिन है इनमें से किसने लेखन कला का सबसे पहले आविष्कार किया तथा किसने उसका अनुकरण किया। मेसोपोटामिया की ऐतिहासिक जन श्रुतियों के अनुसार सुमेर सभ्यता के जन्मदाता बाहर से आए थे तथा अपने साथ कृषि, लेखन, धातुकर्म आदि लेकर आए थे। सुमेर सभ्यता में लेखन कला के उत्तरदायी देवताओं व महापुरुषों के नाम सेमेटिक होने की अपेक्षा भारतीय लगते हैं। ऐसे में सुमेर लिपि से सैन्धव लिपि की उत्पत्ति का वैडेल का मत निराधार प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों ने सैन्धव लिपि का संबंध प्राक–ईरानी सभ्यता एलम के आद्य–एलामाइट लिपि से जोड़ने का प्रयास किया है क्योंकि ये दोनों सभ्यताएं समकालीन थी। ईरान के सुसा से लगभग 2600–1700 ई.पू. के प्राप्त एक सिलिन्डर में चित्रित आकृतियाँ सैन्धव लिपि से बहुत सीमा तक मेल खाती हैं।

3.5.2 द्रविड़ उत्पत्ति का सिद्धांत

कुछ विद्वानों के अनुसार सैन्धव लिपि आर्यों से पूर्व ही प्रचलित थी अतः यह आर्येत्तर लोगो की लिपि थी। हेनरी हेरास के अनुसार सैन्धव लोगों की भाषा व लिपि आदि द्रविड़ थी। सर जॉन मार्शल व उनके सहकर्मियों का भी लगभग यही मत था। हेरास सैन्धव लिपि को बाई से दाई ओर पढ़ते तथा तमिल में उसका लिप्यांतरण करते थे। रूसी विद्वान यूरी नोरोजोव तथा फिनिशियन विद्वान अस्को परपोला भी इसी मत के समर्थक है। किन्तु इस मत

से आपत्ति यह है की चतुर्थ सहस्त्राब्दी में तमिल भाषा के होने के अथवा उसके स्वरूप का हमें कोई ज्ञान नहीं है। अतः हेरास का यह प्रस्तावित पाठ प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। यदि सैन्धव लिपि में प्रयुक्त कथाओं का प्रश्न है तो यह चित्रात्मक शैली में लिखे गए है अतः यह किसी भी भाषा में गढ़े गए हो सकते हैं।

3.5.3 स्वदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

कुछ विद्वानों का मत है की वैदिक आर्य ही सैन्धव सभ्यता के जनक थे जो बाद में मेसोपोटामिया और पश्चिमी एशिया की ओर विस्तृत हुए। इनके अनुसार सैन्धव लिपि का आविष्कार इसी सभ्यता लोगों द्वारा किया गया था। सैन्धव लिपि संभवतः मौलिक थी तथा सैन्धव लोगों द्वारा अन्य सभ्यताओं तक फैली।

जी.आर. हंटर के अनुसार "अनेक चिन्हों में मिस्र की लिपि से विशिष्ट समानता है। मानव–शरीरात्मक चिन्हों के समस्त समुदाय के अनुरूप चिन्ह (समूह) मिस्र की लिपि में भी उपलब्ध है जो वस्तुतः वैसी ही है। इस संबंध में यह स्मरणीय है की इन मानवाकृति चिन्हों में से एक का भी प्राचीन समानांतर सुमेर या पूर्व एलम (एलामाइट) की लिपियों में नहीं है। इसके विपरीत अनेक सैन्धव चिन्हों के ठीक समानरूप पूर्व–एलम और जेम्देत–नस्त्र की ताबीजों में मिलते हैं, इन जीवरूपात्मक (मॉर्फोग्राफिक) प्रतिरूप मिस्र की लिपि में नहीं मिलते। कोई भी इन्हे देखकर इसी निष्कर्ष पर पँहुचेगा की सैन्धव लिपि अंशतः मिस्र व मेसोपोटामिया की लिपियों से निकली होगी। यह सत्य है की सैन्धव लिपि के अधिकांश चिन्ह जैसे वृक्ष, मछली, चिड़िया इत्यादि इन बाह्य सभ्यताओं की लिपियों से समानता रखते हैं किन्तु यह आकस्मिक समता–पात्र है जबकि वास्तव में चित्रलिपी की अवस्था में अपरिहार्य है। कारणपरक संबंध का निराकरण तब होता है जब अपेक्षाकृत अधिक रूढ़ व कम स्पष्ट विचार–चित्रों में (आइडियोग्राम) किसी आशय या कल्पना के लिए विशेष संकेत, विशेषतः उन विचार–चित्रों में जो इतने रूढ़ हो गए हो की उनकी चित्रात्मक (पिक्टोग्राफिक) मूल का पता नहीं चले, विशिष्ट संबंध लक्षित हो तथा अंशतः जहाँ आसानी से पहचाने जाने योग्य चित्र इसी प्रकार की विविधता प्रकट करते हैं, वहाँ दूसरा प्रकार हमारी लिपि तथा पूर्व–एलामाइट लिपि के बीच बहुत स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। तुलनात्मक फलकों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। निश्चय ही यह संभव है की तीनों का मूल एक ही रहा हो और सैन्धव लिपि में मिस्र तत्व लिए गए हो। यह भी संभव है की चारों लिपियों का मूल है की हो, किन्तु यह

एक गवेषणा का विषय है। मानवशास्त्रीय प्रमाणों के बिना रूप लिपि की अवस्था में इस मत का समाधान करना कठिन है, कि प्रागैतिहासिक काल में नील, फरात तथा सिंधु नदी की घाटी के निवासियों में जातीय समानता थी या नहीं।"

डेविड डीरिन्जर के अनुसार "इस संबंध में अन्य समस्याओं का निर्देश भी आवश्यक है कि लिपि का मूल तथा अन्य लिपियों के अविष्कार पर इसका प्रभाव। यह स्पष्ट प्रतीत होता है की सैन्धव लिपि जो प्राप्त लेखों में अपेक्षाकृत अधिक योजनाबद्ध और पं.क्तिबद्ध है प्रारंभ में चित्रलिपि–परक थी, किन्तु यह निर्णय करना असंभव है की वास्तव में यह स्वदेशी है या विदेशी। कीलाक्षर (क्यूनीफार्म) लेखन एवं प्राचीन एलम के पूर्व रूप में इस लिपि का संबंध संभव है। किन्तु यह निश्चय करना कठिन है की उस संबंध का स्वरूप कैसा था।

3.6 सैन्धव लिपि की प्रकृति

सैन्धव लिपि प्रमुख रूप से चित्रात्मक व प्रतीकात्मक शैली की है जिसमें विभिन्नन प्रकार की आड़ी–तिरछी रेखाओं व आकृतियों का प्रयोग किया गया है। सैन्धव सभेत के पुरास्थलों से प्राप्त मुहरों व कुछ अन्य पुरावस्तुओं में इन प्रतीकात्मक आकृतियों का प्रयोग किया गया है। प्रतीक अक्षर छोटे छोटे समूहों में अंकित हैं जिनमें लगभग 5 अक्षरों तक का अंकन मिलता हैं। किन्तु पाकिस्तान से विकसित हड़प्पा के काल से संबंधित प्राप्त एक नए ताम्रपत्र में अब तक के सबसे अधिकतम 34 अक्षर प्राप्त हुए हैं। इन प्रतीक अक्षरों के प्रमाण हमें आरंम्भिक हड़प्पा सभ्यता से ही मिलने लगते हैं जिनमें कुछ मृदभांडों तथा मुहरों में अभिलिखित हैं। इस लिपि के अधिकांश अक्षर चित्रात्मक है, जिनमें तात्कालिक आम जन जीवन से जुड़ी वस्तुओं से जुड़ी हुई लगती है किन्तु कुछ प्रतीक व आकृतियाँ पहचानी नहीं जा सकी हैं। कुछ चिन्ह दो या दो से अधिक चिन्हों से मिलकर बने है जबकि कुछ बिल्कुल अलग हैं।

इन चित्रात्मक अक्षरों की संख्या लगभग 400–450 के आसपास आँकी गई है। यह एक बड़ी संख्या है जो किसी एक वर्ण या अक्षर के लिए फोनोंग्राम होने की ओर संकेत करता है अर्थात प्रत्येक आकृति या अक्षर एक निश्चित ध्वनि या शब्द संयोजन का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे चीनी या मिस्र के हेरोग्लिफ। 1970 में भारतीय पुरालिपि शास्त्री इरावथम महादेवन ने एक लेख में सैन्धव लिपि के 419 प्रतीकों का एक क्रम प्रस्तुत किया था। बाद में 2015 में पुरतत्वशास्त्री एवं पुरालिपि शास्त्री ब्रायन वेल्स ने इनकी संख्या लगभग 694 तक होने का दावा किया। महादेवन के शोध के अनुसार 113 प्रतीक चिन्ह ऐसे हैं जो किसी लेख अथवा लेख समूह में केवल एक बार आयें, 47 प्रतीक चिन्ह 2

बार तथा 59 ऐसे प्रतीक चिन्ह है जो 5 या उससे कम बार एक लेख समूह में आए हैं। सैन्धव लिपि में 80 प्रतिशत लेखों में केवल 67 प्रतीक चिन्हों का प्रयोग किया गया है। अधिकांश सैन्धव अभिलेख मुहरों पर मिले हैं इसलिए इनके आधार पर लेखन की उपयोगिता का अनुमान लगाया जा सकता है। वस्त्रों के अवशेषों का मुहर से उदय होना ये इशारा करता है, कि व्यापार की सामग्रियों को इनके द्वारा प्रामाणिकता दी जाती रही होगी। ऐसे भी संभव है की वस्तुओं के क्रय विक्रय के लिए टोकन में इनका प्रयोग होता रहा हो। सेलखड़ी, टेरकोटा व फेयन्स के छोटे छोटे गोटी पर भी यह लिखावट मिलती है। मुहर की तरह क्यूंकी इनका उपयोग किसी वस्तु पर निशान लगाने के लिए नहीं होता था, इसलिए इन पर मौजूद लिखावट प्रतिबिंब शैली में नहीं है। तांबे की चौकोर गोटी जिस पर पशु चिन्ह के साथ लिखावट है मोहन जोदड़ों से प्राप्त हुई है। मृदभांड़ो पर पाए गए अभिलेखों से उनके व्यावसायिक महत्व का प्रमाण मिलता है। उनको मृदभांड़ो पर अंकित करने वाले शिल्पकार साक्षर भी न हों, किन्तु निश्चित रूप से ये उन प्रतीकों को पहचानते थे। धौलावीरा के साइन–बोर्ड से उच्च स्तरीय नागरिक साक्षरता का बोध हो अथवा न हो, किन्तु इससे सैन्धव सभ्यता में लेखन के नागरिक बोध की संभावना अवश्य दिखाई देती है। इन सबसे अधिक सम्पूर्ण हड़प्पा सभ्यता में एक ही लिपि का प्रयोग उच्च स्तरीय सांस्कृतिक एकीकरण का भी प्रमाण देता है। सैन्धव सभ्यता के विशाल सांस्कृतिक क्षेत्र में विविध भाषाओं व बोलियों के अस्तित्व में होने की भी संभावनाएं बनती है तथा हड़प्पा की मुहरों में पाए गए अभिलेख किसी कुलीन शासक वर्ग की भाषा भी हो सकती है।

3.7 सैन्धव लिपि के लेखन की दिशा

अधिकांश विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि सैन्धव लिपि दायें से बाएं लिखी जाती थी, किन्तु कुछ उदाहरणों में बाएं से दायें लिखे जाने के भी प्रमाण मिले हैं। हालांकि अभी तक यह लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है इसलिए इसके लेखन की दिशा का अनुमान बाह्य प्रमाणों से लगाया जाता है जैसे लेखों में बाएं ओर के प्रतीक चिन्ह दबे हुए या कहीं–कहीं नीचे लिखे हुए मिलते हैं। जबकि जिन मुहरों पर जिनपर लेख की उल्टी छवि होती है उनमें यह दायें भाग में देखने को मिलता है। लंबे अभिलेख वुस्ट्रोफिडॉ.न शैली में लिखे हुए लगते हैं जिसमें प्रत्येक पं.क्ति विपरीत दिशा में लिखी जाती है।

सैन्धव लिपि के लिप्यांतरण का प्रयास व लिप्यांतरण में समस्या

कई विद्वानों के अनुसार यह कोई भाषाई लिपि न होकर एक संकेतात्मक

लिपि है। चुकी अभी तक हमें हड़प्पन लोगों की भाषा के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इस लिपि की प्रकृति क्या थी तथा अंकित किये हुए प्रतीक चिन्ह किस शब्द अथवा विषय को परिभाषित करते हैं। फिर भी समय समय पर कई विद्वानों ने इस लिपि को पढ़ने का प्रयत्न किया है।

डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकार जैसे विद्वानों ने भी इसे पढ़ने का प्रयास किया किन्तु कोई निर्णय नहीं निकला। भारतीय पुरातत्वविद डॉ.. एस. आर. राव के अनुसार सैन्धव लिपि प्राचीन इंडो–आर्यन भाषा की लिपि है। उन्होंने इस लिपि को पढ़ने का दावा भी किया है किन्तु बी. बी. लाल आदि विद्वान इस पाठ को संदिग्ध मानते हैं।

साधनों की अनुपलब्धता

जैसे की हमें ऊपर जाना की सैन्धव लिपि भारत वर्ष की सबसे प्राचीन लिपि है फिर भी इसे आज तक पढ़ा नहीं जा सका है। कई विद्वानों ने इसे पढ़ने का प्रयास किया है किन्तु वे सभी असफल रहे। इसका एक कारण यह भी है की हमें सैन्धव लिपि के साथ किसी भी ऐसी पढ़ी जा सकने वाली लिपि के प्रमाण नहीं मिलते जिसमें इस लिपि को किसी अन्य भाषा में लिखा गया हो। उदाहरण के लिए जब नेपोलियन 1798 में मिस्र पर आक्रमण करने गए तो वह अपने साथ 167 तकनिक व कलाविदों को लेकर गया था। नेपोलियन की सेना को मिस्र के एक बंदरगाह शहर रोसेटा (रशीद) से पत्थर का एकाश्म पुरावशेष प्राप्त हुए जिस पर प्राचीन मिस्री लिपि में अभिलेख लिखा हुआ था जो की एलेक्जेंडर के काल के आसपास का था। इस एकाश्म पर तीन लिपियों में एक ही अभिलेख को लिखा गया था, पहले मिस्री हेरोग्लिफ लिपि में, दूसरा यूनानी (ग्रीक) लिपि और तीसरी डोमेटिक लिपिं. चूँकि ग्रीक लिपि अभी भी पढ़ी जा सकती थी इसलिए इसकी सहायता से पुरालिपिशास्त्रियों ने मिस्र की प्राचीन लिपि को भी पढ़ने में सफल रहे। किन्तु सैन्धव लिपि को पढ़ने का कोई साधन अभी तक विद्वानों को नहीं मिला है।

किसी समकालीन सभ्यता में भी सैन्धव लिपि से जुड़े कोई प्रमाण नहीं मिलते जिससे दूसरी भाषा में भी पढ़ा जा सके। वैदिक संस्कृति जो सैन्धव सभ्यता के बाद विकसित हुई का इतिहास हमें ऋग्वेद से मिलता है किन्तु उस काल में ऋग्वेद किस लिपि में लिखी गई थी इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता अतः हम यह नहीं बता सकते की क्या ऋग्वेदिक जन भी सैन्धव लिपि का प्रयोग करते थे अथवा नहीं। ऋग्वेद में किसी ऐसी लिपि का वर्णन अथवा

संकेत नहीं मिलता जो सैन्धव लिपि पर संकेत करती हो। वैदिक के बाद हमें लेखन कला ब्राह्मी के आरंम्भिक प्रमाण स्पष्ट रूप से मिलने लगते हैं।

3.8 सारांश

भारतीय सभ्यता में लेखन का इतिहास विश्व की अन्य सभ्यताओं की ही तरह अत्यंत प्राचीन है। भारत में लेखन कला के प्राचीनतम साक्ष्य सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से मिलते हैं। सैन्धव पुरास्थलों से प्राप्त पुरावशेषों जैसे मृदभांड व मुहरों पर अनेक प्रकार की आकृतियों के साथ कुछ चिन्ह प्राप्त होते हैं जिसे विद्वानों के अनुसार लेखन कला का आरंम्भिक रूप माना है तथा इसे सैन्धव लिपि कहकर संबोधित किया है। सैन्धव लिपि की प्रकृति, इसकी उत्पत्ति तथा उसका आरंम्भिक ब्राह्मी से इसके संबंध पर विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। कुछ इसे केवल प्रतीक मानते हैं, कुछ इसे चित्रात्मक लिपि मानते हैं। कुछ इस लिपि की उत्पत्ति भारतीय मानते हैं, जबकि कुछ इसका संबंध विदेशी लिपियों से जोड़ते हैं। इस लिपि का प्रसार सम्पूर्ण सैन्धव सभ्यता में मिलता हैं। किन्तु सैन्धव लिपि का विकास आगे चलकर हुआ या नहीं तथा मौर्यकाल में प्रयुक्त ब्राह्मी का इससे कितना संबंध है इस पर भी विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। इसे पढ़ने के अनेक प्रयास हो चुके हैं किन्तु अभी तक कोई इसमें सफल नहीं हुआ है।

जैसा की हमने पिछले अध्यायों में जाना की विद्वान इस मत को नकारते हैं की वैदिक आर्यों जैसे सुसंस्कृत जन लेखन कला से अनभिज्ञ थे। भले ही हमें उनके लेखन कला के स्वरूप का ज्ञान न हो किन्तु यह निश्चित है लेखन कला भारत में कम से कम वैदिक काल में अवश्य विकसित थी। ऐसे में सैन्धव लिपि भारत में लेखन कला के उद्भव व प्राचीनता के मूल के रूप में सर्वाधिक संभव स्रोत माना जा सकता है। क्योंकि सैन्धव काल के बाद हमें लेखन कला का व्यवस्थित प्रमाण मौर्य काल से दिखने लगता है। ऐसे मंन यह संभव नहीं की हड़प्पा सभ्यता से लेकर मौर्य काल के बीच के काल में लोग लिखना न जानते हो। भले ही हमें इसके प्रमाण नहीं मिलते जिसका कारण संभवतः नश्वर लेखन सामग्रियों का प्रयोग हो सकता है, किन्तु यह संभव है कि ब्राह्मी का स्वरूप कहीं न कहीं सैन्धव लिपि से विकसित हुआ हो।

3.9 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ. शिवस्वरुप सहाय,
2. भारतीय पुरालिपि, डॉ. राजबली पाण्डेय
3. प्राचीन एवं पूर्व–मध्यकालीन भारत का इतिहास, डॉ. उपिन्दर सिंह

4. The Indo&Sumeria-n seals deciphered &L.A.Waidel

5. Prehistoric civilization of the Indus Valley&KN Dixit

6. The script of HarappaAnd Mohenjo Daro & it's connection with other scripts

7. https://ancient&asia-&journal.com/articles/10.5334/aa.12317, Vasant Shinde, Rick J Wills

8. The Origin, ContextAnd Function of the Indus Script: Recent Insights from Harappa.JM Kenoyer

9. Mahadevan, Iravatham (1977). The Indus Script: Text, ConcordanceAnd Tables. New Delhi:Archaeological Survey of India-

10. TheArchaeologyAnd Epigraphy of Indus Writing. Oxford,2015 BK Wells

11. The Indus Civilization:A Contemporary Perspective. 2002, Possehl,Gregory L

3.10 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. भारत में लेखन कला के सबसे प्राचीन प्रमाण किस सभ्यता से प्राप्त होते हैं ?

2. सैन्धव सभ्यता के पुरावशेषों मे प्राप्त संकेतो के लिपि होने के समर्थन में दिए गए मतों पर लेख लिखिए।

3. सैन्धवलिपि के विदेशी मूलों से उत्पत्ति के तर्कों पर प्रकाश डालिए।

4. सैन्धवलिपि की भारतीय मूल से उत्पत्ति के तर्कों पर प्रकाश डालिए।

5. सैन्धवलिपि की प्रकृति व उसके लेखन की दिशा आदि पर लेख लिखिए।

6. सैन्धवलिपि के लिपयांतरण व उसे पढ़ने में आने वाली समस्या पर लेख लिखिए।

इकाई 4 : ब्राह्मी लिपि का उद्‌भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्‌देश्य

4.3 ब्राह्मी की प्राचीनता

4.4 ब्राह्मी का उद्‌भव

4.4.1 विदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

4.4.2 यूनानी उद्‌भव

4.4.3 सेमेटिक उत्पत्ति

4.4.4 स्वदेशी (भारतीय) उत्पत्ति का सिद्धांत

4.5 ब्राह्मी का विकास

4.6 सारांश

4.7 सदंर्भ ग्रन्थ

4.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

ब्राह्मी भारतीय इतिहास में सफलतापूर्वक पढ़ी जा सकने वाली सबसे प्राचीन भाषाओं में से सबसे प्राचीन है। इस लिपि का इतिहास सर्वमान्य रूप से ई.पू. तीसरी सदी (मौर्यकाल) तक जाता है। 19 वीं शताब्दी में जब ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल में यूरोपीय विद्वानों व शोधकर्ताओं की रुचि भारतीय इतिहास तथा भारतीय संस्कृति में बढ़ने लागी थी तब उन्होंने भारतीय इतिहास पर शोध करना आरंभ करना आरंभ कर दिया। कई पुरतत्ववेत्ताओं ने अनेकों पुरास्थलों की खोज की थी जिसमें तक्षशिला से लेकर बोध गया, नालंदा आदि कई प्राचीन पुरास्थल प्रकाश में आए। कई पांडुलिपियों, व साहित्यों का अनुवाद करवाया गया। इन्हीं खोजों में कई अभिलेखों की भी खोज हुई जिसमें प्राचीन ब्राह्मी लिपि के प्रमाण मिले इस लिपि का पूर्ण विकसित रूप में व्यापक रूप में प्रयोग अशोक के अभिलेखों में हुआ है जो की लगभग ई.पू. 3री सदी के माने गए हैं। इसके अतिरिक्त पिपरहवा एवं सोहगौरा आदि अभिलेख भी प्राप्त हुए है

जो अनिश्चित रूप से अशोक के काल के आसपास के हैं। ब्राह्मी आज के प्रचलित लगभग सभी उत्तर भारतीय लिपियों की जननी मानी जाती है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय में हम ब्राह्मी की प्राचीनता, उसके उद्भव के अलग–अलग स्रोतों पर विद्वानों के अलग–अलग मतांतरों का अध्ययन करेंगे।

4.3 ब्राह्मी की प्राचीनता

जब प्राचीन लेखन कला की प्राचीनता के संबंध शोध किया जाता है तो हमें ज्ञात होता है की जहाँ पारंपरिक एवं अनुश्रौतिक स्रोत लेखन कला की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हैं, वहीं वे ब्राह्मी लिपि का उल्लेख भी करते हैं। चीनी विश्वकोश फा–वान–शू–लिन तीन लिपियों का उल्लेख करते हैं – ब्राह्मी, कइअलू तथा तनसकी। महमूद गजनी के साथ भारत आया अरबी लेखक व इतिहासकार अलबरूनी लिखता है की ब्रह्मा ने एक लिपि का आविष्कार किया था जिसका नाम ब्राह्मी था तथा वह बाएं से दायें लिखी जाती थी।

जैन परम्परा के अनुसार आदि पुराण में लिखा है की ऋषभनाथ ने एक लिपि का आविष्कार अपनी पुत्री को लिखना सीखाने के लिए किया था। चूँकि उनकी पुत्री का नाम बम्पी था इसलिए इस लिपि का नाम भी ब्राह्मी पड़ा।

4.4 ब्राह्मी का उद्भव

ब्राह्मी के उद्भव को लेकर विद्वानों में अनेक मत प्रचलित हैं। जिसमें हम सबसे पहले परम्पराओं का अध्ययन करेंगे। प्रायः भारतीय तथा विदेशी प्रत्येक परम्परा इस लिपि का संबंध भारत से जोड़ती है। किन्तु कुछ विदेशी विद्वानों ने तर्कों के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है की ब्राह्मी के उद्भव का मूल स्रोत भारतीय न होकर विदेशी है। जबकि भारतीय विचारक इस मत को नहीं मानते। भारत में लेखन के आविष्कार की प्रेरणा सुमेर व बेबीलोन की भांति व्यापारिक न होकर धार्मिक थी ऐसे में यह नितांत असंभव है की आर्य संस्कृति के मूल भूमि उत्तरी भारत के ब्राह्मणों ने अपनी पवित्र ब्राह्मी लिपि के सूत्र सिंधु और सुराष्ट्र के बंदरगाहों से ग्रहण किए हों। ब्राह्मी लिपि के मूल की समस्या के समाधान के मार्ग में विद्वानों के सामने सबसे बड़ी कठिनाई है। ई.पू. 5वीं सदी से पूर्व ब्राह्मी लेखन के प्रमाण। इस कारण ब्राह्मी के मूल के लिए अनेकों मतों की स्थापना की गई है जिन्हे मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. ब्राह्मी के विदेशी स्रोत से उत्पत्ति का मत,
2. ब्राह्मी के स्वदेशी उत्पत्ति का मत।

अध्ययन की दृष्टि से ब्राह्मी के उद्‌भव के सभी मतों को निम्नांकित क्रमरूप रखा जा सकता है –

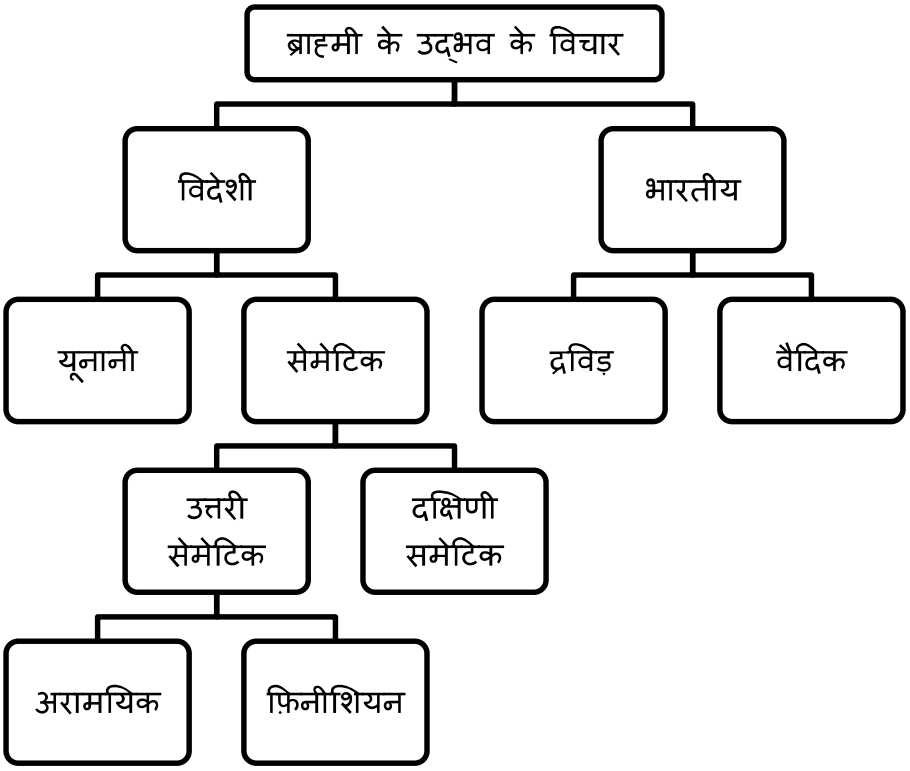

4.4.1 ब्राह्मी के विदेशी उत्पत्ति का मत

कई विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति विदेशी लिपियों के प्रभाव से हुई है। किन्तु इस मत में भी कई विभाजन है। विद्वानों में ब्राह्मी की उत्पत्ति को लेकर भी कई मत हैं कुछ इसे यूनानी प्रभाव से निकला हुआ मानते हैं जबकि कुछ इसे समेटिक लिपियों से निकला हुआ मानते हैं। इन मतों पर विद्वानों में मत निम्नानुसार हैं –

4.4.2 यूनानी उद्‌भव

ओर्टफीड म्वेलर, स्माइल सेनार्ट, जेम्स प्रिंसेप, रावेल डी रोशे आदि विद्वानों ने भारतीय ब्राह्मी तथा यूनानी लिपि में समता स्थापित करने का प्रयास किया है। इनके अनुसार ब्राह्मी लिपि का उद्‌भव यूनानी लिपि के भारत आगमन से हुई है। इस मत के समर्थन में विद्वानों का तर्क है कि यूनानी लिपि

फिनीशियन व्यापारियों द्वारा भारत लाई गई थी। उन्होंने यह संभावना भी दी कि सिकंदर के आगमन के बाद यूनानी लिपि का संपर्क भारत से हुआ और तब भारतीयों ने ब्राह्मी का प्रचलन आरंभ किया।

डॉ.ब्यूलर के अनुसार भारत में लेखन कला का प्रचलन सिकंदर से भी पहले ई.पू. 8 वी–9 वी सदी से था, यह तर्क भी की फोनेशियन व्यापारियों के माध्यम से यह लिपि भारत आयी कहना भी उचित नहीं है क्योंकि फोनेशिया में लिपि का प्रचलन यूनानी लिपि से भी पहले से था। ऋग्वेद में फोनेशियन व्यापारियों को पणी कहा गया है। ये भारतीय मूल के थे जो बाद में भूमध्यसागर के तट पर जाकर बस गए और वहां अपनी बस्तियां स्थापित की। इससे यह माना जा सकता है की यह लिपि भारत से पश्चिमी विश्व में गई होगी। यह भी संभव है की इस लिपि का अनुकरण करके यूनानियों ने लेखन कला सीखी हो।

4.4.3 सेमेटिक मूल

सर विल्यम जोन्स आदि विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है की ब्राह्मी का उद्‌भव सेमेटिक लिपि से हुआ है किन्तु इन विद्वानों में भी एक मत भिन्नता है। कुछ इसे उत्तरी सेमेटिक से निकली मानते हैं, कुछ दक्षिणी सेमेटिक लिपि से और कुछ फोनेशियन लिपि से

उत्तरी सेमेटिक मूल से उत्पत्ति

ब्यूलर, डेविड, डिरिन्जर आदि विद्वान मानते है की ब्राह्मी अक्षरों का उद्‌भव उत्तरी सेमेटिक लिपि से हुआ है। ब्यूलर के अनुसार "सीधे प्राचीन उतात्री स्मेतिक वर्णों से जिनका फोनेशिया से लेकर मेसोपोटामिया तक समान रूप दिखाई पड़ता है, ब्राह्मी वर्णों का दुभाव मन्नते पर ये कठिनाइयाँ दूर हो जाती है। वेबर द्वारा प्रस्तुत कतिपय मान्य स्पक्ष्यों का हाल ही में प्रकाश में आये हुए रूपों की सहायता से बड़ी आसानी से निराकरण किया जा सकता है, और उन सिद्धांतों को मान्यता देना कठिन नहीं है कि जिनके अनुसार सेमेटिक चिन्ह भारतीय चिन्हों में परिवर्तित हो गए हैं।"

उत्तरी स्मेतिक वर्णों से ब्राह्मी की व्युत्पत्ति दर्शाने के लिए डॉ..ब्युलर ने प्राचीन भारतीय वर्णों की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है –

1. वर्ण यथासंभव सीधे रखे जाते हैं तथा ट, ठ, व, ब चिन्हों के अपवादों को छोड़कर उनकी ऊंचाई समान रखी जाती है।
2. अधिकांश वर्ण खड़ी रेखाओं से बने होते हैं। इनमें जोड़ की रेखाएं

अधिकांशतः नीचे की ओर लगी है और कभी कभी नीचे व् ऊपर दोनों में लगी है तथा बहुत कम मध्य में प्रयोग हुई है किन्तु केवल शीर्ष भाग में योग नहीं है।

3. वर्णों के शिरोभाग पर अधिकतर खड़ी रेखा का सिरा पाया जाता है इससे कम छोटी आड़ी पाई, और उससे भी कम अधोमुखी कोणों के शीर्ष भाग पर वक्ररेखा व् अपवाद स्वरुप म (४) व् झ (२)के रूप में ऊपर जाने वाली रेखाएं। कहीं भी लटकती हुई रेखा के साथ त्रिभुज या वृत्त के ऊपर लटकती हुई खड़ी या तिरछी रेखा की सहायता से अगल–बगल रखे गए अनेक कोणों से युक्त शीर्ष भाग नहीं मिलता।

4. यदि उत्तरी सेमेटिक अक्षरों के भारी शिरों को नीचे कर उनका स्वरूप उल्टा कर दिया जाए तथा उनके किनारों को खुला छोड़ दिया जाए तो ब्राह्मी अक्षरों की समता में उन्हे लाया जा सकता है तथा लेखन क्रम की दिशा में परिवर्तन करने के कारण प्रायः चिन्ह दायें से बाएं हो जाएंगे।

5. ब्राह्मी लिपि में प्रयुक्त 22 अक्षर उत्तरी सेमेटिक अक्षरों से बने हैं, कुछ प्राचीन फोनेशियन अभिलेखों के अक्षरों से बने है, बहुत कम अक्षर मेसा के प्रस्तर अभिलेखों के अक्षरों से लिए गए हैं। इनके पाँच अक्षर असीरिया के बट खरे पर अंकित अक्षरों के अननुकरण पर बने हैं।

इसके विचार की पुष्टि के लिए उनके तर्क हैं –

1. ब्राह्मी स्वतंत्र रूप से भारतीयों का आविष्कार नहीं है यह व्यापारिक सुविधाओं के लिए सेमेटिक लिपियों से भारतीयों ने लिया है।

2. अक्षरों के सहारे स्वर व व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण की भावना बिना किसी संदेह के ब्राह्मी में पश्चिमी एशिया से अनुकरण की गई है।

ब्राह्मी के उत्तरी सेमेटिक लिपि से उत्पत्ति सिद्ध करने के लिए डॉ. डेविड डीरिन्जर ने निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं –

1. आरंभ में ब्राह्मी दायें से बाएं लिखी जाती थी व इसके चिन्ह पूर्णतयः सेमेटिक अक्षरों की तरह हैं।

2. विद्वानों के अनुसार भारतीय परम्परा में बोलचाल कुछ दूसरे प्रकार की थी। अक्षरों का विकास निर्धारित करना कठिन है। सेमेटिक अक्षरों में स्वरचिन्हों का अभाव था। इन स्वरचिन्हों की रचना सेमेटिक अक्षरों में भारतीयों ने नहीं पर यूनानियों ने की।

उत्तरी सेमेटिक अक्षरों के संबंध में प्रस्तुत तर्कों को सुव्यवस्थित रूप में हम इस प्रकार रख सकते हैं –

1. ब्राह्मी व सेमेटिक अक्षरों की निर्माण कला में समता दिखती है।
2. आरंम्भिक अक्षरों के लिखने की परम्परा सेमेटिक थी। भारत मे चित्रकारी भाषा में पहले लेखन कला विकसित हुई। किसी भी चित्रकारी लिपि से अक्षरों का विकास संभव नहीं हो सकता।
3. ई.पू. 5 वीं सदी के पहले भारतीयों में इतिहास लिखने की परम्परा का कोई प्रमाण प्रत्यक्ष रूप से नहीं मिलता। इस समय भारत का संपर्क पश्चिमी विश्व से हुआ था जिसके बाद पश्चिमी एशिया की देन के परिणामस्वरूप भारतीयों ने अक्षरों का विकास किया।
4. प्राचीन काल में भारतीय दायें से बाएं की ओर लिखते थे जैसे सेमेटिक लिपियाँ लिखी जाती है।

इन मतों के विरोध में भारतीय विद्वानों ने निम्नांकित तर्क प्रस्तुत किया है।

1. डॉ. ब्यूलर के अनुसार ब्राह्मी अक्षरों का उद्‌भव सेमेटिक अक्षरों से निकालना कठिन है, अतः उत्तरी सेमेटिक लिपियों से ब्राह्मी की उत्पत्ति की बात चौथे तर्क के आधार पर पूर्वानुग्रह से एक धारणा को सिद्ध करने के लिए ही प्रतिपादित किया गया है। डॉ. ब्यूलर के तर्कों के आधार पर किसी भी पश्चिमी लिपि से भारतीय लिपियों की समानता दिखाई जा सकती है।
2. ब्राह्मी तथा अरामयिक लिपि में कोई एकरूपता नहीं दिखती। यहाँ एक रूपट दिखने के लिए अनेकों परिवर्तनों की आवश्यकता बताई गई है। जबकि इस प्रकार के परिवर्तनों के माध्यम से किसी भी लिपि के अक्षरों की संत दूसरी लिपि से स्थापित की जा सकती है। डॉ.. गौरीशंकर ओझा के अनुसार उपरोक्त तर्कों के माध्यम से अंग्रेजी के अक्षरों से ब्राह्मी की उत्पत्ति दिखाई जा सकती है और साथ ही इसके उलट ब्राह्मी से किसी भी लिपि की उत्पत्ति दिखाई जा सकती है।
3. फोनेशियन वास्तव में भारतीय लोग ही थे जो व्यापार करते हुए पश्चिमी विश्व में जाकर रूके थे, ऋग्वेद में इन्हें पणी कहा गया है। वे अपने साथ अपनी लिपि लेकर गए जो की ब्राह्मी थी। पश्चिमी देशों के लोग इस लिपि को ठीक से अपना नहीं सके तथा बाएं से दायें लिखने के स्थान पर दायें से बाएं लिखने की परम्परा का आरंभ हुआ। कुछ अक्षर

अपने वास्तविक स्वरूप की अपेक्षा कुछ परिवर्तन कर अपना लिए गए। इसी कारण पश्चिमी लिपि के अक्षर ब्राह्मी अक्षरों की अपेक्षा उल्टे–सीधे दिखते हैं।

4. चित्रकारी लिपि से अक्षरों का विकास नहीं हो सकता यह तर्क सही नहीं लगता। प्राचीन काल में प्रायः सभी सभ्यताओं में सर्वप्रथम चित्रकारी अक्षरों का ही विकास हुआ था। बाद में विभिन्नन अक्षर उन्हीं से निकले। जहाँ तक भारतीय अक्षरों आदि का प्रश्न है इसे सैन्धव सभ्यता से जोड़ा जा सकता है। सैन्धव लिपि को पूर्णतः चित्रकारी लिपि कहना उचित नहीं लगता। सैन्धव लिपि से अक्षरों के विकास का क्रम स्पष्ट दिखाई पड़ता है इसलिए यह संभव है की सैन्धव लिपि के अक्षरों से हुआ हो। हालांकि सैन्धव लिपि से विकसित होकर किन सोपानों से होकर अशोक कालीन ब्राह्मी तक पहुँची यह कहना कठिन है।

5. ब्यूलर ने ब्राह्मी के दायें से बाएं लिखे जाने के समर्थन में अशोक के अभिलेखों के अक्षर, एरागुडी शिलालेख के अक्षर और एरण के सिक्के पर अंकित अक्षरों का उल्लेख किया है।

ब्यूलर के इन तर्कों के विरुद्ध डॉ.. गौरीशंकर ओझा ने कहा कि अभिलेखों में लिखे हुए उल्टे अक्षर लेखकों की गलती हो सकती है। हुल्श तथा प्लीट भी ब्यूलर के मतों का समर्थन नहीं करते। डॉ.. राजबली पाण्डेय ने इस संबंध में यह तर्क दिया की एरागुडी के अभिलेख में संभवतः नवीन प्रयोग किया गया था। वहाँ अभिलेख की सम्पूर्ण पं.क्तियाँ दायें से बाएं नहीं चलती पर एक बाएं से दायें चलती है तो दूसरी दायें से बाएं चलती है। अशोक के अभिलेखों में अंकित उल्टे अक्षर संभवतः लेखकों के दोष के कारण अक्षरों में दिखाई पड़ता है। यही कारण एरण से प्राप्त सिक्कों के संबंध में भी सत्य प्रतीत होता है।

श्री अहमद हसन दानी ने उत्तरी सेमेटिक अक्षरों से ब्राह्मी की उत्पत्ति के मत के समर्थक हैं जिसके संबंध में उनके तर्क निम्न है –

1. ब्राह्मी अक्षरों की संख्या भारतीय वर्णमाला से कम है यह वर्णमाला ब्राह्मी की उपज नहीं।

2. ब्राह्मी के चिन्ह मूलतः दो भागों में बाटें जा सकते हैं – मूल स्वर और मूल व्यंजन। 3 मूल स्वर चिन्ह है और 19 मूल व्यंजन चिन्ह। इस तरह 22 सेमेटिक अक्षरों के बराबर है।

3. ब्राह्मी की उत्पत्ति कोई अलग घटना नहीं है, इसका विचार करते समय

तत्कालीन सभ्य विश्व की संस्कृतियों के परस्पर संपर्कों की अवहेलना नहीं की जा सकती।

श्री दानी ने उपरोक्त तर्क निर्बल प्रतीत होते हैं। ब्राह्मी का प्रयोग प्राकृत भाषाओं के लिखने के लिए किया जाता था जिसमें संस्कृत के अक्षर कम है। दूसरे तर्क में जिन 22 अक्षरों का चुनाव कर ब्राह्मी का उत्तरी सेमेटिक अक्षरों से समता दिखाने का प्रयास किया गया है उसमें कोई आधार नहीं मिलता जैसे यह चुनाव मनमाने ढंग से किया गया हो। तीसरा तर्क भी निर्बल प्रतीत होता है क्योंकि अशोक द्वारा प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि के अक्षरों के बाह्य आकारों तथा ध्वनियों की संत किन्हीं फोनेशियन अक्षरों से नहीं की जा सकती। अतः डॉ.. बर्मा का विचार है की ब्राह्मी को किसी अन्य संस्कृति का मुखापेक्षी नहीं बनना पड़ा।

अतः उपरोक्त तर्कों ये यही निश्चित होता है की ब्राह्मी का उद्‌भव उत्तरी सेमेटिक लिपि से नहीं हो सकता।

4.4.3 दक्षिणी सेमेटिक मूल से उत्पत्ति

टेलर, डीके व कैनन आदि विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी का उद्‌भव दक्षिणी सेमेटिक लिपि से हुआ है। उनके इस मत का भी कोई आधार नहीं दिखता क्योंकि अरब तथा भारत के बीच किसी व्यापारिक संबंध भले ही प्राचीन काल से हों किन्तु भारतीय लिपि में अरबों का कोई भी प्रभाव भारत में तब तक नहीं दिखता जब तक इस्लाम के प्रचार के लिए अरब भारतीय सीमा में नहीं आते। अतः अरबी अक्षरों से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति का मत निराधार सिद्ध होता है।

4.4.3 फोएनेशियन मूल से उत्पत्ति

वेबरम् बेन्फे, जेन्सन, ब्यूलर जैसे कई विद्वानों का मत है की ब्राह्मी की उत्पत्ति फोनेशियन लिपि से हुई है। इस मत के समर्थन में उनके तर्क है की लगभग एक–तिहाई फोनेशियन वर्ण अपने अनुरूप ब्राह्मी चिन्हों के प्राचीनतम रूप के समान थे तथा एक–तिहाई अन्य वर्ण कुछ–कुछ मिलते जुलते थे शेष में न्यूनाधिक समता दिखती है।

इस मत में आपत्ति यह है की ब्राह्मी लिपि के प्रादुर्भाव के समय भारतियों तथा फोनेशियन लोगों में कोई सीधा संबंध नहीं था। इसके अतिरिक्त फोनेशियन लिपि का प्रभाव पश्चिमी एशिया की पड़ोसी लिपियों पर भी नगण्य है। डॉ.. राजबली पाण्डेय के अनुसार भारत तथा भूमध्यसागर के पूर्वी तट के मध्य ई.पू. 1500 से ई.पू. 400 के मध्य संबंध रहा होगा। किन्तु इसमें प्रश्न उठता है की कौन सी लिपि किसकी ऋणी है ? और यह प्रश्न फोनेशियन लोगों के मूल से

संबंधित है। विद्वान तथा यूनानी इतिहासकार भी यह बात स्वीकार करते हैं की फोनेशियन लोग समुद्री मार्ग से पूर्व की दिशा से आए थे। ऋग्वैदिक प्रमाणों से भी फोनेशियन लोगों का मूल भारत की लक्षित होता है। फोनेशियन तथा पश्चिमी एशिया के सेमेटिक वर्णों में साम्य का अभाव यह दर्शाता है की फोनेशियन लोग पश्चिमी एशिया के मूल निवासी न होकर बाहर से आए हुए थे। अतः यह कहना पूर्णतः निराधार सिद्ध होता है की ब्राह्मी लिपि का उद्भव फोनेशियन लिपि से हुआ है।

ब्राह्मी के स्वदेशी उत्पत्ति का मत

पारंपरिक स्रोत से ब्राह्मी का ज्ञान

साधारणतया यह धारणा प्रचलित है की लिपि का आविष्कार ब्राह्मणों द्वारा किया गया था। इसकी स्थापना आर्यों द्वारा वेदों की सुरक्षा के लिए किया गया था। इसका प्रयोग वैदिक साहित्यों की प्रतिलिपि बनाना एवं अध्यापन द्वारा वैदिक साहित्यों को स्थायी बनाने के लिए करते थे। बाद के काल में बौद्ध व जैन लेखकों ने भी इसे स्वीकारा। आधुनिक लेखक भी जो इसे सेमेटिक लिपियों से निकला बताते हैं यह स्वीकार करते हैं की प्राचीन भारतीय ब्राह्मणों ने इस लिपि को पश्चिमी एशिया से व्यापार के माध्यम से प्राप्त कर इसे पूर्णता प्रदान की।

जैन परम्परा से यह ज्ञात होता है की जैन तीर्थंकर आदिनाथ ने अपनी पुत्री जिसका नाम बम्पी था उसे पढ़ाने के लिए एक लिपि का अविष्कार किया था। जिसके कारण आदिनाथ की पुत्री के नाम पर ही इस लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा। जैन ग्रन्थ भगवतीसुत्त का आरंभ ही इस कथन से होता है –'नमो बम्पिएलिखिए'।

पूर्णः ऋग्वेद में 'ब्रह्मि' शब्द का उल्लेख आता है जो की पाणिनि के अनुसार अशुद्ध है तथा उसका शुद्ध रूप 'ब्राह्मी' है।

चीन के विश्वकोश फा–वा–लिन में प्राचीन काल की तीन लिपियों का उल्लेख है जिसमें सबसे पहली ब्राह्मी है। इसके अनुसार ब्राह्मी पूर्ण रूप से स्वतंत्र लिपि थी तथाइसे फान (ब्रह्मा) ने बनाया था तथा यह बाएं से दायें लिखी जाती थी।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है की ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति का मूल भारत ही है।

ब्राह्मी के भारतीय उत्पत्ति पर भी विद्वानों के विभिन्नन मत हैं कुछ

इसकी उत्पत्ति द्रविड़ लोगों द्वारा मानते हैं तो कुछ इसे वैदिक आर्यों द्वारा विकसित मानते हैं जिन पर विद्वानों के विचार निम्न हैं –

द्रविड़ मूल से उत्पत्ति

एडवर्ड टॉमस तथा इनके मत के अन्य विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी लिपि का अविष्कार द्रविड़ लोगों द्वारा किया गया था। इस मत के लिए उनका आधार है कि आर्यों के तथाकथित आक्रमण के पूर्व द्रविड़ों का सम्पूर्ण भूमि पर निवास करते थे। वे सांस्कृतिक रूप से अधिक उन्नत थे इस कारण संभव है की ब्राह्मी का अविष्कार द्रविड़ लोगों ने ही किया होगा।

भारतीय उत्पत्ति के मत के समर्थक विद्वानों के अनुसार यह कल्पना मूलतः असत्य है क्योंकि द्रविड़ लोगों का मूल स्थान दक्षिण भारत में था और वैदिक आर्यों का उत्तर भारत में,जबकि ब्राह्मी के अत्यधिक प्रमाण उत्तर भारत में मिलते हैं न की दक्षिण भारत में। इसके अतिरिक्त द्रविड़ भाषा में केवल प्रथम एवं पं.चम अक्षरों का प्रयोग होता है, जबकि वैदिक आर्यों की भाषा में पांचों अक्षरों का प्रयोग होता है। ध्वनिशास्त्र के आधार पर भी यही सिद्ध होता है की ब्राह्मी से तमिल लिपि का विकास हुआ है अर्थात दक्षिण की लिपियों में अल्पसंख्यक वर्ण ब्राह्मी वर्णों से लिए गए हैं।

वैदिक आर्य मूल से उत्पत्ति

कनिंघम, डाउस, लैसेन जैसे विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी का उपविष्कार वैदिक आर्यों ने किया है। आर्य पुरोहितों ने देशीय भारतीय चित्रलिपि से ही ब्राह्मी अक्षरों का विकास किया। कनिघम के अनुसार मानव जाति के लेखन का प्रथम प्रयास भावाभिव्यक्ति के लिए चित्रों के मध्य से किया गया होगा। इस आधार पर उनका मानना था की ब्राह्मी का आरंम्भिक रूप भी चित्रात्मक रहा होगा जो बाद में पदात्मक और फिर अक्षरों के रूप में विकसित हुआ होगा। उनका यह भी विश्वास है की भारतीय अक्षर दुभाव पूर्णतः भारतीय हैं किन्तु भारतीयों ने अपनी इस व्यवस्था का मिस्र से अनुकरण किया है, किन्तु यह मत भ्रामक है। ब्युलर इस मत का वरोध करते हैं ब्युलर के अनुसार भारतीय अक्षरों के विकास में कहीं भी चित्रात्मक लिपि का इतिहास नहीं है।

डॉ.. प्राणनाथ विद्यालंकार जी के अनुसार सिन्धु घटी से प्राप्त पुरावशेषों से उत्कीर्ण अक्षरों के आधार पर भले ही हम यह मान ले कि यह चित्रात्मक लिपि है किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि यह अक्षर न तो चित्रकारी लिपि में हैं न गुढ़ाक्षर में। सभवतः डॉ.. मार्शल ने सैन्धव लिपि को ही ब्राह्मी का

मूल माना है।

डॉ.. आर. श्यामशास्त्री जी के अनुसार ब्राह्मी के वर्ण देवों को व्यक्त करने वाले चिन्हों व् प्रतीकों से निकले हैं जिन्हें देवनगर कहा जाता था जिसकी पुष्टि तांत्रिक ग्रन्थ करते हैं। किन्तु इस मत को निर्बल हैं क्योंकि शामशास्त्री जी द्वारा प्रस्तावित मतों का आधार परवर्ती ग्रंथों से है, तथापि इस मत को पूर्णतः अमान्य भी नहीं किया जा सकता क्योंकि यह ब्राह्मी वर्णों के चित्रात्मक लिपिपरक मूल के अत्यंत समीप है।

डॉ.. डीरिन्जर ने ब्राह्मी के स्वदेशी मूल होने के मत पर निम्न मत दिए हैं –

1. एक ही समय पर किसी देश में दो विभिन्नन लिपियों का प्रचलन यह सिद्ध नहीं करता की दोनों एक–दूसरे पर निर्भर है।
2. यदि सैन्धव लिपि और ब्राह्मी के आकार प्रकार में साम्य सिद्ध हो भी जाए तब भी ब्राह्मी का सैन्धव लिपि से निकलने का तर्क तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक दोनों लिपियों के समान चिन्हों के लिए लिए प्रयुक्त ध्वनि भी समान सिद्ध ना हो जाए। सैन्धव लिपि में अक्षरों में अक्षरों का पर्ययोग नहीं हुआ है, सैन्धव लिपि संभवतः सांकेतिक पद्धति या मिश्रित अक्षर– भावपरक लिपि थी जब की ब्राह्मी अर्धाक्षरी लिपि है।
3. सैन्धव लिपि में अक्षरों का प्रयोग नहीं हुआ है, सैन्धव लिपि संभवतः सांकेतिक पद्धति या मिश्रित अक्षर–भाववपरक थी जब की ब्राह्मी अर्धाक्षरी लिपि है।
4. वैदिक काल में लेखन कला के कोई प्रमाण नहीं मिलते लेखन कला के प्रमाण बौद्ध काल से ही मिलते हैं।

अभिलेखों के आधार पर यह सिद्ध होता है की ब्राह्मी के लेखन की कला के प्रमाण ई.पू. छठी सदी से मिलता है।

ई.पू. 8वीं–6ठी सदी के लगभग भारतीय व्यापारिक जीवन में उन्नति कर ली थी और उनका संपर्क भारत के बाहरी सभ्यताओं से होने लगा था इसी संपर्क के बाद भारतीयों ने लेखनकला पश्चिमी विश्व से सीखी थी या उनका अनुकरण किया।

डॉ. डीरिन्जर के उपरोक्त तर्कों के विरोध में ब्राह्मी के भारतीय मूल के समर्थक विद्वानों ने निम्न तर्क दिए हैं –

1. दोनों लिपियाँ भले ही एक ही देश में प्रचलित थी परंतु दोनों का विकास दो विभिन्नन कालों में हुआ, इसलिए दोनों का संबंध एक दूसरे से स्थापित करना बड़ा स्वाभाविक है, और परवर्ती लिपि का पूर्ववर्ती लिपि से निकलने की संभावना तब तक बनी रहेगी जब तक इसे विरुद्ध न सिद्ध कर दिया जाए।

2. डॉ. गौरीशंकर ओझा के अनुसार प्रारंभ से ही वेद लिखित थे, इन्हे श्रुति केवल इसलिए कहा जाता है की क्योंकि इन्हे श्रवण करके कठस्थ किया जाता था। इसमें संदेह नहीं की बौद्ध व जैन धर्मों ने प्राकृत को व लेखन को लोकप्रिय बनाया किन्तु वे भी वैदिक व संस्कृत भाषा के लेखन की पूर्व कल्पना करते हैं, बुद्ध ने भी अपने शिष्यों को छंदों में अपने संवाद लिखने का निषेध किया था।

3. छठी सदी ई.पू. के पूर्व की एक युगल मूर्ति प्राप्त हुए है, जिसमें एक पुरुष व एक स्त्री साथ खड़े हैं तथा स्त्री के हाथों में मुड़ी हुई पुस्तक है जिससे यह स्पष्ट होता है की ई.पू. छठी सदी में लेखन कला का प्रचलन था।

4. सैन्धव लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है, इसलिए यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता की यह सांकेतिक पद्धति है या अर्धाक्षरी, और जब तक सैन्धव लिपि को पढ़ा नहीं जा सकता तब तक यह नहीं कहा जा सकता की उसके प्रतीकों से सम्बद्ध ध्वनि क्या थी।

5. यह कहना की "वैदिक काल में लेखन की कला नहीं थी तथा वैदिक देव मण्डल में लिपि का कोई देवता नहीं है किन्तु ज्ञान व विद्या की देवी सरस्वती है" ठीक नहीं है। वैदिक देवमण्डल में ब्रह्मा व सरस्वती को हाथों में वेदों को पुस्तक के रूप में लिए हुए दर्शाया जाता है। गणेश आदि देवता लेखन से सम्बद्ध किए गए हैं तथा वैदिक साहित्यों में लेखन के प्रमाण मिलते हैं जैसा की हमने पिछले अध्यायों में भी देखा।

6. पश्चिमी विश्व में लिपि के आविष्कार का कोई ठोस प्रमाण नहीं है जबकि कई अनुश्रुतियाँ यह सिद्ध करती है की उन्होंने लेखन कला बाहर से आए लोगों से सिखी थी। अतः यह कहना की भारतीयों ने लेखन कला पश्चिमी विश्व से सीखी गलत सिद्ध होता है।

7. ब्राह्मी लिपि का मूल भारतीय है इसकी अपनी अनेक विशेषताएं है जो किसी अन्य लिपि में नहीं है जैसे –

7.1 ब्राह्मी अक्षर उच्चारण के आधार पर लिखे जाते हैं।

7.2 यह एक स्वतंत्र लिपि है।

7.3 इसके 64 चिन्ह है।

7.4 इसमें दीर्घ व ह्रस्व मात्राओं का प्रयोग मिलता है।

7.5 इसमें अनुस्वार, अनुनासिक तथा विसर्ग का प्रयोग किया जाता है।

7.6 अक्षरों का ध्वनि संबंधी विभाजन उच्चारण के आधार पर हुआ है।

7.7 चिन्हों के द्वारा स्वरों का संबंध व्यंजन से किया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों व तर्कों के आधार पर डॉ. राजबली पाण्डेय व अन्य विद्वानों ने यह सिद्ध किया है की ब्राह्मी की उत्पत्ति किसी विदेशी लिपि से नहीं हुई है। ब्राह्मी एक विशिष्ट लिपि है जिसके उच्चारण तथा व्याकरण का अपना विशिष्ट स्वरूप है अतः ब्राह्मी का उद्‌भव पूर्णतः भारतीय है।

4.5 ब्राह्मी का विकास

जैसा की हमने पिछले भाग में जाना की भारतीयों ने लिपि का आविष्कार बहुत पहले ही कर लिया था। किन्तु इसके अध्ययन का आरंभ अशोक के उत्कीर्ण अभिलेखों से होता है जिसे अशोक ने धम्म लिपि कहा है। ये अभिलेख मुख्यतः ब्राह्मी व खरोष्ठी में लिखवाये गए हैं। कुछ अन्य अभिलेख जैसे सोहगौरा तथा पिपरहवा आदि अभिलेख अशोक के काल के आस पास के माने गाए हैं। किन्तु सैन्धव लोगों द्वारा विकसित सैन्धव लिपि से अशोक कालीन ब्राह्मी तक का विकास क्रम क्या था यह अभी भी रहस्य बना हुआ है। इस कारण ब्राह्मी के विकास की कड़ी को अशोक कालीन ब्राह्मी से ही करना होगा।

ब्राह्मी लिपी की कुछ मौलिक विशेषताएं सामान्यतया दृष्टिगोचर होती है, जैसे– इसका अन्य लिपियों की अपेक्षा अधिक कोणाकार होना, पीछे इनमें टेढ़े मेढ़े अक्षरों का प्रयोग भी किया जाना आदि। प्रारंभ में इनमें दीर्घ मात्राओं का कुछ अभाव दिखता है विशेषतः ई. आदि का। अनुस्वार का प्रयोग भी इसमें प्रारंभ में नहीं के बराबर दिखता है। इनमें दोहरे व्यंजनों का प्रयोग भी नहीं मिलता जैसे 'पक्का' के स्थान पर 'पका' अर्थात पूर्ण व्यंजन का ही प्रयोग मिलता है।

4.6 सारांश

ब्राह्मी सफलतापूर्वक पढ़ी जा सकने वाली भारत की सबसे प्राचीन लिपि है जिसका आरंम्भिक विकसित रूप मौर्यकाल में देखने को मिलता है। ब्राह्मी की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसका विकास सेमेटिक, यूनानी या फोनेशियन लिपियों से हुआ है जबकि कुछ विद्वानों के अनुसार ब्राह्मी की उत्पत्ति पूर्णतः भारतीय है। अपने मतों के समर्थन में इन विद्वानों ने अनेकों तर्क दिए हैं। किन्तु अनेक अध्ययनों व तर्कों के आधार पर यह सिद्ध होता है की ब्राह्मी की उत्पत्ति पूर्णतः भारतीय है। भारत सहित अन्य देशों के पारंपरिक व साहित्यिक स्रोतों में ब्राह्मी के इतिहास की जानकारी मिलती है। आगे चल कर भारत के अनेक क्षेत्रों में अनेक शैलियों में विकसित हुई। भारत में वर्तमान में प्रचलित देवनागरी सहित दक्षिण एशिया की कई लिपियों की यह जननी मानी जाती है।

अतः उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं की ब्राह्मी भारत की पढ़ी जा सकने वाली सबसे प्राचीन लिपि है जिसका उद्‌भव भारत में हुआ तथा समय के साथ इसका विकास भारत तथा भारत के बाहर भी अनेकों क्षेत्रीय प्रभावों के साथ जिससे आज के लगभग सभी उत्तर भारतीय लिपियों का विकास हुआ। अतः इस आधार पर ब्राह्मी भारतीय लिपियों की जननी भी कही जा सकती है।

4.7 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ. राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ. शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं.गौरीशंकर हीराचंद ओझा

4.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. भारत में लेखन कला की प्राचीनता के प्रमाणों का उल्लेख कीजिए।
2. ब्राह्मी लिपि की प्राचीनता पर लेख लिखिए।
3. ब्राह्मी के विदेशी उत्पत्ति के संबंध में क्या तर्क दिए जाते हैं।
4. ब्राह्मी के भारतीय उत्पत्ति के समर्थन में क्या तर्क दिए जाते हैं।

इकाई 5 : खरोष्ठी लिपि का उद्‌भव व विकास

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्‌देश्य

5.3 खरोष्ठी का इतिहास

5.4 नामकरण

5.5 प्रयोग काल व क्षेत्र

5.6 खरोष्ठी लिपि का उद्‌भव

5.6.1 विदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत

5.6.1 भारतीय उत्पत्ति का सिद्धांत

5.7 सारांश

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

5.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय लिपियों में ब्राह्मी के बाद सफलतापूर्वक पढ़ी जा सकने वाली दूसरी सबसे प्राचीन लिपि खरोष्ठी है। खरोष्ठी लिपि का प्रयोग उत्तर–पश्चिमी भारत अर्थात अफगानिस्तान के क्षेत्र में उत्कीर्ण कराए गए अभिलेखों में मिलता हैं। इस लिपी का विकास तथा विस्तार भी मुख्यतः पश्चिमी देशों जैसे अफगानिस्तान, मध्य एशिया व पाकिस्तान के क्षेत्रों में हुआ जबकि अन्य भारतीय लिपियों का विस्तार भारतीय सीमा में ही मिलता है।

खरोष्ठी लिपि का प्रचलन अत्यंत अल्प काल के लिए ही हुआ जबकि इसके समकालीन लिपि ब्राह्मी का इतिहास लंबा रहा तथा इसका प्रयोग भी व्यापक रूप में हुआ। यह लिपि दाहिने से बाएं लिखी जाती थी।

5.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम खरोष्ठी के इतिहास, इसके नामकरण पर अलग अलग मतों, तथा उसके उद्‌भव के स्रोतों पर विद्वानों के बीच मतांतरों का अध्ययन करेंगे।

5.3 नामकरण

खरोष्ठी लिपि विभिन्नन नामों से जानी जाती है। पहले यह बैक्ट्रियन, इंडो–बैक्ट्रियन, आर्यन, बैकट्रो–पालि, गांधारी, एरियानों–पालि, उत्तर–पश्चिमी भारतीय, काबुली, आदि नामों से भी जाना जाता था। किन्तु जॉर्ज ब्यूलर ने इसे सर्वप्रथम खरोष्ठी नाम से संबोधित किया।

खरोष्ठी के नामकारण की अनेक धरणायें प्रचलित है –

1. कुछ के अनुसार इस लिपि का आविष्कारक खरोष्ठ नाम का व्यक्ति था (खऱओष्ठ = किया–लु–से–त = क–लु–से–तो = ख–रो–स–त = खरोष्ठ) अर्थात गधे के ओठ वाला।

2. कुछ के अनुसार इसका नाम खरोष्ठों द्वारा प्रयोग में लाए जाने के कारण हुई जो भारत की उत्तर–पश्चिमी सीमा में रहते थे जैसे यवन, शक, कुषाण, व मध्य एशिया के अन्य लोग।

3. कुछ के अनुसार खरोष्ठ मध्य एशिया के काशगर प्रांत का संस्कृत रूप है जो इस लिपि का परवर्ती केंद्र था। स्टेन कोनो का मत है की – "यह सत्य है की अनेक खरोष्ठी अभिलेख चीनी तुर्किस्तान में, विशेष रुप से पूर्वी ऑसेस के मरुस्थल के दक्षिण तक पाए गए है, तथा एकमात्र ज्ञात हस्तलिखित प्रति खोतान से प्राप्त हुई है फिर भी इस लिपि का प्रयोग भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए होता था। यह संभव है की यह लिपि भारतीयों द्वारा यहाँ लाए गए हों। हस्तलिखित प्रति व लेख परवर्ती काल के हैं जो कि दूसरी शताब्दी से पूर्व के नहीं है, जबकि भारत में यह ई.पू. तीसरी शताब्दी से प्रयोग में लाए जा रहे हैं।

4. एक वर्ग का यह मत है की खरोष्ठी ईरानी शब्द खरपोष्ट से बना है जिसका अर्थ गदहे की खाल होता है। संभवतः यह लिपि सर्वप्रथम गदहे की खाल पर लिखी जाती रही होगी जिस कारण इस लिपि का नाम खरोष्ठी पड़ा होगा।

5. एक मत यह भी है की यह अनियमित रूप से बढ़ाएं हुए व वक्र हैं तथा हिलते हुए गधे के ओठ के जैसे हैं इसलिए खरोष्ठ इसका नाम पड़ा।

6. डॉ. राजबली पाण्डेय का मानना है की संभवतः यह नामकरण व्यंग के रूप में किया गया हो जो बाद में प्रचलित हो गया।

5.4 प्रयोग का काल एवं क्षेत्र

पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार खरोष्ठी का प्रयोग अशोक के समय से मिलता है। इस लिपि का प्रयोग मुख्यतः पश्चिमोत्तर भारत के अशोककालीन अभिलेखों में किया गया है जो की ई.पू. तीसरी शताब्दी के आसपास के हैं। इस काल से लेकर कुषाणों के समय तक चौथी शताब्दी तक इस लिपि के अभिलेख मुद्रलेख स्फुट रूप में मिलते हैं। इसके बाद भारतीय सीमा में इस लिपि के प्रयोग के प्रमाण नहीं मिलते। लेकिन चीनी तुर्किस्तान के क्षेत्रों में इसके प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं।

इसका मूल विस्तार भारत की तत्कालीनपश्चिमोत्तर सीमा जो अब पश्चिमी पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के नाम से जानी जाती है। भारत के भीतरी क्षेत्रों पं.जाब, मथुरा तथा सिद्धपुर से भी खरोष्ठी के लेख उपलब्ध हुए हैं। इस लिपि का अंकन सिक्कों, प्रस्तर खंडों व बर्तनों में मिलता है। खोतान से धम्मपद की एक प्रति मिली है जो खरोष्ठी लिपि में लिखी गई है। ब्राह्मी की तरह इस लिपि का विकास नहीं हुआ और यह अपने मूल रूप में ही समाप्त होविलुप्त हो गई। ब्यूलर का तर्क है की क्योंकि यह कोई साहित्यिक लिपि नहीं थी तथा इसका प्रयोग केवल समाज के किसी प्रयोजन के लिए ही किया जा सकता था इसलिए यह उपयोग से बाहर हो गई। लेकिन डॉ.. ठाकुर प्रसाद के अनुसार यद्यपि प्राकृत भाषा के लिए खरोष्ठी का प्रयोग किया जाता था किन्तु संस्कृत साहित्य के लेखन के लिए किया जा सकता था। चुकी यह लिपि अत्यंत जटिल तथा दुरूह थी जिसके कारण इसका साधारण प्रयोग धीरे धीरे समाप्त हो गई।

5.6 खरोष्ठी लिपि का उद्भव

इस लिपि का प्रयोग मुख्यतः ई.पू. तीसरी शताब्दी के अशोक के अभिलेखों में मिलता है तथा अशोक के अभिलेखों से पूर्व हमें खरोष्ठी लिपि का प्रचलन देखने को नहीं मिलता।

खरोष्ठी का नाम विभिन्नन भारतीय तथा विदेशी ग्रंथों में मिलता है। चीनी विश्वकोश 'फा–वान–शु–लिन' में खरोष्ठीका उल्लेख मिलता है तथा चीनी ग्रंथों में 7 वीं शताब्दी तक इसका उल्लेख मिलता है। भारतीय ग्रंथों में बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' में भी लिपियों की सूची में खरोष्ठी का उल्लेख मिलता है।

ब्राह्मी की ही भांति खरोष्ठी के उद्भव पर भी विद्वानों में मतभेद हैं। खरोष्ठी के उद्भव पर विचार दो पक्षों में विभाजित है जिसमें एक वर्ग खरोष्ठी

के विदेशी उत्पत्ति को मानता है और दूसरा भारतीय उत्पत्ति के सिद्धांत को मानता है। इनके तर्क निम्न हैं –

5.6.1 विदेशी उत्पत्ति का मत

सभी भारतीय लिपियाँ बाएं से दायें लिखी जाती हैं। किन्तु भारत में अशोक के समय प्रयोग होने वाली ब्राह्मी लिपि जहाँ बाएं से लिखी जाती थी वहीं खरोष्ठी दायें से बाएं ओर लिखी जाती थी जिस प्रकार उत्तरी सेमेटिक शाखा की आरमेयिक लिपिं. ऐसे प्रमाणों के आधार पर जॉर्ज ब्यूलर व दानी महोदय ने खरोष्ठी की विदेशी उत्पत्ति के सिद्धांत का समर्थन करते हैं जिसके पक्ष में उनके तर्क निम्न हैं –

1. खरोष्ठी लिपि का प्रचलन भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में इरानियों के आक्रमण के बाद शुरू हुआ। इस क्षेत्र पर ईरानी आधिपत्य ई.पू. छठी शताब्दी से लेकर चतुर्थ शताब्दी तक था।
2. पारसिक शासकों ने इस लिपि का प्रयोग अपनी प्रशासनिक व्यवस्था के लिए किया था।
3. सेमेटिक व खरोष्ठी लिपि के अक्षरों में अनेकों साम्यतायें दिखती हैं जैसे दीर्घ स्वर का अभाव आदि।
4. आरमेयिक लिपि की तरह यह दायें से बाएं की ओर लिखी जाती है।
5. खरोष्ठी के अभिलेखों में कुछ ईरानी शब्द प्रयुक्त हैं, जैसे दृ लेखन या लेख के लिए 'दिपि' शब्द का उल्लेख।
6. ईरानी और भारतीय दफ्तरों में पत्र व्यवहार के लिए अरमेयिक अक्षरों का व्यवहार आरंभ हुआ और बाद में पुरानी ब्राह्मी के अनुसार इस लिपि में कुछ क्रम का परिवर्तन आरंभ हुआ जिससे खरोष्ठी लिपि निकली।
7. किन्तु ये सभी तर्कों का डॉ. पाण्डेय ने निम्न तर्कों द्वारा अस्वीकार कर दिए हैं –
8. पर्शियन सिग्लास में खरोष्ठी अक्षरों का प्रयोग सिद्ध करता है की ईरानी आक्रमण से पूर्व ही खरोष्ठी विकसित रूप में प्रचलित थी।
9. भारत के उत्तर–पश्चिमी के उन क्षेत्रों में जहाँ ईरानी शासकों का शासन था कोई भी ईरानी अभिलेख प्राप्त नहीं होता। डॉ.. मजूमदार ने इन क्षेत्रों में ईरानी शासकों के अधिकार की बात पर भी संशय व्यक्त किया है।

10. खरोष्ठी में दीर्घ स्वरों के अभाव का कारण संभवतः इस कारण रहा होगा की इसका आविष्कार प्राप्त भाषा में लिखने के लिए किया गया हो, जिसमें दीर्घ स्वर स्वतः नहीं मिलते।

11. किसी लिपि के दायें से बाएं लिखे जाने से यह सिद्ध यहीं होता की वह अरोमेयिक या सेमेटिक लिपि से ही निकली हो।

12. डॉ. ब्यूलर द्वारा 'दिपि' को ईरानी शब्द मानना उनकी गलती है, जबकि संस्कृत में 'दीप' शब्द का प्रयोग बहुलता में विभिन्नन रूपों में मिलता है जिसका अर्थ है 'चमकना' और चमकते हुए अक्षरों के लिए दीप व दिपि शब्द का प्रयोग स्वाभाविक है।

उपरोक्त तर्कों से स्पष्ट होता है की खरोष्ठी का उद्भव भारत में ही है। ईरानी प्रशासन में खरोष्ठी का प्रयोग पत्र–व्यवहार की बात कल्पना ही है। ब्राह्मी की भारतीय उत्पत्ति पहले ही सिद्ध की जा चुकी है ऐसे में खरोष्ठी की विदेशी उत्पत्ति का मत निराधार लगता है।

5.6.2 भारतीय उत्पत्ति का मत

खरोष्ठी के भारतीय मूल से उत्पत्ति के समर्थन में विद्वानों ने निम्न तर्क दिए हैं –

1. खरोष्ठी लिपि के आरंम्भिक अभिलेख उत्तरी–पश्चिमी भारत में ही पाए हैं हैं, पश्चिमी एशिया में इसका एक भी अभिलेख या लिखित प्रमाण नहीं मिला है।

2. जिन ईरानी शासकों को खरोष्ठी के उद्भव का स्रोत बताया जाता है उन्होंने अरमेयिक लिपि का प्रयोग अपने प्रशासनिक कार्यों के लिए नहीं किया।

3. मध्य एशिया में खरोष्ठी के कुछ अभिलेख तथा लिखित प्रमाण अवश्य मिले हैं किन्तु यह लिपि पहले वहाँ थी इसका कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि इसका प्रयोग सर्वप्रथम अशोक के काल में ही मिलता है जिसके बाद ही यह लिपि मध्य एशिया में पायी जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है की यह लिपि भारत से मध्य एशिया की ओर गयी होगी।

4. चीनी तुर्किस्तान से बौद्ध ग्रंथ धम्मपद की एक प्रति खरोष्ठी में मिली है जिससे यह प्रश्न उठता है कि यदि खरोष्ठी विदेशी लिपि होती तो इस लिपि में विदेशी ग्रंथ मिलते न की भारतीय ग्रंथ।

5. खरोष्ठी लिपि में अनुस्वार एवं संयुक्ताक्षरों का प्रयोग पाया जाता है। अनुस्वार का प्रयोग भारतीय देन है तथा संयुक्ताक्षरों के भी प्रयोग की भारतीयों की अपनी विधि है। इनका अनुसार खरोष्ठी का भारतीय उद्‌भव का समर्थन करता है।

6. खरोष्ठी लिपि का प्रचलन भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग में प्रचलित थी। इस क्षेत्र में सदा से विदेशी आक्रमणकारियों का आक्रमण होता रहा तथा उनके प्रभाव में रहा। संभव है की यह लिपि उनके साथ मध्य एशिया गई होगी। इस लिपि का प्रयोग भारतीय सीमा में बस्ने वाले यूनानी, बख्त्रि, शक, पह्लव जाति के लोगों ने किया है। ईरानी मुहरों पर इस लिपि का अंकन इसी बात को स्पष्ट करता है की इस मुद्रा का प्रचलन पश्चिमी भारत में था।

7. चीनी विश्वकोश 'फा–वान–शु–लिन' में भारतीय लिपियों में खरोष्ठी लिपि का उल्लेख मिलता है।

8. चूँकि एक मत के अनुसार खरोष्ठी लिपि का जन्मदाता 'खरोष्ठ' नामक व्यक्ति माना जाता है जो की पूर्णतया भारतीय प्रतीत होती है।

9. यदि खरोष्ठी विदेशी लिपि होती तो भारत में भले ही यह समाप्त हो जाती किन्तु भारत से बाहर अवश्य जीवित रहती तथा इसका विकास होता। किन्तु जैसे ही भारत में इस लिपि का चलन समाप्त हो गया, यह लिपि अचानक से विलुप्त हो गई।

10. विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा इस लिपि का प्रयोग किये जाने का एक मात्र कारण यह संभव है की उनका अधिकार उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में था तथा उन क्षेत्रों में यह लिपि प्रचलित थी।

5.7 सारांश

ब्राह्मी के अतिरिक्त खरोष्ठी प्राचीन भारत के सबसे प्राचीन लिपियों में से एक है। खरोष्ठी का प्रयोग मुख्यतः पश्चिमोत्तर भारत सहित मध्य एशिया में होता था। इसका प्रयोग भी ब्राह्मी के साथ ही शुरू हुआ तथा कुषाणों के काल तक प्रचलित था। खरोष्ठी का इतिहास अधिक लंबा नहीं रहा तथा यह शीघ्र ही प्रचलन से बाहर हो गई। इस लिपि का विकास नहीं हुआ तथा यह अपने आरंम्भिक रूप में ही लुप्त हो गई।

अतः उपरोक्त तर्कों से यह स्पष्ट होता है कि खरोष्ठी एक भारतीय लिपि

थी जिसका उद्‌भव, विकास तथा अंत सभी भारत में हुए। सभी परिस्थितियों को धन में रखते हुए निरापद रूप से माना जा सकता है की खरोष्ठी लिपि का भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग में प्रादुर्भाव हुआ, जैसा की चीनी परम्पराओं में सुरक्षित है की इसका आविष्कार भारतीय मनिषियों द्वारा किया गया था। देश के उस भाग में फारसी सीग्लोई खरोष्ठी स्वरों से अंकित है। जब मौर्यों ने उस भाग पर अधिकार किया तो उन्हे भी उस क्षेत्र में खरोष्ठी का प्रयोग करना पड़ा। तत्पश्चात यवनों, पह्लवों, शकों तथा कुषाणों ने ग्रीक के साथ–साथ खरोष्ठी का प्रयोग किया। कुषाणों के राज्यकाल में बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ खरोष्ठी पश्चिमी और उत्तरी प्रदेशों में पहुँच गई तथा चतुर्थ शताब्दी तक प्रचलित रही। विदेशी शक्तियों द्वारा इस लिपि का प्रयोग होना तथा गुप्त साम्राज्य के उदय के बाद ब्राह्मी को राजाश्रय मिलने के बाद इस लिपि का प्रचलन समाप्त हो गया।

5.8 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ.राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ.शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं.गौरीशंकर हीराचंद ओझा

5.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. खरोष्ठी की प्राचीनता पर लेख लिखिए।
2. खरोष्ठी की विदेशी मूल से उत्पत्ति पर दिए गए तर्कों पर लेख लिखिए।
3. खरोष्ठी की भारतीय मूल से उत्पत्ति पर दिए गए तर्कों पर लेख लिखिए।
4. खरोष्ठी की प्रकृति पर लेख लिखिए।
5. खरोष्ठी के लुप्त होने के क्या कारण हैं ?

इकाई 6 : मौर्य व शुंग कालीन ब्राह्मी

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 मौर्यकालीन ब्राह्मी व उसकी विशेषताएं

6.4 शुंगकालीन ब्राह्मी व उसकी विशेषताएं

6.5 ब्राह्मी लिपि के स्थानीय प्रकारों की विशेषताएं

6.6 सारांश

6.7 संदर्भ ग्रन्थ

6.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने ब्राह्मी की प्राचीनता तथा उसके उद्भव का अध्ययन किया। किन्तु ब्राह्मी का विकास अलग अलग काल में अलग अलग क्षेत्रों में लग अलग शैलियों में हुआ। जिससे आज की लिपियों व् लुप्त लिपियों का विकास हुआ। ब्राह्मी के विकासक्रम का अध्ययन भी ब्राह्मी के इतिहास में एक महत्वपूर्ण विषय है। ब्राह्मी का सबसे प्राचीनतम विकसित रूप में ई.पू. तीसरी शताब्दी में मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेखों में मिलता है। जिसके बाद इसका समय के साथ–साथ अलग–अलग क्षेत्रों में विकास हुआ। ई.पू. तीसरी शताब्दी से लेकर ई.पू. पहली शताब्दी में शुंगों के काल तक ब्राह्मी में थोड़े बहुत परिवर्तन आए जिनका अध्ययन हम इस अध्याय में करेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय में हम ब्राह्मी के विकास के प्रथम चरण ई.पू. तीसरी शताब्दी मौर्यकाल से लेकर ई.पू. पहली शताब्दी में शुंगकाल तक ब्राह्मी के विकास तथा उसमें आए परिवर्तनों व उनकी विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

अध्ययन की दृष्टि से ब्राह्मी के विकास के आरंम्भिक चरण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. ई.पू. तीसरी शताब्दी से ई.पू. पहली शताब्दी ई तक (मौर्यकाल–शुंगकाल तक)

2. ई.पू. पहली शताब्दी से छठी शताब्दी ई तक (कुषाणकाल–गुप्तकाल तक)

6.3 मौर्य कालीन ब्राह्मी एवं उसकी विशेषताएं

अशोक ने अपने राजत्व काल में अनेकों अभिलेखों को सम्पूर्ण भारत में उत्कीर्ण करवाया था। सम्पूर्ण भारत में इन अभिलेखों में मुख्यतः ब्राह्मी का प्रयोग किया गया है जबकि शहबाजगड़ी तथा मानसेहरा (जो अब पश्चिमी पाकिस्तान में स्थित है) के लेख खरोष्ठी लिपि में तथा अफगानिस्तान से प्राप्त अभिलेख अरमेयिक तथा यूनानी लिपि में अंकित किए गए हैं। ये लेख शिला, स्तम्भ, फलक व गुहाओं में उत्कीर्ण किए गए हैं। इनकी भाषा प्राकृत है। अशोक के अभिलेख मुख्यतः राजाज्ञायें हैं जो सर्वत्र एक ही रूप में पाई जाती है। विभिन्नन क्षेत्रों में उत्कीर्ण करवायें गए इन अभिलेखों में लेखन शैली में थोड़ा अंतर देखने को मिलता है। इस आधार पर डॉ. ब्यूलर तथा डॉ. पाण्डेय ने इसके लेखन की स्थानीय शैलियों का अनुमान लगाया है। किन्तु महा महोपाध्याय पं. गौरीशंकर ओझा ने स्थानीय शैली को आंशिक रूप से स्वीकार किया है तथा अक्षरों के अंतर को लेखकों के के हाथों का कौशल या सजावट की गति माना है। डॉ.. चंद्रिका सिंह उपासक आदि बाद के अन्वेषकों ने यह बताया है की अशोक कालीन ब्राह्मी के क्षेत्रीय प्रकार नहीं थे।

अक्षरों में भिन्नता का कारण लेखकों के लेखन शैली के कारण रहा होगा इस तर्क की पुष्टि अशोक के अभिलेखों के विभिन्नन वर्गों पर अंकित लिपि को देखने से ही मिलता है। अशोक के अभिलेखों की लिखावट भद्दी है, पं.क्तियाँ कुछ टेढ़ी है, अक्षरों की बनावट कुछ कोणाकार है आदि जिससे स्पष्ट होता है की पत्थरों पर लेख स्थानीय लेखकों द्वारा उत्कीर्ण करवाया जाता रहा होगा। यही बात गुहालेखों में भी देखने को मिलती है। किन्तु भ्रावा से प्राप्त एक मात्र फलक लेख शिलालेखों व गुहालेखों की अपेक्षा अधिक सुंदर, स्वच्छ व कलात्मक लगता है। इनसे भी स्वच्छ व सुंदर अक्षर स्तम्भ लेखों में देखने को मिलते हैं जो सीधी रेखाओं में लिखे गए हैं, साफ साफ कलात्मक ढंग से उत्कीर्ण किए गए हैं। इसका कारण संभवतः राजकीय कलाकारों द्वारा अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाना हो सकता है।

अशोक कालीन ब्राह्मी अक्षरों में निम्न विशेषताएं देखने को मिलती है –

1. इसके अक्षर सीधी रेखा में बने हैं तथा मोड़कर कोणाकार बनाए गए हैं, किन्तु कहीं कहीं इनमें गोलाकार आकृति भी दिखाई देती है।
2. अक्षरों की ऊंचाई लगभग समान है।

3. अक्षरों की ऊंचाई समान बनाए रखने के लिए संयुक्ताक्षरों के लेखन में अक्षरों के आकार छोटे करने का प्रयास किया गया है जैसे म्य ४, स्य ७ आदि।

4. पं.क्तियाँ पूर्णतया सीधी रखने का प्रयास किया गया है फिर भी कहीं कहीं उनमे टेढ़ापन देखने को मिलता है जैसे एरागुड़ी अभिलेख की पं. क्ति से स्पष्ट होता है।

5. इसकी लिखावट बाएं से दायें की ओर है। केवल एरागुड़ी अभिलेख में कुछ अंतर दिखाई देता है। जहाँ कहीं–कहीं एक ही पं.क्ति में कुछ शब्द बाएं से दायें लिखे गए हैं और कुछ दायें से बाएं।

6. **पहलीपं.क्ति ----------><---------- ---------->**

7. **दूसरीपं.क्ति ---------->><----------**

8. **तीसरीपं.क्ति ----------> ---------->**

9. किन्तु यह रीति आगे देखने आगे नहीं देखने को मिलता।

10. ये अक्षर सामान्यतया नीचे की ओर ही खुले हैं तथा ऊपर की ओर प्रायः सीधे उठते हुए ग ∧, क +, द ऽ दिखते हैं जैसे आदि। किन्तुम ४ व झ ४ ये दो अक्षर ऐसे दिखते हैं जो ऊपर की ओर मुंह खोले हुए हैं।

11. ऊपर के उदाहरणों से यह दृष्टव्य है की ये अक्षर सीधी रेखाओं से निर्मित है। इनके बीच में या नीचे दूसरी खड़ी या आड़ी रेखाएं जोड़कर विभिन्नन अक्षरों का निर्माण क +व य ↓ किया गया है जैसे आदि।

12. इनमें ह्रस्व व दीर्घ तथा अनुनासिक का प्रयोग समुचित रूप से प्रचलित

'देवानंपिय पियदसिनो लाजा हेवं आहा'

दिखाई पड़ता है जैसे –

13. इनके शिरो–भाग खुले हैं च ∂ छ ф। इनमें किसी पर भी शिरोरेखा का अभाव है। ण ⊥ में जो शिरोरेखा दिखती है वास्तव में वह वास्तव में शिरोरेखा नहीं है बल्कि ज से भिन्नता दिखाने के लिए बनाई गई है।

14. ज्यामित आकृतियों की तरह अर्धवृत्त, ट C, ठ O, ग ∧, र ।, इः·

वृत्त, कोण, खड़ी रेखा, बिन्दु आदि के सहयोग से निम्न अक्षरों का निर्माण हुआ जैसे

15. प्रायः संयुक्ताक्षरों का प्रयोग बचाया गया है, किन्तु यदि कहीं हुआ है तो उनमें एक निश्चित सिद्धांत का प्रयोग किया गया है। पहले उच्चारण किए जाने वाले अक्षर को ऊपर लिखते थे तथा बाद में उच्चारण किए जाने वाले ‍ अक्षर को नीचे जैसा ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट होता है। किन्तु कहीं कहीं इसका अपवाद भी मिलता है। तथा व्र। किन्हीं स्थानों पर ऊपर नीचे संयुक्ताक्षर की टेढ़ी रेखा 'र' है और शेष 'ब' का भाग है। हो सकता है की यह लेखक की गलती रही हो।

16. लघु शिलालेख सिद्धपुर तथा एरागुड्डी में 'अ' अक्षर जो दृष्टव्य है वह इन दोनों से पहले अभिलेख में यह मोटा है तथा दूसरे में पतला है जैसे – । इसमें मोटाई और पतलाई सर्वत्र समान है ऐसा नहीं की एक ही अक्षर का एक सिरा मोटा हो एर दीसर भाग पतला हो। लगता है की किसी कतकटी कलम से नहीं अपितु शलाका से यह पहले चिन्हित करके पीछे टंकित किया गया होगा। डॉ.. नारायण तथा ठाकुर प्रसाद ने इसे 'शलाका प्रविधि' की संज्ञा दी है।

डॉ. ब्यूलर आदि विद्वानों का मत है की अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि मूलतः शैली के आधार पर दो कोटियों में विभक्त की जा सकती है। उत्तरी शैली और दक्षिणी शैली। यह अंतर कुछ अक्षरों के बनावट के आधार पर ढूँढने का प्रयास किया यह भी धारणा है की स्थानीय प्रभाव के कारण उत्तरी ब्राह्मी शैली के अक्षरों को तीन उप–कोटियों में भी विभक्त किया जा सकता है –

1. कौशांबी, निग्ली वासागर, रामपुरवा आदि के अभिलेखों के अक्षर,
2. भरहुत, सांची, सासाराम और बराबर आदि के अभिलेख आदि के अक्षर तथा
3. धौली, मेरठ, बैरठ तथा रानी द्वारा उत्कीर्ण कराए गए गुहालेखों के अक्षर।

किन्तु आधुनिक शोधकर्ता डॉ. ठाकुर प्रसाद इस वर्गीकरण को उचित नहीं मानते। डॉ..प्रसाद के अनुसार विभिन्नन अभिलेखों में अक्षरों में अंतर किसी क्षेत्रीय शैली की न होकर स्थानीय लेखकों के लेखन में अंतर के कारण है।

6.4 शुंगकालीन ब्राह्मी एवं उसकी विशेषताएं

अशोक के बाद उसके पौत्र दशरथ के समय के तीन अभिलेख नागार्जुनी पहाड़ी की गुफाओं से प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख आकार में छोटे हैं। डॉ. अन्य अभिलेख नेपाल की तराई में स्थित सोहगौरा तथा पिपरहवा से प्राप्त हुए थे जो 'देवनांपियदशि लाजा' से संबंधित हैं, किन्तु राजा का नाम अज्ञात है। इसकी लिपि मौर्य कालीन ब्राह्मी है किन्तु इनके अक्षर अशोक के अभिलेखों के अक्षरों से भिन्न है। डॉ. गौरीशंकर ओझा ने इन्हे बुद्ध के निर्वाण के तुरंत बाद का माना है। किन्तु इनमें व दशरथ के अभिलेखों में समानता दिखाई देती है इस आधार पर ये अभिलेख दशरथ के काल के भी कहे जा सकते हैं। यही मत 'एंटीक्विटीज ऑफ दी तराई ऑफ नेपाल' के लेखक पी. सी. मुखर्जी व डॉ. उपासक व डॉ. ठाकुर का भी है। इनके अक्षर पहले से छोटे तथा अपेक्षाकृत गोल हैं। 'स' अब 'ष' की तरह लिखा गया है। 'ओ' की मात्रा में भी सुधार दिखता है। जहाँ पहले ओ को दो अलग आड़ी रेखाओं नो ((न्+ओ =ा+ा) (एक सीधी रेखा के एक बाएं मध्य में तथा एक ऊपर दायें) द्वारा लिखा जाता था अब इसके लिए एक ही आड़ी रेखा T ऊपर दर्शाया गया है।

मौर्यों के बाद उत्तर व दक्षिण भारत में कई छोटे छोटे राज्य स्थापित हो गए थे। जिनमें उत्तर भारत में कुषाण जो की एक विदेशी राजवंश था प्रमुख शक्ति बनकर उभरा। यवन बख्त्री भी उत्तर पश्चिम भारत में अपने राज्य बना रहे थे। शक–क्षत्रप इसी समय पश्चिमी तथा उत्तर–पश्चिमी भारत में बने हुए थे। इनकी एक शाखा दक्षिण–पश्चिम में भी फैली थी। इनके समकालीन सातवाहन भी दक्कन के क्षेत्र पर शासन कर रहे थे। इन शासकों द्वारा अनेकों लेख इस काल की ब्राह्मी में लिखवाए गए थे जैसे शुंग शासकों के अभिलेख, सातवाहनों व कलिंग के शासक खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख। चूँकि ये अभिलेख विभिन्नन क्षेत्रों में उत्कीर्ण करवाए गए थें, तथा इनमें स्थानीय लेखकों के कौशल व चलन का प्रभाव दिखता है जो आगे चलकर स्थानीय शैलियों के रूप में विकसित हुआ। किन्तु इन अभिलेखों के अक्षर मौर्यकालीन ब्राह्मी में ही थोड़े बहुत अंतर के साथ अंकित की गई है जो की निम्न है –

1. मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में 'अ' H के ऊपर लकीर प्रायः 'आ' H̄ बनाता था किन्तु बाद में 'अ' H के दाईं ओर एक आड़ी–लकीर के रूप में इसे लगाकर आ लिखा जाने लगा।

2. 'इ' की मात्रा पहले कुछ गोलाकार होती थी किन्तु अब कुछ छिछलापन लिए गोलाकार दिखती है।

3. अनुस्वार के लिए विशेष रूप से अक्षरों के दायें किनारे पर बिन्दु ऊपर

की ओर लगाया जाने लगा जैसे आदि।

4. गिरनार के अभिलेख में कोणदार 'इ' का स्पष्ट प्रयोग मिलता है।

5. 'र' का प्रयोग संयुक्ताक्षर में करने के लिए अलग अलग नियमों का प्रयोग दिखता है। कभी यह बगल में तो काभी नीचे की ओर दिखता है।

6. जब दो अक्षरों को संयुक्त करना होता था तब जोड़ा जाने वाला अक्षर मूल अक्षर के नीचे जोड़ा जाता था लेकिन अक्षरों का अनुपात बनाए रखने के लिए मूल अक्षर की अपेक्षा संयुक्त अक्षर छोटा होता था जैसे – आदि।

7. इस काल के अक्षर अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ व पुष्ट दिखाई पड़ते हैं।

8. डॉ. ठाकुर प्रसाद के अनुसार इन अभिलेखों के उत्कीर्णन में जिस लेखनी का प्रयोग होता था इसकी कत कटी होती थी जिससे अक्षरों की मोटाई व पतलाई इच्छानुसार दिखती है।

9. अक्षरों के आधार जो गोलाई लिए हुए थे सपाट हो गए व चपटे होने लगे थे जैसे म ।

10. एक प्रकार की त्रिकोणात्मक शिरोरेखा शीर्ष अक्षरों में दिखने लगी संभवतः यही आगे चलकर शिरोरेखा बन गई।

11. अशोक के काल में अक्षर अधिक लंबे और कम चौड़े होते थे। किन्तु अब लंबाई और चौड़ाई समान होने लगी थी।

12. दीर्घ स्वरों का प्रयोग अधिकाधिक होने लगा क्योंकि अब इसकी भाषा संस्कृत हो गई। स्वर में मात्रा जोड़कर दीर्घ स्वर बनाए जाते थे जैसे अ से ए ।

13. विसर्ग चिन्हों का प्रयोग मिलने लगता है। यह चिन्ह आजकल विसर्ग के लिए प्रयोग किए जाने वाले चिन्हों की तरह बनाए जाते थे।

14. व्यंजनों में ऋ का प्रयोग मिलता है, यथा – कृ ।

15. नए अक्षरों का चलन मिलता है जिन्हे संयुक्ताक्षरों के माध्यम से लिखा जाता था, यथा – ।

डॉ. ठाकुर प्रसाद के अनुसार इन परिवर्तनों के लिए दो तत्वों को उत्तरदायी बताया जा सकता है – एक अक्षरों का सरल स्वरूप तथा दूसरा उनका अधिक प्रयोग होना।

6.5 ब्राह्मी लिपि के स्थानीय प्रकारों की विशेषताएं

1. **गिरनार** – इन सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त जैसा की ऊपर कहा गया है, कुछ स्थानीय विशेषताएं भी विशेष क्षेत्रों में दिखती है। गिरनार के अभिलेखों में सामान्य लेखों की अपेक्षा अधिक अनियमितता दिखाई पड़ती है –

    1.1 संयुक्ताक्षरों में नीचे वाले अक्षर का चिन्ह अधिक कोणाकार बनाया जाने लगा।

    1.2 संयुक्ताक्षरों में संयुक्त किए जाने वाले अक्षर सुविधानुसार कभी–कभी मूल अक्षर के पहले भी रखे जाने लगे।

    1.3 'र' का स्वरूप सद्य परिवर्तित होता रहता था।

2. **उड़ीसा हाथी गुंफा** – खारवेल के हाथी गुंफा अभिलेख के अध्ययन से अक्षरों की बनावट में कुछ अन्य विशेषताएं दिखलाई पड़ती है। शुंगकालीन अभिलेखों से भी यही ज्ञात होता है –

    2.1 अक्षरों का निचला भाग पहले की अपेक्षा अधिक चौड़ा होने लगा जैसे त ।

    2.2 सीधी रेखा वाले अक्षरों का शिरोभाग कुछ मोटा होने लगा। पर जिनमें सीधी रेखा नहीं होती थी उनमें प्रारंभ तथा अंत वाले भाग ही मोटे होते थे।

    2.3 'अ' की मात्रा प्रायः अक्षर की बाईं ओर बिन्दु लगाकर व्यक्त किया था किन्तु यहाँ 'लिं' लिखने में बाईं ओर अनुस्वार लगाया गया है।

    2.4 'आ' की मात्रा प्रायः अक्षरों के बीच में लगी हुई दिखती जैसे – खा , था ।

    2.5 खड़ी लकीरों वाले अक्षरों में खड़ी लकीरों नीचे की ओर बढ़ गई है।

3. **क्षत्रपों के अभिलेख** – क्षत्रपों के अभिलेखों के अक्षरों की बनावट में भी जो लगभग इसी समय के हैं, कुछ अंतर दिखता है। ये क्षत्रप डॉ. क्षेत्रों में थे – उत्तर और दक्षिण में। जहाँ रोजुबल और शोडास के लेख मथुरा तथा उसके पड़ोसी क्षेत्र में मिले हैं, वहीं रुद्रदामन, नहपान आदि के

संबंध के लेख दक्षिणी भारत में मिले हैं। अतः इन दोनों क्षेत्रों में अक्षरों की बनावट में कुछ स्वाभाविक अंतर स्पष्ट रूप से दिखता है।

3.1 केवल 'ल' को छोड़कर सभी अक्षरों को ऊपर की सीधी रेखाएं एक ऊंचाई की बनने लगी।

3.2 यहाँ कलम की कत कुछ अधिक चौड़ी दिखती है। इसी से अक्षरों में मोटाई बनी हुई है।

3.3 ऊपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है की अक्षर ठिगने होने लगे थे।

3.4 'य' की बनावट बदल गई जिसमें नीचे का कुछ भाग कुछ अधिक चौड़ा ⚓ होने लगा था।

3.5 कुछ व्यंजनों के ऊपर लकीर का प्रयोग होने लगा।

3.6 'घ' की बनावट पहले की अपेक्षा अधिक कोणदार होने लगी।

3.7 'च' और 'द' कुछ अधिक आगे और लंबे घसीट अक्षरों की तरह घुमावदार दिखाई देने लगे।

3.8 इन लेखों में पहली बार मध्यम 'इ' का प्रयोग होने लगा।

इस तरह हम देख सकते हैं की मौर्य काल से लेकर कुषाणों के उदय से पूर्व ब्राह्मी का विकास विभिन्नन क्षेत्रों में भिन्न भिन्न तरह से हो रहा था।

6.6 सारांश

ब्राह्मी का इतिहास मुख्यतः अशोक के काल से ही आरंभ होता है, जब अशोक ने अपने धम्मउपदेशों को सम्पूर्ण भारत में शिलाओं, स्तंभों व गुहाओं में ब्राह्मी में लिखवाया। कुछ एक उदाहरण को छोड़कर पूरे देश में इसका रूप लगभग एक समान मिलता है। किन्तु मौर्यों के बाद अलग अलग क्षेत्रों में इसके अलग–अलग शैलियाँ व अनेक नए प्रयोग मिलने लगते हैं। ई.पू. तीसरी शताब्दी से लेकर ई.पू. पहली सदी तक इसका रूप लगभग एक जैसा था, कुछ क्षेत्रों में इसमें नए गुण व नए प्रयोग दिखने लगते हैं। इस काल के अभिलेख मुख्यतः मौर्य, शुंग व सातवाहनों के अभिलेखों के रूप में मिलते हैं। आरंभ में ब्राह्मी का प्रयोग मुख्यतः प्राकृत के लिए होता था इसलिए आरंम्भिक ब्राह्मी में कई कमियाँ दिखती है। किन्तु जब आगे संस्कृत के अभिलेखों के लिए ब्राह्मी का प्रयोग हुआ तब कई नए प्रयोग व नए अक्षरों व मात्राओं का प्रयोग मिलता है। सम्मिलित अक्षरों का भी प्रयोग मिलता है। इस काल में ब्राह्मी का प्रचलन पूरे भारत वर्ष में

हो चुका था तथा ब्राह्मी लिपि में क्षेत्रीय प्रभाव दिखने लगे थे।

अतः हम देखते हैं ई.पू. तीसरी शताब्दी में मौर्य काल में अशोक के अभिलेखों में अपने सबसे प्राचीन विकसित समान्य रूप से लेकर शुंगों के काल में आते आते ब्राह्मी के कुछ अक्षरों में परिवर्तन आने लगता है। यह परिवर्तन स्थानीय भी थे और व्यापक भी थे जिसका विकास आगे भी होता रहा जिससे ब्राह्मी के अनेक प्रकारों का विकास हुआ। जिसका अध्ययन हम आगे की इकाइयों में करेंगे। मौर्यकालीन ब्राह्मी को भारत में वर्तमान की सभी लिपियों के मूल के रूप में माना जा सकता है क्योंकि मौर्य कालीन ब्राह्मी की ही विभिन्नन इसी शाखाओं के रूप में इनका विकास हुआ। यहाँ तक की आज प्रयुक्त देवनागरी आदि लिपियों का मूल भी ब्राह्मी ही है।

6.7 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ. राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ. शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा

6.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. ब्राह्मी के विकास को कितने चरणों में विभाजित किया जाता है ?
2. मौर्य कालीन ब्राह्मी की विशेषताएं बताइए।
3. मौर्य कालीन ब्राह्मी किस काल में प्रयोग में थी ?
4. शुंग कालीन ब्राह्मी की विशेषताएं बताइए।
5. शुंग कालीन ब्राह्मी किस काल में प्रयोग में थी ?

इकाई 7 : कुषाण एवं गुप्त कालीन ब्राह्मी

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 कुषाणकालीन ब्राह्मी की विशेषताएं

7.4 गुप्त कालीन ब्राह्मी की विशेषताएं

7.5 सारांश

7.6 संदर्भ ग्रंथ

7.7 आदर्श अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में हमें ब्राह्मी के आरंम्भिक चरण में मौर्यकाल से शुंगकाल में विकास का अध्ययन किया जिसमें हमने देखा की ब्राह्मी के अक्षरों में धीरे धीरे परिवर्तन आने लगे थे। इनमें कुछ संभवतः क्षेत्रीय थे तो कुछ व्यापक रूप से थे। कुषाणों के काल में ब्राह्मी का विकास नए चरण में दिखने लगता है। अक्षरों में नए प्रयोग देखने को मिलते हैं। अक्षरों को अधिक सुंदर दिखाने का प्रयास किया जाने लगा।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय में हम ब्राह्मी के विकास के द्वितीय चरण ई.पू. पहली शताब्दी कुषाण काल से लेकर छठी शताब्दी में गुप्तकाल तक ब्राह्मी के विकास तथा उसमें आए परिवर्तनों व उनकी विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

7.3 कुषाणकालीन ब्राह्मी की विशेषताएं

लगभग प्रथम शताब्दी ईसवी में उत्तर भारत में कुषाण साम्राज्य का शासन स्थापित हो गया था। वे पश्चिमी दक्षिण में शकों व दक्कन में सातवाहनों के समकालीन थे। इस काल में भी लगभग सभी उत्तर भारतीय राजवंशों से ब्राह्मी का उपयोग अपने अभिलेखों व मुद्राओं में किया था। चूँकि कुषाण इस काल के सबसे शक्तिशाली शासक थे अतः हमें इनकी मुद्राएं व अभिलेख अधिक मात्रा में मिलते हैं। कुषाण शासकों में मुख्यतः कनिष्क, हुविष्क व वासिष्क के

अभिलेख सर्वाधिक मिलते हैं जो प्रायः मथुरा व उसके आसपास के क्षेत्रों में पूर्वी राजस्थान व साँची पाए गए हैं। इनमें से कुछ तिथि युक्त भी है।

इस काल की लिपि में भी समय के साथ–साथ परिवर्तन देखने को मिलता है। इसका कारण संभवतः यह था की पहले ब्राह्मी का प्रयोग प्राकृत भाषा के लिए होता था किन्तु अब संस्कृत का व्यापक प्रयोग होने लगा था। जिसके कारण नए अक्षरों का प्रयोग होना स्वाभाविक था। डॉ. दानी के अनुसार कुषाण शासकों के समय लिपि शास्त्र के आधार पर चार क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है –

1. पश्चिमोत्तर भारत – मथुरा व उसके समीपवर्ती क्षेत्रय
2. पूर्वी भारत – कौशांबी, बोधगया आदि का क्षेत्रय
3. पश्चिमी भारत – मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र का क्षेत्र तथा
4. दक्षिणी भारत – आंध्र, तमिलनाडु का क्षेत्र।

कुषाणकालीन ब्राह्मी का अध्ययन कर विद्वानों ने निम्न विशेषताएं बताई हैं –

1. डॉ. ब्यूलर के अनुसार कुषाणकालीन अक्षर बौने और चौड़े होने लगे थे।
2. इस काल में कलम की कत पहले की अपेक्षा अधिक मोटी तथा पतली दोनों ही प्रकार की होती थी तभी अक्षरों की बनावट में इतना गहरा उतार–चढ़ाव दिखाई देता है।
3. दीर्घ स्वरों का प्रयोग इसके पहले इतना अधिक प्रचलन में नहीं मिलता था, जितना इस समय क्योंकि संस्कृत में दीर्घ स्वरों का प्रयोग किया जाता है। अतएव दीर्घ स्वरों का स्थाई रूप इस काल से दिखने लगता है जैसे -ए∆, ऐ∆, उ ∆, ऊ ∆ आदि।
4. संस्कृत में अनुस्वार व विसर्ग का भी प्रयोग किया जाता है। जिसके लिए अक्षरों के ऊपर एक बिन्दु लगाकर अनुसार तथा अक्षर के बाजू में ऊपर नीचे दो बिन्दु लगाकर विसर्ग बनाया जाता था। अभिलेखों में पहली बार इसका प्रचलन देखने को मिलता था।
5. इस काल की ब्राह्मी में एक नया अक्षर ळ का प्रयोग साँची आदि के अभिलेखों में दिखने लगता है। आज भी कुछ शब्दों में ड के आस–पास कुछ उच्चारण के लिए ळ का प्रयोग किया जाता है जैसे बालगंगाधर तिळक। इसका उत्तर भारत में अपना कोई उच्चारण नहीं है।

6. 'अ' की बनावट नागरी लिपि की तरह दिखने लगती है।
7. 'आ' की मात्रा पहले की अपेक्षा अब नीचे की ओर लगने लगती है।
8. 'उ' की मात्रा कुछ बाईं ओर मुड़ी हुई बनने लगी।
9. 'ण' के ऊपरी लकीर अब बीच में घूमी हुई हिने लगी थी।
10. 'ऋ' का प्रयोग भी दिखने लगते है। इसके लिए अक्षर के नीचे एक तिरछी रेखा जोड़ दी जाती थी जैसे – क ऋ, तृ ऋ।

7.4 गुप्तकालीन ब्राह्मी की विशेषताएं

कुषाणों के पतन के बाद उत्तर भारत में कई छोटे–छोटे राज्य विकसित हो गए थे तथा अगले कुछ शताब्दियों तक कोई एक केन्द्रीय सत्ता नहीं थी। ऐसे में ब्राह्मी को कोई विशेष राजकीय आश्रय नहीं मिला तथा यह क्षत्रिय शैलियों में विकसित होती रही है। चतुर्थ शताब्दी ईसवी के पूर्वार्ध में उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य का उदय होता है जिसमें लगभग समस्त उत्तर भारत पर अगले दो शताब्दियों तक शासन किया। कुषाण काल की ही तरह गुप्तों ने भी अपने अभिलेखों में संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी का अपनी राजकीय लिपि के रूप में प्रयोग किया। गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्णिम काल माना जाता है। इस काल में कला, साहित्य, स्थापत्य, व्यापार, वाणिज्य व अन्य कई क्षेत्रों में सर्वांगीण विकास देखने को मलता है। ऐसे में यह प्रभाव तात्कालिक लिपि पर भी होना स्वाभाविक है।

आरंम्भिक गुप्त शासकों से जुड़े कोई अभिलेख प्राप्त नहीं होते किन्तु चन्द्रगुप्त प्रथम की मुद्राएं अवश्य प्राप्त होती हैं। गुप्त शासकों में प्रथम अभिलेख हमें चतुर्थ गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति के रूप में मिलता है जिसे समुद्रगुप्त के संधिविग्रहिक हरिषेण ने उत्कीर्ण करवाया था। कनिंघम के अनुसार यह लेख मूलतः कौशांबी में उत्कीर्ण करवाया गया था। जिस स्तम्भ पर यह प्रशस्ति उत्कीर्ण करवायी गई है उसी स्तम्भ पर ऊपर मौर्य शासक अशोक का छः लेखों का एक संस्करण, रानी का अभिलेख, कौशांबी के महापात्रों को संघ भेद रोकने संबंधी आदेश, जहाँगीर का लेख तथा परवर्ती काल के एक देवनागरी लेख भी उत्कीर्ण है। समुद्रगुप्त के बाद के सभी गुप्त शासकों के अभिलेख विभिन्नन क्षेत्रों से प्राप्त हो चुके हैं।

इस समय तक ब्राह्मी का विविध क्षेत्रों में विकास हो चुका था। जैसा की हमें पिछले भाग में जाना अक्षरों की बनावट के नवीन प्रयोगों में यह लिपि

निरंतर विकसित होती रही जैसे गिरनार के अभिलेख में अक्षरों के शीर्ष भाग पर लकीर का प्रयोग होने लगा तथा अक्षरों के स्वरूप तथा मात्राओं के आकार में भी परिवर्तन दिखता है।

गुप्तकालीन ब्राह्मी का अशोककालीन ब्राह्मी से तुलनात्मक अध्ययन करने पर गुप्त लिपि की निम्न विशेषताएं ज्ञात होती हैं –

1. गुप्तकाल पूर्व ही अक्षर कोणदार होने लगे थे, किन्तु इस काल में वे पूर्णतः कोणदार हो गया था जैसे –

नागरी	**अशोककालीन ब्राह्मी**	**गुप्तकालीन ब्राह्मी**
घ		
प		
व		

2. कुछ अक्षरों की दाहिनी भुजा पहले की अपेक्षा अधिक लंबी होने लगी थी –

नागरी	अशोककालीन ब्राह्मी	गुप्तकालीन ब्राह्मी
क		
भ		
ड		

3. विसर्ग का प्रयोग नए प्रकार के चिन्हों को लगाकर किया जाने लगा। 'क' तथा 'ष' को छोड़कर शेष अक्षरों के साथ पूर्ववत ऊपर और नीचे डॉ. बिन्दु लगाकर विसर्ग लिखते थे। किन्तु 'क' के साथ इसके पहले)((जिह्वामूलीय) तथा 'प' से पहले उपधमनीय चिन्ह लगाया जाने लगा।

गुप्त काल के शिलालेखों के अतिरिक्त मुद्राओं पर भी अक्षरों का प्रयोग हुआ, किन्तु इनमें अंतर है। शिलालेखों पर अंकित इस काल के अक्षरों की अपेक्षा मुद्राओं पर अंकित अक्षर भिन्न हैं। प्रायः यह परिवर्तन गुप्त राजाओं द्वारा पूर्वी भारत से प्रचलित सिक्कों में ही पाए गए हैं जब तक पश्चिम व दक्षिण भारत के गुप्त अभिलेखों में इनका अभाव है, इस कारण इन्हें पूर्वी प्रकार के अक्षर कहते हैं। फिर भी उदयगिरी के अभिलेखों में 'य' व 'प' की बनावट यथावत है। संभवतः इसका कारण यह रहा होगा की इनको उत्कीर्ण करने वाले

लेखक पाटलीपुत्र से ही आए होंगे। संभवतः यही कारण प्रभावती गुप्त के पूना ताम्रपत्र के अक्षरों की बनावट के लिए भी उत्तरदायी होगा।

गुप्त शासकों के अंतिम चरण में अक्षरों व मात्राओं दोनों के स्वरूप में परिवर्तन आने लगा था। संभवतः इसका कारण क्षेत्र की व्यापकता तथा रुचि की विविधता रही होगी। अक्षरों की दाहिनी भुजा पहले से भी अधिक लंबी होने लगी थी। दाहिनी हाथ की रेखा का निचला भाग शीर्ष के रूप से और अधिक बढ़ा दिया गया। कुछ अक्षरों जैसे ष, म, भ आदि में विशेष विकास देखने को मिलता है जो कुटिल लिपि की ओर बढ़ती दिखती है।

गुप्तों के समकालीन वाकटकों के अभिलेखों में अक्षर गुप्त काल की ही तरह थे किन्तु इनकी शिरोरेखा गुप्तकालीन अक्षरों की शिरोरेखा से भिन्न थी जहाँ शिरोरेखा के स्थान पर बाक्स की तरह आकृति बना दि गई है। जिसके कारण इनको बॉक्स हेडेड अक्षर कहा जाता है। इस तरह भारतीय भू–भाग में ब्राह्मी का विस्तार तथा विकास होता गया। विभिन्नन क्षेत्रों में इसके अलग अलग स्वरूप व शैलियाँ विकसित हुई जिनसे अनेकों लिपियों का उत्पत्ति हुई। इनमें से कुछ आज भी प्रयोग में लाई जा रही है जबकि कई लुप्त हो गई है।

7.5 सारांश

मौर्यों व शुंगों के काल के बाद भारत में कुषाणों का काल आया। कुषाणों के काल में ब्राह्मी में कुछ प्रमुख परिवर्तन आए, अक्षरों कोणदार होने लगे, तथा किनारों की लंबाई को बढ़ाया गया। इस काल के अक्षरों को सुंदरता से लिखने का प्रयास किया गया। कुषाणों के बाद लंबे समय तक भारत में कोई बड़ी राजनैतिक इकाई नहीं थी। इस काल में ब्राह्मी का कोई विशेष विकास देखने को नहीं मिलता। किन्तु जब चौथी शताब्दी में उत्तर भारत में गुप्तों का शासन आया तब पुनः ब्राह्मी का विकास देखने को मिलता है। इनके अक्षरों में अधिक कोणदार हो गए थे। कई अक्षरों में पूर्णतः अंतर देखने को मिलता है। सम्मिलित अक्षरों का अधिक प्रयोग होने के कारण इनके प्रकारों में भी भिन्नता देखने को मिलती है। गुप्तों के बाद भारत में सम्पूर्ण भारत में ब्राह्मी की अलग अलग शाखाएं विकसित होने लगे जैसे नागरी, शारदा, कुटिल, शीर्षपेटिका आदि।

इस प्रकार से हम ब्राह्मी के विकास का दूसरा चरण ई.पू. पहली शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक का विकास देखते हैं। जहाँ आरंभ में ब्राह्मी का प्रयोग केवल प्राकृत भाषा को लिखने के लिए किया जा रहा था वहीं बाद में संस्कृत को लिखने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाने लगा जिससे ब्राह्मी में कई नए अक्षरों व चिन्हों का विकास हुआ। आगे चलकर अक्षर थोड़े कोणदार,

छोटे तथा सुंदर दिखने लगे थे, आगे चलकर इन्हीं अक्षरों में और भी परिवर्तन आये जिनके प्रमाण हमें आगे हर्षकालीन अभिलेखों में तथा पूर्वमध्यकालीन अभिलेखों में मिलते हैं। जिसके बाद ब्राह्मी के कई अन्य प्रकार भी विकसित होने लगते हैं जिसमें बॉक्स शीर्ष, कुटिल लिपि, शीर्षमातृका आदि लिपियाँ थी। आगे चलकर उत्तर ब्राह्मी से ही पहले नागरी लिपि तथा उसके बाद देवनागरी तथा आज की अन्य उत्तर भारतीय लिपियों का विकास होता है।

7.6 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ.राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ..शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा

7.7 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. कुषाण कालीन ब्राह्मी की विशेषताएं बताइए।
2. कुषाण कालीन लिपि किस काल में प्रयुक्त होती थी ?
3. गुप्त कालीन लिपि की विशेषताएं बताइए।
4. गुप्त कालीन लिपि किस काल में प्रयुक्त होती थी ?

इकाई 8 : अभिलेखों के प्रकार एवं महत्व, अभिलेखीय साक्ष्य एवं इसका महत्व और सीमाएं

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 अभिलेखों के प्रकार

- 8.3.1 व्यापारिक लेख
- 8.3.2 तांत्रिक लेख
- 8.3.3 धार्मिक लेख
- 8.3.4 शासन या प्रशासनिक लेख
- 8.3.5 पूजा या समर्पणलेख
- 8.3.6 संस्मारक लेख
- 8.3.7 साहित्य

8.4 अभिलेखों का महत्व

- 8.4.1 साहित्यिक स्रोतों के प्रमाण के रूप में
- 8.4.2 राजनैतिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में
- 8.4.3 आर्थिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में
- 8.4.4 धार्मिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में
- 8.4.5 सम्राज्य इतिहास के स्त्रोत के रूप में
- 8.4.6 लिपि व भाषा के स्त्रोत के रूप में
- 8.4.7 प्रशासनिक इतिहास के स्त्रोत के रूप में
- 8.4.8 विदेशियों के अस्तित्व के स्त्रोत के रूप में

8.5 सारांश

8.6 संदर्भ ग्रंथ

8.7 आदर्श अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारत के विभिन्नन क्षेत्रों से हमें अनेकों अभिलेख प्राप्त होते हैं जिनका इतिहास ई.पू. 3री शताब्दी से आरंभ हो जाता है। जैसा की पिछले अध्यायों में हमने जाना की लेखन कला का इतिहास वैसे तो मौर्य काल से पूर्व का है किन्तु हमें उस काल का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता, जिसका कारण संभवतः लेखन सामग्री के रूप में भोजपत्र, ताड़पत्र, चिथड़ों व रुई के कागजों आदि जैसे नष्ट हो जाने वाले साधनों का प्रयोग करना था। किन्तु सर्वप्रथम मौर्य शासक अशोक ने अपनी राजाज्ञाओं को शिलाओ, स्तंभों व गुहाओं में उत्कीर्ण करवाया ताकि ये स्थायी बने रहे। इसके बाद ही हमें अभिलेखों का प्रचलन देखने को मिलता है जिसमें अनेकों राजवंशों ने अपने अभिलेखों को मूर्ति, प्रस्तर, स्तम्भ, गुहा व ताम्रपत्रों आदि में उत्कीर्ण करवाया। इस अध्याय में हम अभिलेखों के प्रकार, महत्व, अभिलेखीय साक्ष्य के रूप में इनके महत्व व सीमाओं का अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्राचीन काल से भारत में अभिलेखों का प्रयोग अलग अलग उद्देश्यों के लिए किया जाता था। इस कारण विभिन्नन प्रकार के अभिलेख पूरे देश में पाए जाते हैं। अतः इस इकाई का उद्देश्य अभिलेखों के प्रकार व उनके महत्व का अध्ययन करना है।

8.3 अभिलेखों के प्रकार

मुख्यतः अभिलेख दो प्रकार के होते हैं –

1. राजकीय या आधिकारिक – यह स्वयं राजा द्वारा या उनके सामंतों, प्रांतीय शासकों तथा उच्च मंत्रियों द्वारा उत्कीर्ण करवाए जाते थे।
2. लौकिक या वैयक्तिक – लौकिक लेख सामान्य जन द्वारा होते थे यद्यपि वे अंशतः राजकीय लेखों का ही अनुसरण करते थे।

इसकी पुष्टि बाद के धर्मशास्त्र भी करते हैं जैसे स्मृतिचंद्रिका में वशिष्ठ दो प्रकार के लेखों का उल्लेख करते हैं लौकिक (लोगों के) व राजकीय।

राजकीय अभिलेखों को पुनः चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जिनका धर्मशास्त्रों के आधार पर परिभाषा व व्याख्या निम्न है –

1. **शासन**– यज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार शासन की परिभाषा में कहा गया है

की– 'भूमि देकर या दान करके राजा को उसे, आने वाले भद्र राजाओं के परिज्ञान के लिए, लिखित करा देना चाहिए। पुनः राजा की वस्त्र पर या ताम्रपत्र पर अपनी वंशपरम्परा तथा प्रशस्ति, प्रतिगृहीता का नाम, दान का परिमाण और भूमिभाग की सीमाओं के वर्णन से युक्त अपनी मुद्रा से चिन्हित तथा हस्ताक्षर एवं काल देकर स्थायी शासन कर देना चाहिए"।

2. **जयपत्र–** इसकी व्याख्या में कहा गया है की "व्यावहारिक कार्यवाही को स्वयं देखकर तथा प्राड्विवाक से सुनकर राजा को जनसाधारण के सूचनार्थ जय–पत्र देना चाहिए"।

3. **आज्ञापत्र** (अधीनस्थ राजाओं व सामंतों को आदेश के लिए)– वशिष्ठ की परिभाषा के अनुसार "आज्ञापत्र वह कहलाता है जिसके माध्यम से सामंतों, भृत्यों (उच्चकर्मचारियों) या राष्ट्रपालादिकों को कार्य का आदेश दिया जाए।

4. **प्रज्ञापनपत्र–** वशिष्ठ की व्याख्या के अनुसार "प्रज्ञापन वह है (प्रज्ञापन के लिए यह पत्र होता है) जिसके माध्यम से ऋत्विक (यज्ञपुरोहित) पुरोहित (राज्य के धार्मिक विभाग का अधिकारी), प्राचार्य, मान्य तथा अभ्यर्हित जनों के प्रति किसी कार्य का निवेदन किया जाए"।

किन्तु यह विभाजन अध्ययन की दृष्ठि से सही नहीं है अतः डॉ. राजबली पाण्डेय जी ने इसका वैज्ञानिक कर इन्हें 9 भागों में विभक्त किया है जो की निम्न है –

8.3.1 व्यापारिक लेख

डॉ..राजबली पाण्डेय के अनुसार सिंधु–सरस्वती सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त अभिलेख एक प्रकार के व्यापारिक अभिलेख हैं। कुछ मुद्राएं स्पष्ट रूप से व्यापारिक वस्तुओं की गांठों व वैयक्तिक व्यापारिक वस्तुओं जैसे मिट्टी के बर्तनों, पर अंकित करने के लिए प्रयुक्त होती थी। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार यह संभव है की ये मुद्राएं विदेशी व्यापार में रत नाविक व्यापारियों द्वारा प्रयुक्त होती थी तथा इन मुद्राओं में छोटे अभिलेख साधारण अधिकारियों के तथा बड़े अभिलेख उनके स्वामियों की पदवियाँ हो सकती है। तथा ये मुहरें पार–पत्र के रूप में प्रयोग की जाती रही होंगी जब यहाँ से व्यापारी विदेशों में जाते होंगे। इसके अतिरिक्त मिट्टी की बहुत सी मुहरें विभिन्नन पुरास्थलों से प्राप्त हो चुकी है जो संभवतः व्यापारिक विनिमय अर्थात क्रय–विक्रय की सुरक्षा व गोपनीयता के लिए प्रयोग में लाई जाती रही होंगी। मालवसंवत 529 का

कुमारगुप्त–बंधुवर्मन प्रस्तर अभिलेख भी इसी कोटी का है।

8.3.2 तांत्रिक लेख

हड़प्पा पुरास्थलों से पाई गई अनेक मुहरों में छिद्र पाए गए हैं जिनमें संभवतः धागा पिरोकर ताबीज की तरह पहना जाता था। इनमें लेख अभिलिखित हैं जो संभवतः तांत्रिक मंत्र हो सकते हैं। इनके एक बहग में ठप्पा है तथा पृष्ठभाग बिल्कुल सपाट है अर्थात इनका प्रयोग व्यापारिक नहीं रहा होगा। चूँकि इन अभिलेखों को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है अतः निश्चित रूप से यह इनकी विषयवस्तु के बारे में कहा नहीं जा सकता। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है की इनमें अनेक प्रकार के विचित्र पशुओं की आकृतियां बनी हुई संभवतः इनमें अपने–अपने संप्रदायों के विशिष्ट पशुओं द्वारा व्यक्त किए जाने वाले देवताओं के नाम तथा उनके प्रति स्रोत हों। सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त मुहरों पर निम्न पशुओं का अंकन संभवतः सामने दिए गए देवताओं को व्यक्त करते हैं –

1.	कुरंग मृग	चंद्रमा
2.	महिष	यम
3.	ब्राह्मी वृषभ	शिव
4.	हस्ति	इन्द्र
5.	अजा	ब्रह्मा
6.	शश	चंद्रमा
7.	गैंडा	नदी
8.	छोटे सिंग वाले वृष	शिव
9.	व्याघ्र	दुर्गा (मातृदेवी)

8.3.3 धार्मिक और शिक्षात्मक लेख

धर्म या आचार के वर्णन, अवस्था एवं उपदेशों से संबंधित सभी अभिलेख इस कोटि में आ जाते हैं। अशोक ने अपने लेखों को 'धम्मलिपि' कहा है। अशोक के चतुर्थ शिलालेख के इस कथन 'तिन अमूतपदानि इअ सु–अनुठितानि। नेयति स्वयं दय चाग अप्रमाद' से यह स्पष्ट होता है की उसने धर्म के संबंध में इन्हें लिखवाया था। बेसनगर का हेलीयोडोरस गरुड़ स्तम्भ भी

धार्मिक अभिलेख का एक प्रमाण है। परवर्ती युगों में विशुद्ध धार्मिक एवं आचरणात्मक प्रकार के अभिलेख नहीं पाए जाते, धार्मिक और नैतिक विषय पूजा और दानपरक सामग्री से मिश्रित पाए जाते हैं उदाहरणार्थ मालव संवत 493 और 529 के कुमारगुप्त द्वितीय के मंदसौर प्रस्तर–अभिलेख में एक प्रबोधात्मक एवं दार्शनिक टिप्पणी दी गई है।

8.3.4 शासन या प्रशासनिक लेख

गुप्त शासकों के काल में प्रायः धार्मिक भावना से प्रेरित अभिलेख लिखवाए जाते थे, जो शिला, फलक, स्तम्भ, मूर्तियों आदि पर लिखवाए गए थे किन्तु प्रशासनिक लेखों के प्रमाण मौर्य शासक अशोक के अभिलेखों में ही मिलते हैं। यद्यपि ये अभिलेख धर्म और आचार से प्रभावित होकर लिखे गए थे जैसे –

'सर्वत्र मेरे विजित प्रदेश में प्रयुक्त रज्जुक तथा प्रादेशिक (धर्मशिक्षा) तथा अन्य कार्यों के लिए पाँच–पाँच वर्ष में परिभ्रमण करेंगे.... ।

कभी–कभी इन अभिलेखों को लिखवाने का उद्देश्य भी लिखवाया जाता था जैसे बेसनगर गरुड़ ध्वज में अंकित है कि–**'देवदेवस वासुदेवस गरुड़ध्वजे अयं कारिते'**–देवधिदेव वासुदेव के निमित्त यह गरुड़ध्वज स्थापित किया गया है। प्रसंगवत इनमें राज्य की उपलब्धियों और जनकल्याणकारी कार्यों का भी उल्लेख मिलता है जैसे –

"इसलिए मैंने एस प्रबंध किया है कि हर समय – खाने के समय भी हर जगह–अन्तःपुर, गर्भागार, मार्ग यान तथा उद्यान में–प्रतिवेदक आकार मुझे प्रजा की बाटें (अर्थ) सुनाएं। मैं सर्वत्र प्रजा का कार्य करता हूँ। जो कुछ भी मैं स्वयं मुख से देने या घोषित करने के लिए कहूँ, एवं जो कुछ महामात्रों को आवश्यक (आव्ययिक) आज्ञा दी जाए और परिषद में उनके प्रति कोई विवाद या अस्वीकृत हो, तो मुझे हर समय हर जगह सूचित किया जाय।

अशोक की धम्मलिपियाँ "देवानां पियदसी राजा.." से आरंभ होती है। इसमें कभी–कभी राजत्वकाल का भी उल्लेख मिलता है जैसे – **"अठ–बष–अभंसितम देवनप्रियस...."**

"देवताओं के प्रिय की आज्ञा से तोसली नगर के नगर व्यवहारक (नगर प्रशासक) महामात्र से इस प्रकार कहना चाहिए कि जो कुछ मैं सोचता हूँ, वही चाहता हूँ। वह क्या है ? उसे कार्यान्वित करता हूँ और उसकी सूचना समुचित उपायों से देता हूँ। और कार्य को सिद्द करने का मुख्य उपाय है आप लोगों को

शिक्षा देना। आप लोग अनेक सहस्त्र प्राणियों के ऊपर इसलिए नियुक्त किये गए हैं की लोगों का प्रेम मुझे प्राप्त हो।"

विशुद्ध रूप से शासनपरक अभिलेख का उदाहरण ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी के सोहगौरा अभिलेख ताम्रपत्र मे प्राप्त होता है –

"श्रावस्ती के महामात्रों का मानवशीतिकट को आदेश। श्रीमान ऊषाग्राम में ये दो कोष्ठगार स्थापित किये गए हैं। दुर्भिक्ष और अन्य आपत्ति के अवसरों पर त्रिकवेणी, माथुर, चञ्चु, मयूडे और भल्लक ग्रामों में (इनसे) धान्य बांटा जाय। इस (वितरण) में बाधा नहीं होनी चाहिए।"

इस प्रकार का एक अन्य उदाहरण 150 ई का रुद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ अभिलेख से प्राप्त होता है जिसमें प्रजा के हित के लिए सुदर्शन झील के बांध का पुनर्निर्माण का वर्णन है। इसी प्रस्तर पर गुप्त शासक स्कंदगुप्त का भी अभिलेख है जिसमें सुदर्शन झील के पुनर्निर्माण का वर्णन है जिसका प्रासंगिक अंश निम्न है –

"तब क्रम से, ग्रीष्म काल को बादलों के द्वारा विदर्ण कर वर्षाकाल के आने पर लगातार बहुत काल तक अत्यधिक जल–वर्षा हुई जिससे, गुप्त काल की गणना के अनुसार, 136 वें संवत्सर के प्रौष्ठपद मास के छठे दिन की रात को अचानक टूट गया था।"

"..(उसने) बड़े आदर भाव से और अप्रमेय धन व्यय करके महीनों के दीर्घ परिश्रम के अनंन्तर गु. सं. 136 के वैशाख मास के पूर्व पक्ष के प्रथम दिन सुदर्शन झील को 100 हाथ लंबाई 68 हाथ चौड़ाई 7 पुरुष ऊंचाई 200 हाथ.. में सम्यक रूपेण पत्थरों को रख कर बँधवा दिया ताकि चिरंतन काल तक फिर न टूटे।"

इनके अतिरिक्त परवर्ती काल के बहुसंख्यक ताम्रपत्र भी प्राप्त हुए है जो वैसे तो दानार्थ लिखे गए थे किन्तु शासन संज्ञा से अभिहित है और इनमें शासन संबंधी तात्विक सामग्री विद्यमान है उदाहरण के लिए –

"परंभट्टारक महाराजाधीराज श्री हर्ष ..मर्कट–सागर में एकत्रित महसामंत राजाओं, दौस्साधसाधनिक, प्रमातार, प्रतिनिधि, कुमारमात्य, उपरिक, विषयपति, चाट व भट तथा मर्कट–सागर में एकत्र हुए लोगों को आज्ञा देता है। आप लोगों को यह ज्ञात ही है कि, मैंने प्रतिग्रह और दान के नियमों के अनुकूल भूमिच्छिद्रन्याय से भूमिकर एवं राज्य परिवार को प्राप्त होने वाले अन्य करों, परिहारों तथा विषय से पृथक किये गए भूभाग के साथ सीमापर्यंत उल्लिखित

ग्राम भट्टबालचंद्र और भद्र स्वामिकों को दे दिया है। ऐसा जान कर ग्रामवासी जनों को समुचित तौल, माप, भूमि तथा भोग को आज्ञाकारी भाव से इन्हीं के पास ले जाना होगा तथा (उनकी) सेवा और आदर भी करना होगा।"

इसी प्रकार प्रभावती गुप्त का पूना ताम्रपत्र–अभिलेख, शिवस्कन्दवर्मन का हिरहडगल्ली ताम्रपत्र–अभिलेख आदि भी शासन या प्रशासनिक अभिलेखों के उदाहरण है।

इन अभिलेखों में कभी कभी पड़ोसी राजा और उनकी स्थिति का भी वर्णन होता है जैसे बेसनगर गरुड़स्तम्भ में 'कौत्सीपुत्रभगभद्र" का वर्णन आता है जो कि मथुरा में कौत्सीपुत्र भगभद्र के शासन की जानकारी देते हैं अशोक के अभिलेखों में भी पड़ोसी राज्यों व उनके राजाओं का उल्लेख किया है। अशोक ने अपने अधिकारियों को संबोधित करते हुए आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया है। हर्ष के बांसखेड़ा अभिलेख में भी अधिकारियों को आदेश दिया गया है। ऐसे अनेकों अभिलेख शासकों द्वारा अपने अधिकारियों, सामंत राजाओं अथवा प्रजा के लिए आज्ञा भी उत्कीर्ण करवाए जाते थे।

8.3.5 पूजा या समर्पणात्मक लेख

भारतीय इतिहास में अभिलेखीय स्रोतों में पूजात्मक अथवा समर्पण अभिलेखों की संख्या भी प्रशस्यात्मक अभिलेखों की भांति अधिक है। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार हड़प्पा व सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त ताबीजों पर पूजापरक अभिलेखों के होने की पूर्ण संभावना है। पूजात्मक अभिलेखों में प्राचीनतम उदाहरणों में से एक पिपरहवा बौद्ध कलश अभिलेख है। जिसमें भगवान बुद्ध की अस्थि मजूषा का समर्पण लिखा है।

"अपने पुत्रों, भगिनियों और भार्याओं के साथ (बुद्ध के) शाक्य बंधुओं ने भगवान बुद्ध की यह अवशेष–मजूषा को समर्पित है।"

इस प्रकार का एक अधिक प्रौढ़ उदाहरण हेलियोडोरस बेसनगर गरुड़ स्तम्भ–लेख है –

देवदेवस वासुदेवस गरुड़ ध्वजे अयं

कारिते इअ हेलियोडोरेण भाग

वतेन दियस पुत्रेण तख्खसिलासेन

योनदूतेन आगतेन महाराजस

अंतलिकितस उपंता सकासं रञो

कोसीपुत्रस भागभाद्रस त्रातारस

वसेन चतुदसेन राजेन वधमानस द्यद्य

त्रिनि अमुतपदानि इअ सु अनुठितानि

नेयंति स्वर्गं दम चाग अप्रमाद।

इस अभिलेख में एक पूर्ण विकसित समर्पण या पूजापरक अभिलेख के सभी तत्व विद्यमान है। इसके विषयों का निम्नांकित विश्लेषण इस कथन को स्पष्ट करता है –

1. जिसे स्तम्भ समर्पित किया गया उस देवता का नाम और विरुद (देव–देवस वासुदेवस)।
2. स्तम्भ का प्रकार गरुड़ध्वज और उसका स्थापन।
3. अपने विरुद (भागवत), पिता के नाम (दियोन), स्थान (तक्षशिला), उसकी स्थिति और उपाधि (यवनदूत) तथा जिसका प्रतिनिधित्व करता था उस राज्य के नाम (अंतियाल्किडास) के साथ इसके कारणमूल व्यक्ति (हेलियोडोरस) का नाम।
4. माता का नाम (कौत्सी), राजसी उपाधि महाराज तथा विरुद (त्राता) के साथ उस क्षेत्र के ऊपर शासन करने वाले राजा का नाम (भागभद्र)।
5. वर्धमान शासन का शासन वर्ष 14 (वसेन चतुदसेन राजेन वधमानस)।
6. एक आचारपरक उक्ति (या कथन)।

समर्पपरक या पूजा लेख का प्रमुख विषय मूर्तियों की स्थापना या मंदिरों का निर्माण आदि होता है। कुमारगुप्त द्वितीय और बन्धुवर्मन के समय के मंदसौर अभिलेख में समर्पपरक प्रकार का सर्वाधिक प्रौढ़रूप मिलता है। इस अभिलेख के विषय इस प्रकार है।

1. पहले तीन प्रार्थना सम्बन्धी श्लोक–भगवान सूर्य की स्तुति।
2. लाटदेश का वर्ना जहाँ से जुलाहों की श्रेणी ने प्रस्थान किया।
3. दशपुर का आकर्षण जहाँ लाटप्रदेश से श्रेणी आये।
4. दशपुर नगर के अंतर्गत 1.भूमि के परम तिलक रूपनगर, 2.नगर की

झीलों (सर), 3.इसके उपवन तथा 4. विभिन्नन कर्मों से सम्बंधित तथा उच्च चरित्र वाले निवासियों का वर्णन।

5. श्रेणी सदस्यों का गुणगान।

6. श्रेणी द्वारा निर्मित वस्त्र का विज्ञापन।

7. संसार एवं उसके अनेकविध अधिकारों की अस्थिरता का अनुभव।

8. वर्तमान राजाकुमारगुप्त का पृथ्वी पर शासन करने का संकेत।

9. प्रत्नीय राज्य प्रमुख (गोप्ता), विश्ववर्मन तथा उसके पुत्र बन्धुवर्मन के संकेत।

10. दोनों की प्रशस्ति।

11. जुलाहों की श्रेणी द्वारा धन का बड़ा भाग व्यवय करके सूर्यमंदिर का निर्माण।

12. मंदिर की प्रशंसा।

13. मंदिर के निर्माणकाल की ऋतु (हेमंत) का वर्णन।

14. संवत (मालव) वर्ष (493), ऋतु(सेव्यधनस्तने= शरद), मास (सहस्य=पौष), पक्ष (शुक्ल), तथा तिथि (त्रयोदशी)।

15. समुचित विधानों के पश्चात (मंगलाचारविधिना) मंदिर का संस्कार।

16. मंदिर के एक अंश की विशीर्णता।

17. मंदिर का पुनः संस्कार (भूयः संस्कार)।

18. पुनर्निर्मित मंदिर का वर्णन।

19. पुनर्निर्माण का वर्ष, मास, पक्ष तथा तिथि।

20. पुनर्निर्माण की ऋतु(वसंत) का वर्णन।

21. मंदिर के कारण नगर का अलंकरण।

22. मंदिर के दीर्घजीवन की कामना।

23. प्रलेख की वत्सभट्टि द्वारा रचना।

24. खोदनेवाले, लिखनेवाले तथा पढनेवाले के प्रति कल्याण कामना। मांगलिक सूत्र 'सिद्धिरस्तु'।

देश के विभिन्नन भागों से प्राप्त अनेक समर्पणपरक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। उनमें अधिकतर उपरिनिर्दिष्ट अभिलेख के समान शैली का अनुसरण करते हैं। फिर भी उनमें से कुछ में प्रायः प्रशस्ति के रूप में, शासनासीन सम्राटों का विस्तृत वंशक्रम तथा राजनितिक कृतियों का वर्णन है। इसके बाद का एक उत्तम उदाहरण स्कंदगुप्त का भीतरी स्तंभलेख तथा पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख है।

8.3.5 प्रशस्तियां

प्रशस्ति का अर्थ होता है प्रशंसा या गुणगान आदि। राजनैतिक दृष्टि से प्रशंसत्यात्मक अभिलेखों का सबसे अधिक महत्व है क्योंकि वे निम्नलिखित सूचना प्रदान करते हैं –

1. संबंधित शासक का नाम तथा वंशक्रम।
2. राजा का प्रारम्भिक जीवन।
3. उसकी सैनिक, राजनैतिक एवं शासन संबंधी उपलब्धियां।
4. उसके संपर्क में आए हुए समकालीन राज्यों का अस्तित्व एवं पारस्परिक संबंध।
5. राजनैतिक आदर्श आर व्यवहार, शासन व्यवस्था।
6. राजा की व्यक्तिगत विशेषताएं।
7. उसकी आश्रयशीलता, उदारता एवं दानशीलता।
8. तुलना और उपमाओं के रूप में पौराणिक निर्देश।

इन प्रशंसयात्मक अभिलेखों का एक समान्य दोष यह है की इनमें राजाओं के गुणों, शक्तियों या सामर्थ्य के वर्णन में अतिशयोक्ति का भाव दिखता है। तथापि अतिशयोक्तियाँ साधारणतः कथनों में पायी जाती है। विशिष्ट विवरण अपेक्षाकृत अधिक गंभीर होते हैं।

प्रशस्यात्मक अभिलेखों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है –

1. विशुद्ध प्रशस्यात्मक।
2. मिश्रित।

8.3.6 विशुद्ध प्रशस्यात्मक अभिलेख

अशोक के अभिलेखों में जिनमें अशोक के धर्म–विजय (धम्मविजय) का उल्लेख है एक अलग वर्ग है। इनमें प्रशस्ति के सभी महत्वपूर्ण तत्व है की किन्तु, पशस्ति के आवश्यक उद्देश्य, उसकी शैली और ओजस्विता का अभाव है। इनका उद्देश्य शासक की प्रशंसा न होकर धर्म का उपदेश और उसकी व्याख्या करना है। इनकी प्रकृति की शांतिप्रियता ओज प्रकट नहीं करती जो बाद के युद्दशील शासकों की प्रशास्तियों में दिखती है। अशोक का तेरहवाँ शिलालेख इस विषय को स्पष्ट करता है।

"आठ वर्ष पूर्व अभिषिक्त देवएओन के प्रियदर्शी राजा के द्वारा कलिंग जीता गया। ढाई लाख प्राणी वहाँ से (बंदी बनाकर) लाए गए, एक लाख वहाँ आहत हुए और इनसे कई गुणा अधिक की मृत्यु हुई.....कलिंग को जीतकर देवों के प्रिय को यह चिंता है।....धर्म विजय देवों के प्रिय के अनुसार प्रमुख विजय है और यह देवों के प्रिय के द्वारा यहाँ और समीप के 600 योजन तक के प्रदेश में प्राप्त कर ली गई है।...उसी उद्देश्य से यह धर्म लिपि लिखवाई गई है। वह उद्देश्य क्या है ? जो मेरे पुत्रों और प्रपौत्र होगें वे नई विजय प्राप्त करने की न सोचे...शांति व अल्प दंडता उन्हे रुचिकर हो और उसी को विजय माने जो धर्मविजय है।"

विशुद्ध प्रशस्ति का पहला उदाहरण कलिंग के राजा खारवेल के हाथी गुंफा अभिलेख में प्राप्त होता है। यह कालक्रम के अनुसार गौरवपूर्ण शब्दों में खारवेल की कृतियों व उपलब्धियों का वर्णन करता है। इस अभिलेख में प्रशस्ति के लक्षण स्पष्ट अंकित है –

विशुद्ध प्रशस्ति का पहला उदाहरण कलिंग के राजा खारवेल के हाथी गुंफा अभिलेख में प्राप्त होता है। यह कालक्रम के अनुसार गौरवपूर्ण शब्दों में खारवेल की कृतियों व उपलब्धियों का वर्णन करता है। इस अभिलेख में प्रशस्ति के लक्षण स्पष्ट अंकित है –

1. अभिलेख के ऊपर बाईं ओर कोने में बद्धमंगल और स्वस्तिक चिन्ह अरहंतों व सिद्धों को नमस्कार।
2. खारवेल का मूल वंश–ऐल, उसकी राजसी उपाधि–महाराजाधिराज, उसका विरुद–महमेघवाहन, उसका कौटुंबिक विरुद–चेतिराजवंशवर्धन, उसकी स्थानपरक उपाधि–कलिंगाधिपती, उसका व्यक्तिगत नाम–श्री खारवेल।

3. उसका पं.द्रह व्यवर्ष तक का क्रीड़ामय आरंम्भिक जीवन।

4. उसके अगले 9 वर्षों में ज्ञान की विभिन्नन शाखाओं की शिक्षा।

5. 24 वर्ष की अवस्था में राज्याभिषेक।

6. शासन के प्रथम वर्ष में टूटी–फूटी इमारतों का पुनर्निर्माण, तालाबों और झीलों का निर्माण, उद्यानों की स्थापना तथा प्रजा का कार्य।

7. द्वितीय वर्ष में शतकर्णी की उपेक्षा करके, उसने पश्चिम की ओर एक विशाल सेना को भेजा और कृष्ण नदी के तट पर असिकनगर को त्रस्त किया।

8. शासन के तृतीय वर्ष में राजधानी की प्रजा के मनोरंजन के लिये सामाजिक उत्सवों की व्यवस्था की।

9. चौथे राजवर्ष में विद्याधर धीवास नामक राजप्रासाद में प्रवेश किया था रठिकों व भोजकों को परास्त किया।

10. पांचवें राजवर्ष में जल प्रणाली को नगर में लाया जिसका उद्घाटन 300 वर्ष पुर्व नन्द राजाओं ने किया था।

11. छठे राजवर्ष में उसने राजसूय यज्ञ किया तथा लोगों को दान दिया।

12. सातवें राजवर्ष में गोरखगिरी को जीतकर राजगृह पर आक्रमण किया और यवन राजा दियुमेत को मथुरा भाग जाने के लिए विवश किया।

13. नवें वर्ष 38 लाख (अठतिसाय सत–सहसेहि) मुद्राओं के मूल्य से महाविजय प्रसाद बनवाया।

14. दसवें वर्ष भारतविजय के लिए प्रस्थान किया।

15. ग्यारहवें वर्ष परास्त राजाओं का कोष ले लिया और पूर्व राजा की राजधानी पिथुण्ड नगर को गधों से जुटवाया दिया। त्रमिस्र (द्रविड़) देश के संघ को भी तोड़ दिया।

16. बारहवें वर्ष उत्तरापथ के राजाओं को त्रस्त किया, अपने हाथी घोड़ों को गंगा का जलपान कराया। मगध के राजा वृहस्पतिमित्र को चरणों में झुकाया तथा नंदराज द्वारा ले जायी गयी जिन–मूर्तियों को वापस लाया तथा मगध तथा यंग की संपत्ति ले गया।

17. तेरहवें वर्ष में जैन अरहंतों के लिए कुमारी पर्वत पर गुफाओं का

निर्माण करवाया।

18. श्री खारवेल क्षेम का राजा, वृद्धि का राजा, भिक्षुओं का राजा, धर्म का राजा, कल्याणों को देखते, सुनते और अनुभव करते हुए गुणों में विशेष निपुण, समस्त पार्षदों का पूजक, सभी देव प्रतिमाओं का संस्कार करने वाला, अप्रतिहत चक्र तथा सैन्यबल वाला, राजचक्र धरण करने वाला, सुरक्षित राजचक्र वाला, प्रवित्त राजचक्र वाला, राजर्षि वसु–कुलोत्पन्न, महाविजयी राजा श्री खारवेल।

19. नीचे दाहिने कोने पर कल्पतरु।

विशुद्ध प्रशस्ति का एक दूसरा नमूना समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ–अभिलेख है जिनसे प्राचीन भारत के महान शासकों की प्रशस्तियों के लिए आदर्श उपस्थित किया। इसकी विषयवस्तु का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है –

1. समुद्रगुप्त के कुछ प्रारम्भिक सैन्य कार्य।
2. राजा के साहित्यिक कार्य।
3. समुद्रगुप्त का अपने पिता का उत्तराधिकारी बनने के लिए युवराज के रूप में चुनाव।
4. समुद्रगुप्त के शौर्यपूर्ण और अमानुषिक सैन्यपरक और राजनैतिक कृत्य जिन्होंने दूसरे राजाओं को समर्पण के लिए विवश किया।
5. समुद्रगुप्त द्वारा पाटलिपुत्र पर अधिकार और कोत कुल का उन्मूलन।
6. आर्यावर्त के प्रथम युद्ध में नाग, अच्युत, नगसेन, गणपतिनाग इत्यादि के ऊपर विजय।
7. राजा के धार्मिक और साहित्यिक कृत्य।
8. राजा का विरुद पर्यक्रमांकदित्य।
9. राजा के सैनिक गुण।
10. समुद्रगुप्त द्वारा दक्षिणापथ विजय व धर्मविजयी नीति का अनुसरण।
11. आर्यावर्त का दूसरा युद्ध और समुद्रगुप्त द्वारा विजय नीति का अनुसरण।
12. आटविक राजाओं का दमन।
13. दक्षिणपूर्व के सीमांत नृपतियों का आत्मसमर्पण।
14. दक्षिण–पश्चिम की ओर के गणतंत्रों का आत्मसमर्पण।
15. भ्रष्ट राजवंशों का प्रतिष्ठापन।
16. सुदूर उत्तर–पश्चिम के शक–कुषाणों से (अधीनता स्वीकार कराके)

मैत्री संबंध।

17. सिंहल तथा हिन्द महासागर के अन्य द्वीपों के जनों की समुद्रगुप्त के साथ अधीन संधि।
18. समुद्रगुप्त का अद्वितीय चक्रवर्तित्व।
19. समुद्रगुप्त के धार्मिक कार्य।
20. धनद, वरुण, इन्द्र, तथा अंतक (यम) आदि देवताओं से उसकी कार्य–तुलना।
21. अधिकारियों के माध्यम से उसका सुंदर शासन।
22. संगीत कला में प्रवीणता।
23. उसकी उच्च साहित्यिक योग्यता तथा 'कविराज' की उपाधि।
24. समुद्रगुप्त संसार के आश्रय के रूप में।
25. श्रीगुप्त से लेकर समुद्रगुप्त तक गुप्तवंश का वंशक्रम। समुद्रगुप्त की महाराजाधिराज उपाधि।
26. विजय स्तम्भ का खड़ा करना, जिसकी तुलना समुद्रगुप्त के यश का उद्घोष करने वाली पृथ्वी की भुजा से की गयी है।
27. समुद्रगुप्त का यश तीनों लोकों में फैल गया।
28. प्रशस्ति को काव्य कहा गया है।
29. इस प्रशस्ति का रचयिता हरिषेण था जो संधिविग्रहिक (संधि और युद्ध का मंत्री), कुमारामत्य (राजकुमार के पद का उपभोग करने वाला उच्च अधिकारी) एवं महादण्डनायक (सेना का प्रमुख अधिकारी) था तथा महादण्डनायक भवभूति का पुत्र था।
30. तिलभट्ट इस लेख्य का अनुष्ठाता था।
31. यह इच्छा कि प्रशस्ति सभी प्राणियों के सुख एवं कल्याण के लिए है।

मिश्रित प्रशस्ति अभिलेख

मिश्रित प्रशस्तियों की संख्या अनंत है। स्थायी लेख्य के लिखने के लिए प्रत्येक संभव अवसर का प्रयोग समसामयिक राजाओं एवं उनके पूर्वजों के यश को अमर बना देने के लिए किया जाता था। प्रत्येक आधिकारिक, दानपरक, पूजापरक स्मारक लेख्य में और प्रायः इसी प्रकार के प्रत्येक लौकिक लेख्य में शासन करने वाले राजाओं की प्रशस्ति होती थी। लौकिक लेख्यों में लेख और दस्तावेज के कारणभूत लोगों की भी प्रशस्ति होती थी। मिश्रित प्रशस्ति के उदाहरणों में उषवदत का नासिक गुहा अभिलेख, रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ अभिलेख, गौतमिबलश्री के नासिक गुहालेख, वीर पुरुषदत्त के नागार्जुनी कोंडा अभिलेख, चंद्र का महरौली लौह स्तम्भलेख, कुमारगुप्त द्वितीय बंधुवर्मन के काल

का मंदसौर प्रस्तर अभिलेख, स्कंदगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख, स्कंदगुप्त का भीतरी स्तम्भ लेख, यशोधर्मन का मंदसौर स्तम्भ अभिलेख, ईशानवर्मन का हरहा स्तम्भलेख, पुलकेशीन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख, शांतिवर्मन के समय के तालकुंडा स्तम्भ लेख आदि महत्वपूर्ण हैं।

स्मृतयात्मक लेख

उत्तरगुप्त शासकों के बाद एक विशिष्ट लेख लिखवाने का प्रचलन दीखता है, इनका मूल सन्दर्भ दान देने के सम्बन्ध में होता था इस कारण इन्हें दान–शासन अभिलेख कहा जाता है। इस प्रकार के अभिलेख 5 वींशताब्दी से लेकर पूर्व मध्य काल तक मिलते हैं। इस प्रकार के लेख मुख्यतः ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण करवाए जाते थे, जिसका कारण संभवतः यह रहा होगा की दानग्राहीइसको सरलतापूर्वक तथा सुरक्षारीति से अपने पास रख सके तथा वह स्थायी सम्पति उसकी बनी रहे। किन्तु कहीं कहीं शिलाओं पर भी दान–शासन अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाए जाने के प्रमाण मिले हैं।

चूँकि प्राचीन भारत में गृहस्थ के लिए यज्ञ (इष्ट) करना तथा दान देना आवश्यक समझा जाता था इसलिए राजा और प्रजा सभी दान दिया करते तथा स्थायी प्रकार के दान को लिखित करवाते थे। समर्पित वस्तुओं के आधार पर इस प्रकार के अभिलेखों को निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है –

1. वे अभिलेख जिनमें भिक्षुओं, सन्यासियों के आवास अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए गुफाओं का निर्माण या उनके किसी भाग का दान निर्देश है –
2. पूर्ण गुफाओं का परिखनन, जिन्हें कुभा (गुहा), लेन (लयन) तथा सेलघर (शैलगृह) कहते थे। गुहादान अभिलेखों का सर्वप्रथम उदाहरण बिहार के बराबर पहाड़ी पर मिलता हैं जहाँ मौर्य सम्राट अशोक ने दान में दिये थे, जिनमें प्रथम निम्न है –
3. "बारह वर्ष पूर्व अभिषिक्त हुए प्रियदर्शी राजा के द्वारा यह न्यग्रोध–गुहा अजीवकों के लिए दी गयी है।"
4. समर्पण मात्र को लिखित करनेवाला का यह साधारण अभिलेख है। अशोक के पौत्र दशरथ के नागार्जुनी गुहा अभिलेख इसकी अपेक्षा अधिक बड़े तथा दान अभिलेखों के अतिरिक्त तत्वों को लिए हुए हैं –
5. "देवों के प्रिय दशरथ ने अभिषेक के बाद आजीवक महानुभावों को

निवास के लिए, वाहयिका गुहा जब तक चंद्र और सूर्य हैं तब तक के लिए दान कर दी।"

6. दक्षिण का पश्चिमी भाग गुहदान–अभिलेखों की दृष्ठि से अतिसमृद्ध है। इसका संबंध क्षहरात और आंध्र सातवाहन वंशों से है। उड़ीसा में उदयगिरी और खंडगिरी की तथा औरंगाबाद के समीप अजंता में कई प्रकार के दान संबंधी अभिलेख सुरक्षित हैं जिनका विषय निम्नांकित है–

7. दो या अधिक रहने की कोठरियों का परिखनाय इन्हें विगभ (दो गर्भ वाले), चतुभग् (चार गर्भ वाले), पं.चभग (पाँच भाग वाले), इत्यादि कहते थे।

8. चेतियघर, चैत्य, चेतिय, कोठि इत्यादि कहे जाने वाले चैत्य गुहाओं का दान।

9. सभामंडपों, भोजनशालाओं, उपस्थानशालाओं इत्यादि का दान।

10. जलाशयों, तालाबों, कुओं आदि का दान, जिन्हे पानीयक, पानीय–भोजन, वापि, तड़ाक इत्यादि कहा जाता था।

11. गुहाओं के अग्रभाग (घरमुख, गभदार आदि) का दान।

12. चकमपथ (चंक्रमपथ) कहे जाने वाले पथों के दान।

13. स्मारक के रूप में स्तूपों का दान।

14. प्रतिमाओं (भगवत प्रतिमा), हस्ति व यक्ष मूर्तियों, पत्थर के आसन वेदिकाओं (वेयीका) आदि के दान।

15. दानात्मक अभिलेख – ये दान या तो किसी धार्मिक या पवित्र निर्माण के सम्पूर्ण या आंशिक लागत के लिए या भिक्षुओं के भोजन, ब्राह्मणों के भोजन या भूखों के भोजन इत्यादि विभिन्नन उद्देश्यों के लिए अक्षय नीवि के रूप में होते थे। पहले प्रकार के तमाम अभिलेख पश्चिमी घाट में पाये गये हैं। दूसरे प्रकार का प्रतिनिधि उदाहरण हुविष्क के समय का मथुरा अभिलेख है।

16. "सिद्दम (चिन्ह) संवत्सर 28 के गुर्पिय (गॉर्प्यास = भाद्रपद) मास के प्रथम दिन इस पुण्यशाला (धर्मशाला) को सरुकमाण के पुत्र खरासलेन तथा वकन के स्वामी (पति) के द्वारा अक्षयनीति दी गई। उसके ब्याज

(वृद्धि) से प्रतिमास, शुक्लपक्ष (शुद्ध) के चतुर्दशी को पुण्यशाला में सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए (परिविषित्वयं)। प्रत्येक दिवस पुण्यशाला के दवर पर सत्तुओं के तीन 3 आढक, लवण का 1 प्रस्थ, चटनी का 1 प्रस्थ, हरित कलापक के 3 घटक तथा 5 पान पत्र रखने चाहिए। यह अनाथों, भूखों तथा प्यासों को देना चाहिए। जो इससे पुण्य हो वह देवपुत्रषाहि हुविष्क का, जिनको देवपुत्र प्रिय है उनका एवं सम्पूर्ण पृथ्वी का हो। डॉ. श्रेणियों को दो अक्षयनिवियां 550 पुराण की, दी गयी।

17. विभिन्न पदार्थों के दान को लिखित करने वाले अभिलेख इस प्रकार का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण उषवदत का नासिक–अभिलेख है जो इस प्रकार है।

18. "राजा क्षहरात क्षत्रप नहपान के जमाता, दीनीक के पुत्र उषवदत तीन सौ सहस्त्र गायों के देने वाले, बार्णासा नदी पर सुवर्णदान और तीर्थ करने वाले देवताओं और ब्राह्मणों के लिए 16 ग्राम देने वाले, प्रतिवर्ष सौ सहस्त्र ब्राह्मणों को भोजन कराने वाले, प्रभास पुण्यतीर्थ में ब्राह्मणों के लिए आठ भार्याओं के देने वाले, भृगुकच्छ, दशपुर, गोवर्धन तथा शूर्पारक के चार (चतुः) धर्मशालाओं (शालावसय) के आश्रय (प्रतिश्रय) के देने वाले, उद्यानों के स्थापक, तालाबों (तड़ाग) और कुओं के निर्माता, इबा, पारदा, दमन, तापि, करबेणा तथा दहमिका नदियों में नावों से पार जाने को निशुल्क करने वाले, इन नदियों के दिनों तीरों पर विश्रामगृहों (सभा) तथा पौधशालाओं (प्रपा) को बनवाने वाले तथा नानंगोल ग्राम में चरक संप्रदाय के अनुयायियों को 32 सहस्त्र नारियल के मूलों को देने वाले ... ?

19. भूमि और ग्रामों के दान का उल्लेख करने वाले अभिलेख :– पूर्व के अभिलेखों में इनके उदाहरण विरल है। उत्तरगुप्त काल के बाद तमाम अभिलेखों का संबंध, विहारों और ब्राह्मणों को दिए गए क्षेत्रों एवं ग्रामों से है। इस प्रकार का पूर्वतम उदाहरण गौतमी बलश्री के अभिलेखों से जुड़ा हुआ वाशिष्ठी पुत्र पुलुवामी का नासिक अभिलेख है जो इस प्रकार है–

20. "..इस लयन के उत्कर्ष के लिए, पूज्या महादेवी के सेवा और प्रिय को करने का इच्छुक और नाती... दक्षिणापथेश्वर पितरों को प्रसन्न करने के लिए, (भवसिंधु को पार करने के लिए) धर्मसेतु के (निर्माण के) लिए,

त्रिरश्मिपर्वत के वामपार्श्व में स्थित पिसाजि पदक ग्राम को सभी प्रकार के करों सहित देता है।

इस प्रकार के सम्पूर्ण विकसित उदाहरण शासन कहलाने वाले ताम्रपत्र हैं। उनमें से कुछ विशिष्ट महत्वपूर्ण अभिलेख इस प्रकार है :–

1. गुप्त संवत् 159 = 479 ई का पहाड़पुर–ताम्रपत्र अभिलेख।
2. गुप्त संवत् 224 = 543 ई की..गुप्त के समय का दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख।
3. गुप्त संवत् 193 = 513 ई का खोह ताम्रपत्र अभिलेख।
4. प्रभावती गुप्त का पूना ताम्रपत्र अभिलेख।
5. शिवस्कन्द वर्मन की हिरहदुगल्ली ताम्रपत्र अभिलेख।
6. माधव को पेनुकोण्ड ताम्रपत्र–अभिलेख।
7. हर्ष का बासखेरा ताम्रपत्र–अभिलेख, तिथि शासनवर्ष 22 = 628 ई।
8. तीवरदेव का राजिम–ताम्रपत्र–अभिलेख, तिथि शासन वर्ष सातवीं (अठवी शताब्दी का अंतिम चरण)।
9. वाकाटक वंश के ताम्रपत्र–अभिलेख।
10. बादामी के चालुक्यों के ताम्रपत्र–अभिलेख।
11. मान्यखेट के राष्ट्रकूटों तथा उनके उत्तराधिकारियों के ताम्रपत्र अभिलेख।
12. वल्लभी राजाओं के ताम्रपत्र–अभिलेख।
13. प्रतिहारों, गहड़वालों, चेदियों आदि के दान संबंधी अभिलेख। दान संबंधी ताम्रपत्र अभिलेखों के विश्लेषण से उनमें समाविष्ट सूत्रों का कुछ हेर–फेर के साथ, निम्नांकित कम प्रकट होता है।
14. विरुद के साथ या बिना विरुद की मुद्रा (सभी अभिलेखों में नहीं)।
15. कोई मांगलिक शब्द या मंगल।
16. स्थान का नाम, जहाँ से शासन प्रसारित किया गया।
17. राजा का वंशक्रम।

18. शासन का विवरण
19. अधिकारियों तथा अन्य अन्य लोगों की सूची जिनको शासनसंबोधित किया गया।
20. दान का हेतु उदाहरणार्थ दानदाता, उसके माता–पिता, पूर्वजों तथा सम्पूर्ण संसार को पुण्य प्राप्ति।
21. दानपत्रों का उनके वंश, गोत्र, शाखा, प्रवर इत्यादि के साथ, नाम।
22. दान दिये गए क्षेत्रों और ग्रामों की शासन–परक अवस्था।
23. राजकीय कर क्षेत्रों से उसका कानूनी व्यावहारिक विच्छेद,
24. ग्राम को प्राप्त होने वाले कर,
25. ग्राम द्वारा उपभोग छूटे,
26. दान के भाग के लिए निश्चित दंड।
27. दान की शाश्वतता की कामना।
28. आशीर्वादात्मक सूत्र।
29. स्तुत्यात्मक सूत्र।
30. शापात्मक सूत्र।
31. जिस तिथि को शासन किया गया उसका विस्तृत विवरण।
32. राजा के दूतक या प्रतिनिधि का नाम।
33. लेख के तैयार करने वाले अधिकारी, प्रायः संधिविग्राहिक का नाम।
34. खोदने वाले का नाम।
35. राजा का हस्ताक्षर (स्वहस्त) (सर्वथा प्राप्य नहीं)।

संस्मारक

इस प्रकार के अभिलेख किसी महात्मा या वीर पुरुष की जीवन–घटनाओं, जन्म, कोई चमत्कारिक कृति या वीरगति का उल्लेख करता है। इस प्रकार का प्राचीनतम् अभिलेख अशोक का रुम्मनदेई स्तम्भ अभिलेख है जो इस प्रकार है –

"जिसके अभिषेक के बीस वर्ष हो गए हैं ऐसे देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी

राज्य ने स्वयं आकर (इस स्थान की) पूजा की। यहाँ शाक्यमुनि बुद्ध का जन्म हुआ था इसलिए प्रस्तर की विशाल भित्ति बनवाई गई और स्तम्भ खड़ा किया गया है।"

इस अभिलेख में बुद्ध का जन्म एवं जन्मस्थान संस्मृत किये गए हैं। साथ ही अभिलेख उसी मात्रा में अशोक के लुम्बिनीवन के आगमन को भी संस्मृत करता है। भानुगुप्त के समय का 191 गुप्त संवत (590 ई) का दूसरा अभिलेख है जिसमें गोपराज की युद्धभूमि में वीरगति प्राप्त करना तथा उसकी पत्नी का अपने पति की चिता पर सती होना उल्लिखित है। जिसका हिन्दी अनुवाद निम्न है –

"सिद्धम। (सूत्र का सूचक एक मांगलिक चिन्ह) एक सौ इक्यानवे संवत्सर में श्रावण के कृष्ण पक्ष की सप्तमी को। संवत 100, 90, 1 श्रावण वादि 7 ३. पवित्र (शुक्ल) वंश से उत्पन्न राज प्रसिद्धि वाले। उसका अतिवीर राज्य माधव नाम वाला पुत्र (हुआ या था)। उसका प्रसिद्ध पौरुष वाला पुत्र श्रीमान गोपराज हुआ। वह शरभराज का दौहित्र था और अब अपने वंश का तिलक। श्री महाराज भानुगुप्त संसार में बड़े वीर और अर्जुन के समान शूर हैं।

गोपराज उन्हीं के साथ यहाँ मित्रभाव से आया और महान यश वाले युद्ध को करके इंद्रदेव के समान स्वर्ग को गया। उसकी सुंदरी स्त्री जो उसमें भक्ति, अनुरक्ति रखने वाली तथा उसकी स्नेहपात्रा थी, अग्निराशि (चिता) में उसके साथ प्रवेश कर गयी। अर्थात सती हो गयी।

कोल्हापुर के शिलाहारों, कल्याण के चालुक्यों से संबंधित संस्मारक अभिलेख बड़ी संख्या में वर्तमान है और कुछ का संबंध राष्ट्रकूटों, यादवों तथा कोंकण के शिलाहारों से है। ये लेख गद्य में लिखे गए हैं और प्रायः बहुत छोटे हैं। किन्तु कोल्हापुर और कर्नाटक में इस प्रकार जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं वे पद्य में हैं तथा उनमें वीरगति प्राप्त हुए वीरों की अतिशयोक्तिपूर्ण सन्निहित है। एक आदर्श संस्मारक अभिलेख का विश्लेषण निम्नांकित है –

1. अभिलेख की सविवरण तिथि।
2. संस्मृत वीर का वंशक्रम।
3. वीर और उसके पूर्वज का गुणानुवाद।
4. शासनासीन राजा के प्रति निर्देश।
5. वीर की परिलब्धियाँ।

6. जन्म मरणादि संस्मारित घटनाएं।

साहित्य

प्राचीन भारत के कुछ अभिलेख काव्य रचनाओं तथा नाटक कृतियों के अंशों को लिखित करते हैं और उनका उद्देश्य विशुद्ध रूप से साहित्यिक है। धार्मिक उद्देश्य के लिए खोदे गए धार्मिक साहित्य के भी कुछ उदाहरण हैं। उदाहरण के लिए कुशीनगर (उत्तर प्रदेश का देवरिया जिला) के महानिर्वाण स्तूप से एक तरह पं.क्तियाँ का ताम्रपत्र हुआ जिसमें बुद्ध का उदानसुत्त लिखित है।

पत्थर पर खुदी हुई नाट्य कृतियों के सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण अजमेर की 'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा' नाम की मस्जिद में पाए जाते हैं। इनमें एक लेख में 75 पं.क्तियाँ हैं। चाहमान राजा विग्रहराज के सम्मान में महाकवि सोमदेव विरचित ललितविग्रहराज नाटक के बड़े–बड़े अंश इसमें विद्यमान है। दूसरे अभिलेख में 89 पं.क्तियाँ हैं तथा इसमें अजमेर के विग्रहराज (सोमदेव का आश्रयदाता) द्वारा रचे गये हरिकेलि नाटक के अंश उद्धृत हैं।

8.4 अभिलेखों का महत्व

प्राचीन भारत के इतिहास एक स्रोतों में लिखित स्रोत के रूप में साहित्यिक स्रोतों व पुरातात्विक स्रोतों के अंतर्गत अभिलेख सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं। जहाँ साहित्यिक स्रोतों में समकालीन के साथ–साथ बाद के काल के भी वर्णन मिलते हैं जिसके कारण उनमें अविश्वसनीय जानकारियों का मिस्रण भी मिलता है, किन्तु अभिलेख मुख्यतः समकालीन या साक्ष्य ही होते हैं जिसके कारण अभिलेखों का महत्व साहित्यों से अधिक होता है। जैसा की उपरोक्त अध्ययन में हमें जाना की अधिकांश अभिलेख शासकों के द्वारा उनके काल में ही उत्कीर्ण करवाए जाते थे जैसे अशोक, गुप्त, हर्ष आदि शासकों ने करवाया था। भारतीय इतिहास में इतिहास लेखन की कोई व्यवस्थित परम्परा नहीं थी। सभी स्रोत अपने अपने काल में किसी व्यक्ति या वर्गों द्वारा किसी काल–क्षेत्र विशेष के संदर्भ में लिखित करते थे। ऐसे में भारतीय इतिहास क्रम का अध्ययन कठिन हो जाता है। किन्तु हमारे पास इतने साधन अवश्य हैं की उनका अध्ययन करके हमारे इतिहास सरलता से तथा वैज्ञानिकता के साथ तैयार किया जा सकता है। जिनमें अभिलेख प्रमुख भूमिका निभाते हैं जो सम्पूर्ण भारत में बिखरे हुए हैं। इनके माध्यम से हमारा इतिहास पुनः अपने वास्तविक रूप में बाहर आ जाता है। यद्यपि ये अभिलेख राजाश्रित या व्यक्तिगत खुदवाए गए हैं, किन्तु इनमें ऐसी ऐतिहासिकता सामग्रियाँ है जो समकालीन हैं, सत्य तथा विश्वसनीय हैं।

भारतीय इतिहास के कई ऐसे शासन व राजवंश हैं जिनके बारे में जानकारी मुख्यतः अभिलेखों से ही मिलता है। इसका सबसे प्रमुख कलिंग शासक खारवेल हैं जिनके बारें जानकारी मात्र उनके हाथीगुंफा अभिलेख से ही मिलती है जिसमें उनके पूर्वजों, बाल्यकाल तथा शासन काल की उपलब्धियों का क्रमानुसार वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त गुप्त शासक समुद्रगुप्त के महती विजय का हमें काभी ज्ञान नहीं होता यदि उनके संधिविग्रहिक हरिषेण ने उनके विजय अभियानों व चरित्रों का वर्णन में प्रशस्ति न लिखवाई होती। इसी प्रकार के महत्वपूर्ण अभिलेखीय स्रोत मौखरी, उत्तरगुप्त, राष्ट्रकूट, चोल आदि राजवंशों के भी मिलते हैं जिनसे उनका इतिहास ज्ञात होता है।

अभिलेखों का महत्व इतिहास की घटनाओं के क्रमों का सुलझाने में भी रहा है। शक व सातवाहन, गुप्त आदि शासकों का वंश क्रम अभिलेख के माध्यम से ही ज्ञात होता है। उत्तरगुप्त राजाओं के संबंध में अन्य स्रोतों के अभाव में अभिलेख ही प्रमुख जानकारी देते हैं।

अभिलेखों से अनेकों शासकों के व्यक्तिगत चरित्र का भी ज्ञान मिलता है जिसमें प्रसंगवत लेखक अपने शासक की कृतियों की चर्चा करते हुए उसके चरित्र का भी वर्णन करते पाए जाते हैं। कई अभिलेखों का व्यक्तिगत चरित्र के वर्णन में ही विशेष महत्व है क्योंकि अन्य स्रोत इस क्षेत्र में कोई जानकारी नहीं देते। इसका सबसे अच्छा उदाहरण हरिषेण रचित समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति है, और यह समुद्रगुप्त के इतिहास की जानकारी देने वाला एक मात्र स्रोत है। इस प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के गुणों का उल्लेख है की वह विद्या में कविकुल, गुरु था, शस्त्र तत्वार्थ भर्तु था, संगीत में गुरु, नारद और तंबरु के समान था तथा युद्ध में यम और कुबेर की तरह था। इसी प्रकार महरौली के चंद्र अभिलेख तथा पुलकेशिन द्वितीय के अव्होल अभिलेख से भी क्रमशः चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा चालुक्य–वंशीय शासक पुलकेशिन द्वितीय का ज्ञान होता है।

8.4.1 साहित्यिक स्रोतों के प्रमाण कर रूप में

प्राचीन भारत का इतिहास मुख्यतः हमें पुराणों, जैन, बौद्ध तथा अन्य समकालीन साहित्यों से मिलता है, किन्तु इनमें कभी–कभी एकरूपता, या क्रम का अभाव रहता है ऐसे में अभिलेखीय साक्ष्य इन तथ्यों की पुष्टि तथा वैज्ञानिक शोध के लिए सहायक सिद्ध होते हैं तथा साहित्यिक जनकरियों की पुष्टि के लिए प्रमुख प्रमाण के रूप में स्थापित होते हैं। पुराणों तथा विभिन्नन साहित्यिक स्रोतों से मिलने वाले राजवंशों व शासकों के अस्तित्व की पुष्टि के लिए भी अभिलेखों का विशेष महत्व है उदाहरण के लिए यदि मौर्य, सातवाहन,

कुषाण, गुप्त शासक व अन्य राजवंशों के अभीलखीय साक्ष्य नहीं मिलते तो उनके इतिहास सदैव संदेहास्पद राहत। उदाहरण के लिए गुप्त शासक रामगुप्त के बारे में जितनी भी जनक्रियाँ प्राप्त थी वह साहित्यिक थी अभी अभी मध्य प्रदेश से प्राप्त तीन जैन मूर्तियों के पदाधारों पर 'महाराजाधिराज श्रीरामगुप्त' अंकित होने से रामगुप्त के महाराज होने की पुष्टि होती है। इसी प्रकार अयोध्या के धनदेव अभिलेख से यह ज्ञात होता है की पतंजलि ने अश्वमेध यज्ञ करवाया था।

8.4.2 राजनैतिक इतिहास के स्रोत के रूप में

अभिलेखों का सबसे अधिक महत्व राजनैतिक इतिहास के क्षेत्र में होता है। कुषाणों के बाद से गुप्तों के काल के बीच का इतिहास हमें ज्ञात नहीं होता है यदि जो की समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति के अन्वेषण से ज्ञात हो सकता है जिसमें समुद्रगुप्त के आर्यावर्त के युद्ध और दक्षिणापथ अभियान में अनेकों राज्यों व शासकों पर विजय का वर्णन है जो यह तत्कालीन भारत में अस्तित्व में रहे राज्यों व राजनैतिक इकाइयों का वर्णन करता है। इसी प्रकार शक व सातवाहन शासकों के अभिलेख दक्षिण भारत की राजनैतिक स्थिति का ज्ञान देते हैं। खरवेल के हाथीगुंफा अभिलेख से भी उत्तरमौर्यकाल की राजनैतिक स्थिति की जानकारी मिलती है। ऐसे अनेक अभिलेख भारत के सभी क्षेत्रों में प्राप्त होते हैं इस प्रकार के अभिलेख गुप्तों के बाद अधिकांश देखने की मिलते हैं।

8.4.3 सामाजिक इतिहास के स्रोत के रूप में

अभिलेखों से तात्कालिक सामाजिक इतिहास का भी ज्ञान होता है। अशोक के अभिलेखों से मौर्यकाल में सामूहिक परिवार प्रणाली के संकेत मिलते हैं। अन्तःपुरों का उल्लेख बहुविवाह प्रथा की ओर संकेत करते हैं। शक–सातवाहनों के अभिलेखों से अन्तर्जातीय विवाह का ज्ञान होता है वहीं पाल काल के दामोदर ताम्रपत्रों से शिक्षा के संबंध में जानकारी मिलती है।

8.4.4 आर्थिक इतिहास के स्रोत के रूप में

कई अभिलेखों से तात्कालिक राज्य व समाज के आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। दूसरे किसी साधन के अभाव में अभिलेखों से ही कई राजवंशों के काल में भारत अथवा किसी क्षेत्र विशेष की आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ शक–सातवाहनों के अभिलेखों से दक्षिण भारत तथा गुप्त शासकों के अभिलेखों से उत्तर भारत की आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है और उसका प्रमाण उनके द्वारा जारी किये गए स्वर्ण सिक्कों से भी पता चलता है।

8.4.5 धार्मिक इतिहास के स्रोत के रूप में

कई अभिलेख प्राचीन भारत में तात्कालिक धार्मिक स्थिति की भी जानकारी देते हैं। इनमें शासकों के व्यक्तिगत मत तथा राज्य के प्रमुख मत–संप्रदाय का भी ज्ञान होता है। इसका सबसे प्राचीन उदाहरण अशोक के अभिलेख हैं जिन्हें अशोक ने धम्मलिपि के नाम से उत्कीर्ण करवाया था। अशोक ने अपने अभिलेखों में धम्म पालन का उपदेश दिया है तथा अपने धम्म विजय के मार्ग का वर्णन किया है। इन अभिलेखों से मौर्यकाल में ब्राह्मण, श्रमण, आजीवक आदि धार्मिक संप्रदायों का चलन था। अशोक ने ऐसे राष्ट्रधर्म का प्रचलन किया जिसमें सभी धर्मों की बाटें सम्मिलित थी, जबकि अशोक व्यक्तिगत जीवन में बौद्ध मत का पालन करता था। इसी तरह गुप्त शासकों के अभिलेखों से आरंम्भिक गुप्त शासकों से लेकर स्कंदगुप्त तक के शासकों के भगवतानुयायी (वैष्णव) होने का ज्ञान होता है। जबकि उनके बाद के शासकों की रुचि बौद्ध धर्म की ओर रुचि देखने को मिलती है। पाल राजाओं के अभिलेख वज्रयान बौद्ध संप्रदाय के आगमन का परिचय देते हैं तथा उनके बौद्ध धर्मानुयायी होने का ज्ञान देते हैं।

8.4.6 साम्राज्य विस्तार के स्रोत के रूप में

गुप्त शासकों के काल से सम्पूर्ण भारत में ऐसे अनेक अभिलेख मिलते हैं जिनमें शासक अपने युद्ध विजय, शासन क्षेत्र तथा दान दिए गए क्षेत्रों का वर्णन करते थे। जिससे उन शासकों के साम्राज्य विस्तार की जानकारी मिलती है। इन अभिलेखों से मुख्यतः दो प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है– 1. अभिलेख के प्राप्ति का स्थान, 2. अभिलेख में वर्णित स्थान या क्षेत्र। उदाहरण के लिए अशोक के अभिलेख अफगानिस्तान से लेकर कर्नाटक तक विस्तृत हैं जिससे अशोक के विस्तृत साम्राज्य की जानकारी मिलती है। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है की उसने आर्यावर्त में दो युद्ध किये थे तथा दक्षिणापथ का भी अभियान किया था जिसमें उनसे कई राज्यों को परास्त कर ग्रहणमोक्षानुग्रह नीति के अंतर्गत संधि करके छोड़ दिया। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य विजित क्षेत्रों का उल्लेख महरौली स्तम्भ लेख में मिलते हैं। कुमारगुप्त के साम्राज्य की जानकारी उसके अभिलेखों से ही मिलती है। उत्तर मध्यकाल से कई शासकों ने युद्धों में विजय से जुड़े अभिलेख उत्कीर्ण करवाए है।

8.4.7 लिपि व भाषा के स्रोत के रूप में

अभिलेखों से हमें तत्कालीन प्रचलित भाषा व लिपि का ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए मौर्य शासक अशोक के भारतीय सीमा में पाए गए अधिकांश अभिलेख प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में हैं इसका अर्थ यह है की मौर्यकाल में प्राकृत प्रमुख प्रचलित भाषा थी तथा ब्राह्मी प्रचलित थी, जबकि उत्तर–पश्चिमी भारत के अभिलेख खरोष्ठी, ग्रीक व अरामेयिक लिपि में लिखवाए गए थे जिससे भारत के उत्तर–पश्चिम क्षेत्र में खरोष्ठी, ग्रीक व अरामेयिक लिपि प्रचलित थी। जबकि शुंग व कुषाण काल के बाद अधिकांश अभिलेख संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में लिखे हुए है, तथा बाद में कुषाणों व गुप्तों के काल में ब्राह्मी का भी विकास समय–समय में देखने को मिलता है। इसके बाद क्षेत्रीय भाषाओं व लिपियों में भी कई अभिलेख उत्कीर्ण करवाए गए जो उस क्षेत्र–काल में प्रचलित लिपि व भाषा का ज्ञान होता है। अभिलेखों से शासन द्वारा राजाश्रित लिपि व भाषा का भी ज्ञात होता है।

8.4.8 प्रशासनिक इतिहास के स्रोत के रूप में

अनेकों अभिलेखों में किसी राजतन्त्र की शासन व्यवस्था व प्रशासनिक अधिकारियों के बारें में महत्वपूर्ण विवरण मिलता है। इससे किसी काल में किसी साम्राज्य के प्रशासन की व्यवस्था तथा प्रशासनिक तंत्र का अध्ययन करने में सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ अशोक के अभिलेखों में उसके अधिकारियों का उल्लेख मिलता है जैसे धम्म महामात्र, युत, राजुक, नगरव्यावहारिक आदि। इनमें कर के सिद्धांत, शासन की नीति आदि का भी ज्ञान होता है। इसी प्रकार गुप्त शासकों के अभिलेखों से उनके प्रशासनिक पदाधिकारियों आदि का ज्ञान मिलता है जैसे संधिविग्रहिक, प्रधान सचिव, उपरिक, कुमारमात्य आदि। हर्ष के अभिलेखों में लोकपाल, भुक्ति उपरिक, राष्ट्रीय, राजस्थानिक आदि शब्द आते हैं जो हर्षकालीन राज्यव्यवस्था का ज्ञान कराते हैं दक्षिण भारतीय अभिलेखों में मंत्रिपरिषद का संगठन, मंत्री, कर के सिद्धांतों का ज्ञान मिलता है।

8.4.9 विदेशियों के अस्तित्व के स्रोत के रूप में

कई अभिलेखों से हमें प्राचीन भारत में विदेशियों के आगमन, आक्रमण अथवा उनसे भारत के संबंधों के बारें में महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए बेसनगर का हेलियोडोरस स्तम्भ जो तक्षशिला के यवन शासक अंतिलिकितस के राजदूत ने स्थापित करवाया था। इसी प्रकार स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से हमें हूणों के भारत में आक्रमण की जानकारी

मिलती है। इंडो–ग्रीक शासक मिलिंद (मिनाण्डर) के तक्षशिला राजतपत्र से हमें उसके बौद्ध धर्म स्वीकार करने का प्रमाण मिलता है। शक व कुषाण शासकों के अभिलेखों से उनके भारतीय धर्मों को स्वीकारने तथा भारतीयकरण होने के प्रमाण मिलते है।

8.5 सारांश

प्राचीन काल से अनेकों व्यक्तियों द्वारा अथवा शासकों द्वारा विभिन्नन अवसरों पर अनेकों अभिलेखों का उत्कीर्णन करवाया है जो तात्कालिक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक इतिहास को लिए हुए हैं तथा हमें उस काल के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक इतिहास का अध्ययन करने में सहायता प्रदान करते हैं। अभिलेखों का भारतीय इतिहास के अनुसंधान व वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने में सर्वाधिक महत्व माना जा सकता है जो हमें सुनिश्चित व अपरिवर्तित जानकारियाँ देते हैं जो हमें साहित्यों में परिवर्तन आदि के कारण शुद्ध रूप से नहीं मिलता। अभिलेखों का प्रयोग मुख्यतः अशोक के काल से देखने को मिलता है, किन्तु अशोक ने इन अभिलेखों में मुख्यतः उपदेश दिए हैं एवं कहीं–कहीं इनमें राजाज्ञायेँ देखने की मिलती है। किन्तु अशोक के बाद विभिन्नन राजवंशों ने अलग–अलग उद्देश्यों के लिए अभिलेखों का प्रयोग किया। हमें विभिन्नन काल में अलग अलग प्रकार के अभिलेखों का विकास देखने को मिलता है जैसे प्रशासनिक, दान संबंधी, प्रशस्ति, स्मृतियात्मक, निर्माण, धार्मिक अभिलेख आदि। इतिहास के अध्ययन में अभिलेखों का विशेष महत्व है। अभिलेखों को प्रामाणिक साक्ष्य के रूप में लिया जाता है। अभिलेखों से हमें किसी राजवंश व घटना के काल, स्थान, राजवंशों के वंशक्रम, साम्राज्यों के विस्तार आदि का पता चलता है। इसी प्रकारइन विभिन्नन प्रकार के अभिलेखों के अलग–अलग महत्व भी है।

8.5 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि– डॉ.. राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन– डॉ.. शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला– पं..गौरीशंकर हिराचंद ओझा
4. आर्कियलॉजीकल सर्वे एन्युअल रिपोर्ट 1906–07
5. आर्केयोलॉजीकल सर्वे एन्युअल रिपोर्ट 1908–09
6. मोहनजोदाडो एंड इंडस सिविलाइजेशन, खंड 2

8.6 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. अभिलेख किसे कहा जाता है ?
2. अभिलेख के प्रकारों का उल्लेख करते हुए उनकी विशेषता बताइए।
3. अभिलेखों का क्या महत्व है ?
4. अभिलेखीय साक्ष्यों का इतिहास के अध्ययन में क्या महत्व है ?

इकाई 9 : अशोक का लघु स्तम्भलेख (रूम्मनदेई)

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 मूल छाया (ब्राह्मी)

9.3 अभिलेख का मूल पाठ

9.4 अभिलेख का हिन्दी अर्थान्तर

9.5 लिपि, भाषा व् तिथि

9.6 अभिलेख का महत्व

9.7.1 राजनैतिक महत्व

9.7.2 धार्मिक महत्व

9.7.3 आर्थिक महत्व

9.8 भाषा व लिपि ज्ञान में महत्व

9.8 सारांश

9.9 संदर्भ ग्रंथ

9.10 आदर्श प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

मौर्य सम्राट अशोक ने अपने राज्यत्वकाल में अपने सम्पूर्ण सम्राज्य में अनेकों अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाया था, जिन्हें शिलाओं, स्तंभों व गुहाओं में लिखवाया था। इन अभिलेखों की प्रमुख विषय अधिकांशतः धम्म के उपदेश का प्रचार करना था, किन्तु कहीं कहीं ये अन्य उद्देश्यों के लिए भी लिखवाये गए थे जिनमें से एक अभिलेख रुममनदेई अभिलेख है। अध्ययन की सुविधा के लिए यह अभिलेख लघु स्तम्भ लेख के अंतर्गत रखा गया है।

यह अभिलेख मौर्य सम्राट अशोक द्वारा अपने राजत्वकाल के 20 वें वर्ष में बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी की यात्रा के उपलक्ष्य में नेपाल की तराई में स्थित पिपरिया के निकट रुम्मनदेई मंदिर में एक शिला–स्तम्भमें उत्कीर्ण

करवाया था। इस स्तम्भ लेख की खोज नेपाल की सेना के प्रमुख खदगा शमशेर जंग बहादुर राणा ने दिसंबर 1896 में किया था।

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम मौर्य सम्राट अशोक के रुम्मनदेई अभिलेख (छायाचित्र पृ 188) के मूल पाठ व हिन्दी अर्थान्तर तथा इसके भारतीय इतिहास में राजनैतिक, धार्मिक व अन्य क्षेत्रों में महत्व का अध्ययन करेंगे।

9.2 मूल लेख

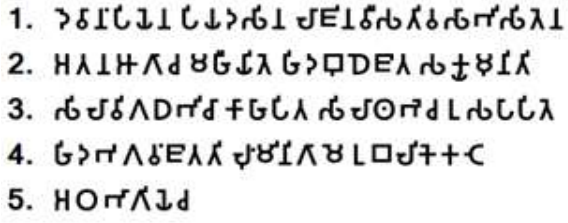

मूल पाठ

1. देवानंपियेनपियदसिनलाजिनवीसतिवसाभिसितेन
2. अतनआगाचमहीयितेहिदबुधेजातसक्यमुनिति
3. सिलाविगधभिचाकाहापितसिलाथभेचउसपापिते
4. हिदभगवंजाततिलुंमिनिगामेउबलिकेकटे
5. अठभागियेच।।

9.3 हिन्दी अर्थान्तर

1. राज्याभिषेक के बीस वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा
2. यहाँ स्वयं आकार पूजा की गई क्योंकि यहीं बुद्ध शाक्यमुनि जन्म लिए थे।
3. यहाँ पत्थर की दृढ़ दीवार बनवाई गई और शिलास्तम्भ खड़ा किया गया
4. क्योंकि यहाँ भगवान बुद्ध उत्पन्न हुए थे। अतएव लुम्बिनी ग्राम को करमुक्त किया गया
5. और अष्टभागों बनाया गया।

9.4 लिपि, भाषा व तिथि

यह अभिलेख अशोक द्वारा उसके 20 वे अर्थात (लगभगतीसरी सदी ई.पू)

राज्यवर्ष बुद्ध के जन्मस्थान की यात्रा के समय उत्कीर्ण करवाया था, अतः स्पष्ट रूप से इस लेख की लिपि अशोक कालीन ब्राह्मी है तथा इसकी भाषा प्राकृत है जो अशोक के भारत में पाए जाने वाले लगभग सभी अभिलेखों की भाषा है।

9.5 अभिलेख का महत्व

अशोक के रुम्मनदेई अभिलेख भारतीय इतिहास के अध्ययन कई कारणों से महत्वपूर्ण हैं जिनका अध्ययन हम आगे करेंगे जो भारत के इतिहास में मौर्य शासक व उसके बौद्ध धर्म के प्रति झुकाव का प्रमाण देता है।

9.5.1 राजनैतिक महत्व

यह अभिलेख मौर्य सम्राट अशोक ने अपने राजत्व काल के 20 वर्ष में उत्कीर्ण लुम्बिनी यात्रा के समय करवाया था, जिससे यह सिद्ध होता है की उसका राजत्व काल 20 या उससे अधिक ही रहा होगा यद्यपि अशोक के राजत्वकाल में आगे के समय में उत्कीर्ण करवाये गए अभिलेख भी प्राप्त होते हैं किन्तु यह अभिलेख उस समय महत्वपूर्ण हो जाता यदि वे अभिलेख प्राप्त नहीं हुए होते। क्योंकि भारतीय इतिहास में ऐसे कई उदाहरण है जब किस क्षेत्र व काल में अनेक शासकों का राज्य अनेकों बार बदला है।

इस अभिलेख की प्राप्ति स्थान के आधार पर अशोक के विस्तृत साम्राज्य का भी ज्ञान मिलता है। अशोक का साम्राज्य कितना विस्तृत था यह उसके द्वारा पूरे भारतवर्ष में उत्कीर्ण करवाए गए अनेकों अभिलेखों से ही ज्ञात होता है जो की उत्तर पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक तथा पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में बंगाल उड़ीसा तक विस्तृत था। इसी राज्य क्षेत्र में हिमालय की तराई में स्थित वह क्षेत्र जो आज लुम्बिनी, कपिलवस्तु के क्षेत्र में आता है भी रहा होगा तभी अशोक ने इस स्थान पर स्वयं जाकर बुद्ध के जन्मस्थान पर यह अभिलेख उत्कीर्ण करवाया।

9.5.2 धार्मिक महत्व

जैसा की हमें ज्ञात है कि अशोक बौद्ध मत का अनुयायी था, तथा उसने अपने अभिलेखों के माध्यम बौद्ध धर्म के संदेशों को पूरे भारत में प्रसारित किया। उसने भारत से बाहर भी अनेक मिशनरियाँ भेजी जो म्यांमार, श्रीलंका आदि देशों में गए। वह स्वयं भी बौद्ध संघ के अत्यंत निकट रहा। वह अपने अनेकों अभिलेखों में बौद्ध मत के प्रति अपनी आस्था का उल्लेख करता है अशोक के अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है अपने राज्यकाल के आठवें वर्ष में उसने कलिंग का युद्ध जीता था जिसके बाद से वहकी धीरे धीरे बौद्ध धर्म का अनुयायी बन

रहा था तथा कई वर्षों से बौद्ध संघ के प्रभाव में थे। इस क्रम में उसने कई अभिलेखों को पूरे भारतवर्ष में उत्कीर्ण भी करवाया। 8 वें शिलालेख से हमें ज्ञात होता है की अशोक ने अपने राजत्वकाल के 10वे वर्ष में बोधगया की यात्रा की थी। जिसके 10 वर्ष बाद (20 वें राज्यवर्ष) में वह पहली बार भगवान गौतम बुद्ध की जन्मस्थली गया। जहाँ उसने शाक्यमुनि (बुद्ध) के जन्मस्थली पर पत्थर की एक दीवार बनवाई, और एक शिला स्तम्भ खड़ा करवाया जिस पर उपरोक्त लेख उत्कीर्ण करवाया गया इस अभिलेख के माध्यम से हमें अशोक के बौद्ध मत के प्रति आस्था का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। यह अशोक के लुम्बिनी यात्रा का एक प्रमाण भी है।

9.5.3 आर्थिक महत्व

रुम्मनदेई अभिलेख में अशोक ने लुम्बिनी ग्राम को कर मुक्त करने का आदेश दिया, जिससे मौर्य काल में कर प्रणाली विद्यमान होने का प्रमाण मिलता है। उसी प्रकार उत्पादन के आठवें भाग को राज्य को देने का आदेश दिया गया है जिससे यह ज्ञात होता है की कर के रूप में उपज व उत्पादन का कुछ भाग राज्य को देने की व्यवस्था थी।

9.6 भाषा व लिपि ज्ञान में महत्व

इस अभिलेख की लिपि मौर्यकालीन ब्राह्मी है तथा भाषा प्राकृत है, जैसा की हम जानते हैं की अशोक के अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी में लिखवाए गए हैं इससे यह ज्ञात होता है की नेपाल के उस क्षेत्र में जहाँ यह स्तम्भ लेख स्थित है प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि प्रचलित रही होगी। इस अभिलेख में भगवान बुद्ध के लिए 'शाक्यमुनि' (𑀰𑁆𑀬𑀫𑀼𑀦𑀺) शब्द का प्रयोग हुआ है जो की प्राकृत शब्द सकमुनि (𑀲𑀓+𑀫𑀼𑀦𑀺) का अंशतः संस्कृत रूप है जबकि इसका पूर्णतः संस्कृत रूप 'शाक्यमुनि' (𑀰𑁆𑀬𑀫𑀼𑀦𑀺) है। प्रथम शताब्दी से पूर्व हमें संस्कृत भाषा का प्रयोग देखने को नहीं मिलता। किन्तु शाक्यमुनि शब्द लुम्बिनी अभिलेख में ही देखने को मिलता है जबकि इसका अन्य रूप 'साकीय' पिपरहवा बौद्धपात्र अभिलेख में, बौद्ध साहित्यों में 'सका' व 'शका' एवं 'सक' भरहुत स्तूप अभिलेख में प्राप्त होता है।

9.7 सारांश

अतः अशोक का रुम्मनदेई अभिलेख राजनैतिक, धार्मिक व आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है जिसमें अशोक के राजनैतिक विस्तार, धार्मिक झुकाव तथा मौर्य राज्य के कर प्रणाली का ज्ञान मिलता है। अशोक का रुम्मनदेई लघु स्तम्भलेख

अशोक के सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। यह अभिलेख अशोक के बौद्ध धर्म के प्रति आस्था का प्रमाण देता है। इस अभिलेख के कारण ही हमें भगवान बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान हुआ। यह अभिलेख अशोक के 20 राज्यवर्ष में उसकी लुम्बिनी यात्रा के समय उत्कीर्ण करवाया गया था। अशोक के अन्य अभिलेखों में बौद्ध धर्म के प्रति उसके झुकाव के प्रमाण मिलते हैं किन्तु इस अभिलेख में उसके स्वयं लुम्बिनी जाने का प्रमाण देता है। इस अभिलेख में अशोक द्वारा लुम्बिनी ग्राम को कर मुक्त कर केवल उत्पादन का 8 वां अंश देने की घोषणा की गई है जिससे मौर्यकाल में करव्यवस्था पर प्रकाश डालता है। इस अभिलेख में बुद्ध को शाक्यमुनि कहकर संबोधित किया गया है जिससे बुद्ध के शाक्य कुल से होने का प्रमाण मिलता है।

9.8 सदंर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ.राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, डॉ.शिव स्वरुप सहाय
3. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं.गौरीशंकर हीराचंद ओझा

9.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. अशोक के रुम्मनदेई लघु स्तंभलेख पर लेख लिखिए।
2. रुम्मनदेई अभिलेख किस लिपि व भाषा में उत्कीर्ण है।
3. रुम्मनदेई अभिलेख के राजनैतिक, धार्मिक व आर्थिक महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई 10 : पिपरहवा बौद्धपात्र अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 मूल छाया (ब्राह्मी)

10.4 मूल पाठ

10.5 हिन्दी अर्थान्तर

10.6 भाषा व लिपि

10.7 तिथि

10.8 व्याख्या

10.9 ऐतिहासिक महत्व

10.10 सारांश

10.11 संदर्भ ग्रंथ

10.12 आदर्श प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

पिपरहवा बौद्ध पात्र भारत के प्राचीनतम अभिलेखों में से एक है। यह अभिलेख पिपरहवा नामक स्थान में स्थित स्तूप से प्राप्त एक पात्र में लिखित है। इसकी भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इसका काल विद्वानों ने तीसरी सदी ई.पू. के आसपास माना है किन्तु इसमें अभी तक एक मत नहीं है। इस बौद्ध पात्र अभिलेख में बुद्ध शाक्यमुनि की अस्थियों को रखे जाने का उल्लेख है जो विद्वानों के अनुसार भगवान गौतम बुद्ध के अवशेष थे। इस अभिलेख में वर्णित 'सुकिति भतिनं सभागनिकनं सपूतलदलनं' के अर्थ को लेकर विद्वानों में मतभेद है जिनका अध्ययन इस अध्याय में है।

प्रस्तुत अभिलेख उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थनगर में स्थित पिपरहवा नामक स्थान जो की नेपाल में स्थित गौतम बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी से 12 मील दूरी पर स्थित है। इस अस्थिकलश को खोज विलियम क्लेकस्टन पेपे ने जनवरी 1897 में पिपरहवा में स्थित एक स्तूप के उत्खनन से की थी। पेपे व उनके सहयोगी दल ने पिपरहवा में स्थित एक टीले का उत्खनन किया जिसमें

लगभग 18 फिट की खुदाई के बाद उन्हें एक पत्थर का बक्सा मिला। इममें बक्से में 5 छोटे कलश थे जिनमें अस्थियाँ, राख व आभूषण आदि थे। इन्हीं में से एक पत्थर के कलश पर ब्राह्मी में एक लेख अभिलिखित है। इस अभिलेख का अनुवाद जोर्ज बुलर ने किया इस अभिलेख में गौतम बुद्ध की अस्थियाँ होने की बात लिखी हुई थी, किन्तु इस बात पर विद्वानों में मतभेद है। इस अभिलेख को पिपरहवा बौद्धपात्र अभिलेख कहा जाता है।

10.2 उद्देश्य

पिपरहवा बौद्ध अस्थिकलश अभिलेख (छायाचित्र पृ क्र. 189) के मूल पाठ व हिंदी अर्थान्तर का पाठन, व्याख्या तथा प्राचीन भारतीय इतिहास में इसके एतिहासिक, धार्मिक व भाषा–लिपि के परिपेक्ष्य में अध्ययन करना।

10.3 मूल छाया

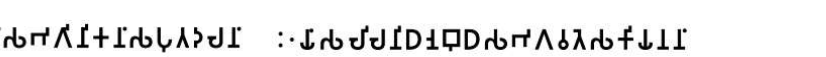

10.4 मूल पाठ

सुकिति–भतिनंस–भगिनिकनंस–पुत–दलनं
इयंसलिल–निधनेबुधसभगवतेसकियनं

10.5 हिंदी अर्थान्तर

सुकृति के भाइयों, भगिनियों, पुत्र–दाराओं सहित। यह शरीर निधान भगवान बुद्ध का शाक्यों के।। –डॉ. शिवस्वरुप सहाय का पाठ

बुद्ध भगवान शाक्य के इस शरीर–धातु मंजूषा (निधान) को सुकृ ति–बंधुओं ने अपनी बहन, पुत्र और पत्नी के साथ (प्रतिष्ठित किया)।

–डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त का पाठ

10.6 भाषा व लिपि

इस अभिलेख की भाषा प्राकृत है, तथा इसकी लिपि मौर्यकालीन ब्राह्मी है। थॉमस के अनुसार इस लेख का छंद आर्या है तथा फ्लीट के अनुसार उपगीति है। इस लेख में कुछ शब्द एक कतार में लिखे हुए हैं तथा कुछ अक्षर जो उस पंक्ति में नहीं आ सके इसलिए उन्हे ऊपर की कतार में लिखा गया है। रीजडेविस, ब्यूलर आदि इस लेख की प्रथम पं.क्ति को द्वितीय और द्वितीय को

प्रथम मानते हैं। पर फ्लीट का यह पाठ अधिक उचित लगता है।

10.7 तिथि

इस अभिलेख की तिथि स्पष्ट नहीं है। इसे प्रायः चौथी से तीसरी सदी ई.पू. में रखा जा सकता है। परंतु डॉ. सरकार ने इसमें व्याकरण संबंधी विशेषताओं के आधार पर इसे अत्यंत प्राचीन माना है। अभिलेख में दीर्घ स्वरों के अभाव होने के कारण विद्वानों का अनुमान है की यह लेख अशोक के पूर्व अंकित करवाया गया होगा। एफ. डब्ल्यू. थॉमस के अनुसार यह अभिलेख इतना लघु है की व्याकरण के संबंध कहा नहीं जा सकता अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता की इस लेख का काल क्या है। किन्तु अधिकांश विद्वानों ने इसे यह माना है की इसे अशोक से पूर्व ही रखा गया था। अतः लिपि के आधार पर इसे ई.पू. तीसरी शताब्दी के आसपास का माना जा सकता है। इस अभिलेख के अशोक के पूर्व का होने के पीछे एक और तर्क यह भी हो सकता है की अशोक के लगभग सभी अभिलेखों में अशोक का नाम या उसकी उपाधि 'देवानांपिय पियदशी', 'लाजा' या 'लाजा असोक' आदि का उल्लेख मिलता है जिसका पूर्णतः अभाव इस अभिलेख में मिलता है। अतः इस बात के पर्याप्त प्रमाण है की यह अभिलेख अशोक के पूर्व का ही होगा।

10.8 व्याख्या

इस अभिलेख के प्रथम दो शब्दों का अर्थ क्या है इस पर विद्वानों में मतभेद हैं। सुकिति को कुछ लोग **सुकीर्ति** का और कुछ **सुकृति** का प्रारूप अनुमान करते हैं। इसी प्रकार **भतिनं** को **भ्रातृणा** अथवा **भक्तयोः** का रूप अनुमान किया जाता है। **सुकिति भतिनं** का अनुवाद **सुकीर्ति** (सुकृति) के भाई अथवा **सुकीर्ति** (सुकृति) और भक्त (दो व्यक्तिवाचक नाम) के रूप में किया जाता है। डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार **सुकीर्ति भक्तयोः** के रूप **में सुकृति** और **भक्त** अनुमान करने को सही नहीं मानते उनके अनुसार **सुकृति–भातृणां** ही अधिक संगत है तथा इसका अर्थ सुकृति के भाई न होकर सुकृति–बंधु (सुकृति और उसके भाई) हो चाहिए।

डॉ. राजबली पांडेय के अनुसार 'सुकृति भ्रातृणां' अधिक उपयुक्त लगता है की क्योंकि 'सुकृति' बुद्ध का एक विश्लेषण था। '...कपिलवत्थुवसी सक्या कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पहेसि। ..मयम्यि अरहाम भगवाते सरीरानं भागं,' (महापरि. सु. 285) इससे स्पष्ट है की शाक्यों के पास बुद्ध के शरीरावशेष थे।

सलिल निधने का अर्थ शरीर **निधानं (अस्थि पात्र)** लिया गया है।

जिसमें गौतम बुद्ध की अस्थियों को रखकर उस पर स्तूप बनाया जाता था।

'**सकियनं**' का अर्थ शाक्यानां जो की गौतम बुद्ध के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ **शाक्यमुनि** लिया गया है क्योंकि गौतम बुद्ध शाक्यवंशी थी। डॉ. सरकार ने 'सकियनं' के अंतिम पद क 'यान' पढ़ा है किन्तु डॉ. पांडेय ने 'य' के साथ 'आ' की मात्रा का होना उचित नहीं माना है क्योंकि पूरे लेख में दीर्घ मात्रा का अभाव है।

अतः यदि इस अभिलेख का सरल भाषा में अनुवाद किया जाय तो वह होगा –

सुकृति–बंधुओं तथा भगिनियों सहित शाक्यमुनि भगवान बुद्ध के इस शरीर निधि को प्रतिष्ठित किया गया।

10.9 ऐतिहासिक महत्व

इस लेख से यह ज्ञात होता है की इस मंजूषा में भगवान बुद्ध का अस्थि–अवशेष रखा गया था। स्तूप निर्माण की परम्परा वैदिक काल से प्रतीत होती है क्योंकि ऋग्वेद में स्तूप शब्द तथा महापुरुषों के अवशेषों पर मिट्टी का ऊंचा टीला बनाने का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है।

स्वात घाटी में स्थित पैठान ग्राम से इसी उद्देश्य का एक अस्थि पत्र प्रथम शताब्दी ई.पू. का किसी यवन शासक, मेरीद्रख थियोडोरस द्वारा स्थापित मिल है। लगभग इसी काल का एक धातु–पत्र बाजौर नामक स्थान से भी प्राप्त हुआ है जो विजयमित्र के पांचवें राजवर्ष का है जब मिनाण्डर का शासन था। इसी पेशावर के समीप कुर्रम नामक स्थान से दूसरी शताब्दी इ का लेखयुक्त ताम्र–पत्र मिल है तथा इसी समय का एक रजत धातुपत्र तक्षशिला से जिहोणिक के काल का भी प्राप्त हुआ है।

गौतम बुद्ध ने दिव्यवदान में स्वयं कहा है की मे मृत्यु के बाद किसी चौराहे पर मेरे अवशेषों पर स्तूप बनवाया जाए जैसा चक्रवर्ति राजाओं की मृत्यु के बाद बनवाया जाता है। जैन साहित्यों में भी स्तूप की चर्चा की गई है। बाद में बुद्ध के आदेश पर स्तूप बनवाने की परम्परा बौद्धों में प्रचलित हो गई। अनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध के शरीर के आठ भाग किये गए थे जिन पर आठ स्तूप बनवाए गए थे। इस अनुश्रुति की पुरातात्विक पुष्टि भी सांची के दक्षिणी तोरण द्वार की निचली बड़ेरी पर अंकित चित्रण से होती है जिसमें अस्ति के लिए युद्ध का अंकन है। इस युद्ध में एक घेरा है जिसमें एक हाथी पर अस्ति–कलश रखा है और इस पर छत्र लगा है। उसके दोनों ओर सेनाएं युद्ध

के लिए उद्दत खड़ी दिखती है। यह घेरा कुसनिगर को व्यक्त करता है। महापरिनिर्वाण सुत्त से ज्ञात होता है की बुद्ध की मृत्यु के मरने के बाद उनकी अस्थि के लिए आठ गणराज्यों के बीच झगड़ा हुआ था जिनमें वैशाली के लिच्छव, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप के बुलिय, रामग्राम के कोलीय, पिप्पलिवन के मोरिय, पावापुरी के मल्ल, कुशिनारा, के मल्ल तथा द्रोणक के ब्राह्मण। कुशीनारा के मल्लों को छोड़कर शेष सात गणराज्यों का एक गट बन गया था जिसको सुलझाने के लिए बुद्ध के अवशेषों का आठ भाग कर प्रत्येक को एक–एक भाग सौपा गया। जिन पर इन गणराज्यों ने क्रमशः राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अलकप्प, रामग्राम, वेठद्वीप, पावापुरी तथा कुशीनारा में बने। शाक्यों ने अपने हिस्से के बुद्ध के अवशेषों पर पिपरहवा स्तूप का निर्माण करवाया।

इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है की यह अस्थि भगवान बुद्ध के निधन के तत्काल बाद नहीं रखा गया था बल्कि बाद में रखा गया था। यद्यपि इस अभिलेख में किसी का नाम नहीं है किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार सुकृति भगवान बुद्ध का बोधक हो सकता है तथा बुद्ध–भक्त के रूप में अशोक के होने की भी संभावना है, क्योंकिअनुश्रुतियों के अनुसार अशोक द्वारा बुद्ध के अवशेषों पर 84 हजार स्तूप का निर्माण करवाया गया था। किन्तु यह सिद्ध करना कठिन है।

इस अभिलेख के 'सकियानं' से उआह सिद्ध होता है कि पिपरहवा ही शकयों की राजधानी कपिलवस्तु है। इसकी पुष्टि पिपरहवा के एक विहार से प्राप्त मुहर से होती है जिस पर लिखा है– **'ॐ देवपुत्र विहार कपिलवस्तु भिक्षु संघस्य'**। पिपरहवा अभिलेख पुरातन बस्ती जिले में, शाक्य परिवार के लोगों द्वारा भगवान बुद्ध के अवशेषों पर स्तूप बनवाया गया था। जिससे ज्ञात होता है क शाक्य गणराज्य का विस्तार आधुनिक सिद्धार्थनगर जनपद तक था। इसकी पुष्टि कनिंघम लिखित 'प्राचीन भारत का इतिहास भूगोल' से भ ज्ञात होता है जहाँ उन्होंने कपिला की चर्चा की है द्यडॉ. शिव स्वरूप के अनुसार इस बौद्ध–पात्र को स्थापित करने वाले बुद्ध के भाई हैं जिन्होंने पुत्र, भगिनी और द्वारा के साथ इसे स्थापित किया था। यह एक सामाजिक एवं धार्मिक कार्य कहा जा सकता है जिसमें पुरुष के साथ स्त्रियों के भी भाग लेने का ज्ञान प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है की सामाजिक–धार्मिक कार्यों में उस समय पुरुष के साथ स्त्रियाँ भी भाग लेती थी। उए सभी एक ही परिवार के सदस्य प्रतीत होते हैं जो संयुक्त परिवार की स्थिति की स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें पत्नी, पुत्र, भाई और बहन सभी साथ रहते रहे होंगे।

10.10 सारांश

अतः इस पिपरहवा बौद्ध–पात्र अभिलेख का भारतीय इतिहास में विशेष स्थान है। इस अभिलेख से हमें गौतम बुद्ध के अवशेषों पर स्तूप बनवाने की परम्परा का प्रमाण देता है, जिसका उल्लेख अनेकों बौद्ध साहित्यों में है। इस अभिलेख से हमें मौर्य व पूर्व मौर्यकालीन ब्राह्मी, भाषा तथा सामाजिक प्रथाओं का भी ज्ञान मिलता है।

10.11 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि –डॉ.. राजबली पाण्डेय
2. भारतीय पुरालिपि – डॉ.. शिव स्वरुप सहाय
3. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख – डॉ.. परमेश्वरी लाल गुप्त
4. भारतीय स्थापत्य एवं कला – डॉ.. उदयनारायण उपाध्याय व प्रो गौतम तिवारी
5. Peppe, WC (July 1898), "The Piprahwa Stupa, containing relics of Buddha", WithA Note by V.A. Smith. Journal of the RoyalAsia-tic Society of Great BritainAnd Ireland (Article XXIII): 573-88, JSTOR 25208010

10.12 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. पिपरहवा बौद्ध पात्र की खोज किसने की थी ?
2. पिपरहवा बौद्ध पात्र में किसके अस्थि अवशेष होने का बात लिखी हुई है ?
3. पिपरहवा बौद्ध पात्र अभिलेख के अनुसार किनके द्वारा स्थापित किया गया था ?
4. पिपरहवा बौद्ध पात्र का काल क्या माना जाता है ?
5. पिपरहवा बौद्ध पात्र का धार्मिक महत्व क्या है ?

इकाई 11 : सौहगौरा अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 मूल छाया (ब्राह्मी)

11.4 मूल पाठ

11.5 हिन्दी अर्थान्तर

11.6 भाषा व लिपि

11.7 तिथि

11.8 व्याख्या

11.9 ऐतिहासिक महत्व

11.10 सारांश

11.11 संदर्भ ग्रंथ

11.12 आदर्श अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत सौहगौरा कांस्यपत्र अभिलेख उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के वासगांव तहसील के सौहगौरा नामक गाँव से प्राप्त हुआ था जिसे कलकत्ता के एसियाटिक सोसाइटी में था किन्तु अब वह लापता है। यह फलक लेख सहित ढालकर तैयार किया गया था। इस प्रकार अपने ढंग का अनोखा अभिलेख–फलक था। इस लेख को कुछ विद्वान अशोक–पूर्व और कुछ मौर्यों से भी पूर्व का मानते हैं, किन्तु दिनेशचंद्र सरकार इसे अशोक से पूर्व मानने का कोई कारण नहीं देखते।

इस कांस्य–फलक में ऊपर पं.क्ति से सात आकृतियाँ इस प्रकार हैं –

1. वेदिका में वृक्ष,
2. तीन मंजिल भवन,
3. नाल युक्त कमाल पुष्प की कलियाँ,

4. मेरु पर्वत पर चंद्रमा,

5. सूर्य और चंद्र,

6. वेदिका में वृक्ष तथा

7. तीन मंजिला भवन।

इन आकृतियों के नीचे ब्राह्मी में चार पं.क्तियों का अभिलेख लिखा है। ऐसा अनुमान है की दो मंजिले भवन की डॉ. आकृतियाँ अभिलेख में वर्णित डॉ. कोष्ठागारों की सूचक है। ये सभी चिन्ह प्राचीन भारत से प्राप्त सबसे पुरानी, आहात मुद्राओं पर भी अंकित किये गए हैं। इनके होने से इस तिथि विहीन लेख की तिथि निर्धारित करने में बड़ी सुविधा मिल सकेगी।

11.2 उद्देश्य

सौहगौरा अभिलेख (छायाचित्र पृ.190)का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व भाषा व लिपि के परिपेक्ष्य में अध्ययन करना।

11.3 मूल छाया

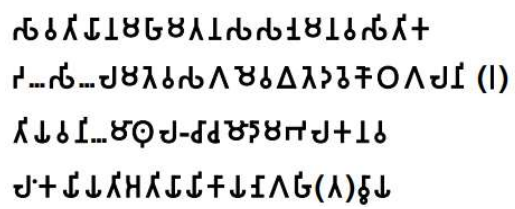

11.4 मूल पाठ

सावतियानमहामतनससनेमनवसिति–क–

ड(।) सि (ि) लमतेवसगमेवएतेदवेकोठगलनि (।)

तियवनि (।), माथुल–चाचु–मोदाम–भलकनव

लकयियतिअतियायिकाय (।), नोगहितवय (।।)

संस्कृत पाठ

श्रावस्तीयानां महामात्राणां शासनं मानव शीति कटतः। श्रीमान् वंशग्रामः एतौ द्वौ कोष्ठागारौ त्रिवेणी–माथुर–चंञ्चु–गोदाम–भल्ककानां (ग्रामाणां) वरं कार्येते आत्ययिकायां। नो ग्रहीत्वयम्।

11.5 हिन्दी अर्थान्तर

श्रावस्ती के महापात्र के शासन काल में मानवशीति के चौराहे पर। श्रीमान और वंश्राम में दो कोष्ठागार। त्रिवेणी, माथुर, चञ्चु, मोद, भल्लक ग्रामों के हित के लिए आपत्ति काल में। नहीं ग्रहण करना चाहिए (आपत्ति काल में)।

11.6 भाषा व लिपि

इस अभिलेख की भाषा प्राकृत है तथा डॉ..शिव स्वरुप सहाय के अनुसार इसकी लिपि आदि ब्राह्मी हो सकती है जो कि लगभग चौथी सदी ई.पू. के लगभग की हो सकती है।

11.7 तिथि

इस लेख की तिथि अज्ञात है तथा इसमें ऐसा कोई भी आधार वर्णित नहीं है जो हमें इस अभिलेख की तिथि का अनुमान करने में सहायता दे सके। अतः इसकी तिथि निर्धारण के लिए केवल इसकी लिपि ही एक मात्र माध्यम हो सकता है, जो की मौर्यकालीन ब्राह्मी प्रतीत होती है। इस अभिलेख में महामात्र का उल्लेख मिलता है जिनका उल्लेख अशोक के अभिलेखों में भी मिलता है किन्तु इसमें अशोक के अभिलेखों की तरह किसी विशिष्ट महामात्र का उल्लेख नहीं है अतः इस अभिलेख को अशोक के पूर्व का माना जा सकता है। फिर भी इस अभिलेख को कम से कम मौर्यकाल के समीप ही रखा जा सकता है। इसका एक संकेत मौर्यकालीन सिक्कों में पर्वत के ऊपर अर्धचंद्र अंकित है जिससे मिलता–जुलता चिन्ह इस पट्ट पर भी बना है। अभिलेख पर अंकित अन्य चिन्ह भी आहात सिक्कों में प्राप्त होते है जो मौर्यकाल के आसपास के हैं। अतः इन सभी संकेतों व प्रमाणों के आधार पर इस अभिलेखों को मौर्यकाल के समीप रखा जा सकता है।

11.8 व्याख्या

इस लेख में 'सवतियनं' (सं. श्रावस्तीयानां) श्रावस्ती पढ़ा जाता है। यह बौद्ध काल में उत्तर कोशल, जो उत्तर प्रदेश में स्थित था, की राजधानी थी। 'महतन' को डॉ. सरकार इसे 'महगमन' पढ़ते हैं।

'ड' को डॉ.. सरकार ने इसे 'कद' पढ़ा है द्य' सिलिमते' से अभिप्राय है 'श्रीमान'। पर कुछ विद्वानों ने इसका अनुवाद 'श्रीमन्न' भी किया है,डॉ. जायसवाल ने इसे 'सिरीमात्र'=कृषक मात्र के लिए माना है। 'वासगमे' से अभिप्राय 'बांसगांव' से हो सकता है। यह गोरखपुर में स्थित सौहगौरा से थोड़ी

ही दूर पश्चिम है। डॉ. जायसवाल ने इसे 'उष्मागमे'–केवल ग्रीष्म काल में प्रयोग के लिए किया है।

'तियवनी' का अर्थ विद्वानों ने तीन कमरा माना है। पर डॉ. राजबली पाण्डेय ने इसे 'तियवने' पढ़ा है और इसका अर्थ निकाला है = त्रिवेणी तथा मथुल चचु आदि ग्रामों के साथ इसे भी एक ग्राम माना है। डॉ.. बरुआ ने इसे 'तिन यवनि' अर्थात तृण और यव माना है।

डॉ. ब्यूलर ने 'भलकन' का अनुवाद 'तीन कमरे भार से भरे (भलकन) मधू (मधु), भूने चावल (लच) अजवायन (अजमोद) तथा आम्र (अम)' किया है। डॉ. बरुआ इन्हें तीन गांवों का संकेत माना है–त्रिवेणी, मथुरा, चचु। पर डॉ. पाण्डेय ने यहाँ त्रिवेणी, माथुर, चञ्चु, मोदा तथा मल्लक ग्रामों की स्थिति का उल्लेख पाया गया है।

'व' को ब्यूलर ने 'छल' पढ़ा है तथा इसका अर्थ 'संग्रह' किया है। डॉ. जायसवाल ने इसका अर्थ 'वितरित करने के लिए' लिया है। डॉ. पाण्डेय ने इसे 'बल' पढ़ा है तथा इसका अर्थ श्रेष्ठ कार्य के लिए किया है।

11.9 महत्व

इस लेख का पहला ही शब्द है सवतियन = श्रवस्तियानां पढ़ा गया है जो कोशल का एक प्रमुख नगर था। यह आधुनिक गोंडा जिले में स्थित सहेट–महेट नामक स्थान का बोध कराता है। यह स्थान भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित है क्योंकि जब बौद्ध धर्म के विरोध में ब्राह्मणों की एक सभा हो रही थी तो सहस्त्रों कमलों पर उड़ते हुए भगवान बुद्ध यहाँ आकाश में दिखने लगे। इससे सभा में बैठे ब्राह्मण बुद्ध में असामान्य गुण के प्रीत आस्थावान हूए, उन्हे यह देखकर आश्चर्य हुआ। इसी से इस दृश्य को जहाँ कहीं भी पत्थरों पर अंकित किया गया है साधारणतया श्रावस्ती का आश्चर्य कहते हैं। यह स्थान ई. पू. छठी शताब्दी में कोशल राज्य का एक प्रमुख केंद्र था।

अभिलेख के आरंभ में इसके महामात्र का उल्लेख है जिसमें कहा गया है 'महागमन ससने' अर्थात महामात्र के शासन में, इससे स्पष्ट होता है की इस अभिलेख के लिखे जाने के काल में श्रावस्ती एक महत्वपूर्ण नगर रहा होगा जहाँ महामात्र की नियुक्ति होती थी। संभवतः इसकी महत्ता को देखते हुए ही अशोक ने अपने अधिकारियों के पदनाम के साथ यह शब्द जोड़कर उनका महत्व बढ़ाने का प्रयास किया जैसे (स्त्रिय़ामहामात्र) स्त्रियाध्यक्षमहामात्र आदि। यह शब्द भी इसी अभिलेख की तिथि ज्ञात करने में सहायता करता है।

अभिलेख की आदेशात्मक शैली से उस काल में किसी प्रकार के प्रशासनिक वर्ग के होने का संकेत देता है। वहीं मधु, आम व चावल आदि का उत्पादन समाज में व्यापारी वर्ग (वैश्य) के होने का भी प्रमाण मिलता है।

इस अभिलेख की भाषा अस्पष्ट है इस कारण विद्वानों में इसके अनुवाद को लेकर अलग अलग मत है –

ब्यूलर के अनुसार– तीनों खंडों वाले दोनों कोष्ठागारों की जो सुविख्यात वंश ग्राम में स्थित है आपत्तिकाल के लिए मधूक, भुना हुआ अन्न (लच), अजमोद, आम के भारक के जमा करने के लिए आवश्यकता होगी।

फ्लीट के अनुसार– 'मानवासी के चौराहे पर बने ये दोनों कोष्ठागार तियवनि, मथुरा, और चंचु के अन्न भारकों के रखने के लिए बनाए गए हैं।'

बरुआ के अनुसार– 'चारा (तिन) और गेहूं (यवनि) तथा कलछुल, खेमे, हल एवं रस्सी के बोझ के लिए बने ये दोनों कोष्ठगार आवश्यकता के समय प्रयोग में आते हैं।'

इस अभिलेख से ज्ञात होता है की उस समय जनहित व जन कल्याणकारी राज्य की अवधारणा थी। राजा तथा उसके कर्मचारी जनहित की दृष्टि से प्रायः कार्य करते थे। इसी कारण राज्य द्वारा इस अन्नागार का प्रयोग अकाल अथवा आपातकाल की स्थिति में करने के लिए बनवाया गया था। नगरों में इस तरह के अन्नागार की व्यवस्था सैन्धव सभ्यता के हड़प्पा में मिलता है। जिसके पास में एक बांध है जिस पर चक्कियों के निशान हैं तथा उसके पड़ोस में श्रमिकों की बस्ती के अवशेष मिले हैं जो अन्नागार में संचित अनाज को पीसने की व्यवस्था के लिए बसाये गए होंगे।

इस अभिलेख के विषय के आधार पर यह कहा जा सकता है की यह एक प्रशासनिक अभिलेख है। जैसा की इस अभिलेख में यह बताया गया है की यह अन्नागार आपात काल व आपत्ति काल से रक्षा के लिए है। इसी के साथ सावधान भी किआ गया है की सामान्य समय में इसका प्रयोग न किया जाए इस में किसी शासक या व्यक्ति का नाम नहीं है अतः इसे पूर्णतः प्रशासनिक लेख कहा जा सकता है जो की जनकल्याणकारी राज्य की ओर संकेत करता है।

इस अभिलेख से हमें तात्कालिक आर्थिक व्यवस्था का भी पता चलता है। अभिलेख के अनुसार दोनों कोष्ठागार मानवशीति के चौराहे पर स्थापित थे। कोष्ठागार का होना अन्न की बहुलता तथा विशेष कारणों के लिए अन्न एकत्रित

करने की व्यवस्था कक संकेत देता है, तथा कर के रूप में अन्न लेने की व्यवस्था का संकेत देते हैं। चौराहे का उल्लेख इस बात का संकेत देता है की तब व्यापारिक मार्ग भी थे जो दूर दूर तक जाते रहे होंगे। ये मार्ग दूसरे से प्रमुख व्यापारिक केंद्रों से मिलते रहे होंगे। अभिलेख के ऊपर बने चिन्हों से हमें यह संकेत मिलता है की उस काल में काषार्पण या आहत सिक्कों का भी प्रचलन था।

इस अभिलेख में वर्णित अन्नागार की व्यवस्था से हमें उस काल की कृषि व्यवस्था का भी ज्ञान मिलता है। इस अभिलेख में अन्नागार में रखी जाने वाले खाद्यपदार्थों का परिचय मिलता है जो थे मधु, भुना चावल, अजवायान तथा आम के भार के संग्रह) मथुल, च ख्च, –मोदम छलव कयियति। यहाँ भुने चावल का उल्लेख चावल की खेती का संकेत देता है, इसी प्रकार अजवायन का भी। मधु तथा आम का उल्लेख उद्यान के होने का संकेत देते हैं। समाज में मधु का व्यवसाय तथा मधुमक्खी पालन का भी प्रचलन होने का भी संकेत मिलता है। यदि उपर्युक्त पं.क्ति का अर्थ फ्लीट के अनुसार त्रिवेणी, मथुरा और चंञ्चु भी ले तो इतना तो प्रतीत होता है की वह काल आर्थिक दृष्टि से विकसित था और नगर में सड़क, चौराहे आदि की व्यवस्था थी। साथ ही भड़भुजे का व्यवसाय भी उस काल में रहा होगा तभी चावल के भूने जाने की चर्चा है।

इस अभिलेख की अंतिम पं.क्ति में 'नो गहिगतवयं अर्थात 'नहीं ग्रहण करना चाहिए' लिया जाता है जिसका अभिप्राय है की समान्य समय में इस संग्रह का उपयोग नहीं करना चाहिए। यह अकाल की अवस्था का बोध कराता है की प्राचीन भारत में अकाल आते थे और इसकी संभावना से राज्य की ओर से अन्नागार, उससे उत्पन्न होने वाले संकटों को रोकने के लिए बनाए जात थे। यहाँ यह भी उल्लेख है की आज की तरह उस समय भी पूर्वी उत्तर प्रदेश का भाग बाढ़ तथा अकाल की चपेट में रहता था।

इस अभिलेख में तीन कमरों वाले दो कोष्ठागारों के निर्माण का उल्लेख उस काल की वास्तुकला व भवननिर्माण परम्परा का प्रमाण देता है। अभिलेख एन इस भवन का चित्रात्मक अंकन भी किया गया है जिसमें तीन मंजिल वाले दो भवन बने हैं। इस अभिलेख में 'वसगमे' शब्द का उल्लेख है जहाँ ये कोष्ठागार बनाए गए थे। विद्वानों के अनुसार वसगमे से अभिप्राय आज के 'बांसगाँव' नामक स्थान से है जो सौहगौरा से 6 मील की दूरी पर स्थित है। इससे लगता है की आज के गोरखपुर जनपद का बांसगांव तहसील भी श्रावस्ती के महामात्रों के कार्यक्षेत्र के अंदर आता था।

इस अभिलेख के लिए प्रयुक्त धातु के प्रयोग से उस काल अर्थात लगभग ई.पू. तीसरी शताब्दी में धातु विद्या का ज्ञान मिलता है क्योंकि जिस पत्र पर यह अभिलेख मिला है वह या तो कांसे का है या तांबे का।

11.9 सारांश

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं की यह अभिलेख पूर्वमौर्यकाल के आसपास का एक महत्वपूर्ण अभिलेख है जो की भारत के सबसे प्राचीन अभिलेखों में से एक है। जिससे हमें उस काल की ब्राह्मी लिपि, प्राकृत भाषा, जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा, व्यापार, कृषि, प्रशासनिक वर्ग व धातुज्ञान के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। साहगौरा अभिलेख भी भारत के सबसे प्राचीन अभिलेखों में से एक है। इस अभिलेख में साहगौरा नामक स्थान से प्राप्त हुआ था। इसकी भाषा प्राकृत व लिपि ब्राह्मी है। इसका काल भी अशोक के आसपास का माना गया है। इस अभिलेख में श्रावस्ती के महामात्र द्वारा मानवशीति के चौराहे पर त्रिवेणी, माथुर, चंचु, मोद, भलक आदि ग्रामों के लिए दो कोष्ठागार (अन्नागार) बनाए जाने की घोषणा की गई है जिसका प्रयोग आपातकाल या अकाल की स्थिति को छोड़कर करने को निषिद्ध किया गया है।

11.10 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ.शिव स्वरुप सहाय
2. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, डॉ.परमेश्वरी लाल गुप्त

11.11 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. साहगौरा अभिलेख पर लेख लिखिए।
2. साहगौरा अभिलेख किस भाषा व लिपि में लिखित है।
3. साहगौरा अभिलेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।

इकाई 12 : हेलियोडोरस का बेसनगर स्तम्भ अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 मूल छाया (ब्राह्मी)

12.3 मूल पाठ

12.4 हिन्दी अर्थान्तर

12.5 भाषा व लिपि

12.6 तिथि

12.7 व्याख्या

12.8 महत्व

12.9 धार्मिक महत्व

12.10 सारांश

12.11 संदर्भ ग्रंथ

12.12 आदर्श अभ्यास प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत हेलियोडोरस गरुड़स्तम्भ अभिलेख मध्यप्रदेश के विदिशा जिले में बेसनगर नामक स्थान में बेतवा एवं हलाली नदी के संगम पर स्थित है। यह दशार्ण या पूर्वी–मालवा की राजधानी 'आकर' नाम से भी जानी जाती थी। इस गरुड़स्तम्भ की खोज अलेक्जेंडर कनिंघम नेएक सर्वेक्षण के दौरान 1877 ई में की थी। प्राचीन भारतीय इतिहास में इस स्तंभलेख का विशेष महत्व है। स्थानीय लोग इसे 'खामबाबा' कहते हैं।

कनिंघम के बाद सन 1909–10 में यहाँ दूसरा सर्वेक्षण सर जॉन मार्शल के नेतृत्व में हुआ जब उन्होंने यह स्तम्भलेख की खोज की। यह गरुद्ध ध्वज में द अभिलेख लिखे हुए हैं पहला यवन दूत हेलियोडोरस से संबंधित है तथा दूसरा महाभारत से। इसके बाद सन 1919–1935 तथा सन 1963–1965 में यह उत्खनन करवाया गया। जिसमें कई संरचनाएँ तथा कुछ अन्य स्तम्भ भी मिले।

यह स्तम्भ वर्तमान में एक 3 फिट ऊंचे चबूतरे के पर स्थापित हैं जिसके ऊपर इसकी ऊंचाई 17.7 फिट है। इस स्तम्भ का 4.10 फिट का भाग अष्टकोणीय है जिस पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है, इसके ऊपर का भाग 16 कोणीय है जिसकी ऊंचाई 6.2 फिट है, इसके ऊपर का भाग 32 कोणीय है जिसकी ऊंचाई 11.5 इंच है, तथा इसके ऊपर का गोलाकार भाग जो 2.2 फिट का है जिसके ऊपर का भाग उल्टे कमल के समान है जिसकी ऊंचाई 1.6 फिट तथा चौड़ाई 1.8 फिट है।

12.1 उद्देश्य

इस अध्याय में हम बेसनगर के हेलियोडोरस गरुड़स्तम्भ लेख (छायाचित्र पृ.191) के मूल पाठ, उसके हिंदी अर्थान्तर का अध्ययन करेंगे। यह स्तम्भलेख एतिहासिक व धार्मिक दृष्टि से भारत के सबसे प्राचीनतम व महत्वपूर्ण में से एक है। अतः इस अभिलेख का भारतीय इतिहास के एतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व् अन्य परिपेक्ष्यों में महत्त्व का अध्ययन करेंगे।

12.2 मूल छाया

प्रथम खंड

1. …ꠇ꠰ꠇꠛꠇ….ꠇꠛ꠸꠹꠰꠹ꡐꠇꠋ
2. ꠋ꠰꠸:·… ꠓꡇ꠸꠰꠱꠰ꠌ꠸
3. ꠇ꠸꠱꠰ꠇꠛ꠸꠰꠸꠱ꠇ꠸꠹ꠛꡇꡇ꠱
4. ꠲꠱-꠰꠸꠱ …꠸꠸꠱ꠘꠓ꠰ꠇ
5. ꠢ꠸ꡇꠋ꠸ꠛ꠸꠸꠱ꠛ꠸ꠋꠛ꠰ꠛ
6. ꠋꠛ-꠸ꠛ… …꠸ꠌ꠰ꠛ꠸꠸꠸ꠛ
7. ꠇꠛ꠱ꠃ…꠰ꠛ꠱꠰ꠋ꠱ꠇꠇꠘ꠱ꠛ

द्वितीय खंड

1. ꠸꠰ꠢꠘ꠸-꠸꠰꠰ … ……ꠢ꠱ꠇ꠸꠸꠰
2. ꠱꠲꠸ ……꠰ꠘꠃ꠸ꠢꠢ꠸꠰ ||

12.3 मूल पाठ

प्रथम खंड

1. (दे) वदेवसवा (सु) देवसगरुडध्वजोअयं

2. कारितेइ (अ) हेलिउदोरेणभाग
3. वतेनदियसपुत्रेणतख्खसिलाकेन
4. योन–दतेन (आ), गतेनमहाराजस
5. अंतलिकितसउपं.तासंकासंरञो
6. कासी–पु (त्र), स (भा), गभद्रसत्रातारस
7. वसेनच (तु), दसेनराजेनवधमानस।।

द्वितीय खंड

1. त्रिनिअमुत–पदानि (इअ), (सु), –अनुठितानि
2. नेयंति (स्वगं), दमचागअप्रमाद।।

12.4 हिन्दी अर्थान्तर

प्रथम खंड

1. देवताओं में श्रेष्ठ वासुदेव का यह गरुड़ ध्वज
2. स्थापित किया गया हेलयोडोरस द्वारा
3. दियस के पुत्र भगवत धर्मानुयायी तक्षशिला के
4. यवन दूत के आकार महाराज
5. अंतलितिकस के समीप से राजा
6. काशीपुत्र के भगभद्र के
7. चौदहवे वर्धमान राज्यकाल में

द्वितीय खंड

1. तीन अमृत पद ये सुअनुष्ठान के द्वारा
2. स्वर्ग में ले जाते हैं – दम, त्याग और अप्रमाद।।

12.5 भाषा व लिपि

हेलियोडोरस गरुड़ स्तम्भ की लिपि शुंगकालीन (ई.पू. दूसरी शताब्दी) ब्राह्मी तथा भाषा संस्कृत प्रभावित प्राकृत है।

12.6 तिथि

हेलीयोडोरस गरुड़ ध्वज अभिलेख में अभिलेख लिखवाने की कोई तिथि अंकित नहीं है, केवल इस बात का उल्लेख है की यह स्तम्भ भागभद्र के शासन के 14वें राज्य वर्ष में यवन दूत हेलियडोरस द्वारा स्थापित किया गया था।

12.7 व्याख्या

हेलियोडोरस स्तम्भलेख के प्रथम अभिलेख के अनुसार 'तक्षशिला के राजा अंतलितिकस के सपीस्थ काशीपुत्र के राजा भागभद्र के चौदहवें राज्यवर्ष में दियस के पुत्र भागवत धर्मानुयायी यवनदुत हेलियोडोरस द्वारा देवताओं में श्रेष्ठ वासुदेव का यह गरुड़ स्तम्भ स्थापित करवाया गया।'

दूसरे अभिलेख को महाभारत से संबंधित माना गया है जिसमें यह कहा गया है की 'दम, त्याग और अप्रमाद इन तीन अमृत पद का सुअनुष्ठान के द्वारा स्वर्ग जाते है'।

12.8 महत्व

हेलियोडोरस गरुड़स्तम्भ लेख प्राचीन भारतीय इतिहास के प्राचीन व महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। इसका प्राचीन भारतीय इतिहास के धार्मिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक अध्ययन में महत्व है।

धार्मिक दृष्टि से यह स्तम्भलेख अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस लेख में वासुदेव के उल्लेख, गरुड़ध्वज की स्थापना तथा गरुड़चिन्ह के अंकन आदि से उस काल में वैष्णव धर्म के प्रसार तथा व्यापकता पर प्रकाश डालते हैं। यह स्तम्भ अनेकों माध्यमों से वैष्णव धर्म को व्याख्यायित करता है जो की निम्न है –

1. प्रथम इस स्तम्भ पर गरुड़ का अंकन है जो भगवान का विष्णु का वाहन है। गरुड़ को विष्णु का प्रतीक माना जाता है। अनेकों वैष्णव मंदिरों में द्वार के आगे गरुड़ ध्वज की स्थापना की जाती है।

2. अभिलेख में भी हेलियोडोरस ने इस स्तम्भ को 'गरुड़ध्वजे अयं कारिते' अर्थात 'गरुड़ध्वज (गरुड़स्तम्भ)स्थापित किया गया' कहा है जिससे स्पष्ट होता है की यह वैष्णव धर्म के विशेष प्रयोजन से ही यह स्तम्भ स्थापित किया जा रहा है।

3. अभिलेख के आरंभ में ही 'वासुदेव' का उल्लेख मिलता है पाणिनी के अनुसार वासुदेव वसुदेवकों के उपास्य थे अर्थात वासुदेव की उपासना

करने वाले वसुदेवक कहलाते हैं। पतंजलि ने इसे ईश्वर का नाम बताया है।

4. अभिलेख में वासुदेव को 'देवदेवस' अर्थात 'देवताओं में श्रेष्ट' कहा गया है अर्थातवासुदेव को देवताओं में श्रेष्ठ कहना वैष्णव धर्म की महत्ता को दर्शाता है।

5. वासुदेव कृष्ण का ही दूसरा नाम था किन्तु कृष्ण के स्थान पर वासुदेव का उल्लेख करना इस बात का संकेत देता है की इस काल में कृष्ण के लीलामय रूप के स्थान पर उनके गौरवपूर्ण स्वरूप वासुदेव की उपासना पर बल दिया गया है।

6. इस अभिलेख में उल्लेखित 'इअ' अर्थात यहाँ से स्पष्ट होता है की यह स्तम्भ का स्थान विदिशा वैष्णव धर का प्रमुख केंद्र था।

7. इस स्तम्भलेख को स्थापित करवाने वाला यवनदूत हेलियोडोरस के लिए 'हेलियोडोरेण भागवतेन' अर्थात भागवत धर्मानुयायी कहा गया है, अर्थात हेलियोडोरस जो की एक यवन था वो भागवतधर्म का अनुयायी था। इससे स्पष्ट होता है की वैष्णव धर्म का प्रसार विदेशियों में भी था।

8. अभिलेख में हेलियोडोरस को तक्षशिला के विदेशी राजा अंतलिकितस दूत बताया गया था। इस शासक की समता यूनानी शासक एंटिअल्काइडस से की जाती है। इससे स्पष्ट होता है की मथुरा के निकट तथा उत्तर–पश्चिम भारत के वो क्षेत्र जो विदेशियों द्वारा शासित थे वैष्णव धर्म का प्रसार था जिसे विदेशियों ने भी स्वीकार कर लिया था। किन्तु यह बात उल्लेखिनीय है की इस काल अभिलेख के अतिरिक्त भारत के इस क्षेत्र में इस काल का वैष्णव धर्म के प्रसार का कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता।

9. इस अभिलेख के दूसरे भाग में स्वर्ग प्राप्ति के लिए बताए गए जिन तीन मार्गों का उल्लेख किया गया है वह महाभारत (5.43.22) तथा गीता (160.1–3) से लिए गया है। इससे स्पष्ट होता है की विदेशियों में भी भारतीय वैष्णव अथवा भारतीय ग्रंथों की मान्यता थी तथा विदेशी भी भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करते थे।

यदि इस अभिलेख के राजनैतिक महत्व की बात करें तो यह प्राचीन भारत के ऐतिहासिक महत्व वाले महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। इस अभिलेख से हमें निम्न ऐतिहासिक तथ्य ज्ञात होते हैं –

1. इस अभिलेख के लिखे जाने के समय इस क्षेत्र में शुंग शासन अंतिम चरण में था तब इस क्षेत्र में यवन–बख्त्रि शासकों का शासन होने लगा था।

2. इस अभिलेख के हमे यह ज्ञात होता है की इस काल में इस क्षेत्र में अंतलिकीट्स नामक यवन शासक का शासन था।

3. इस अभिलेख के अनुसार अनुसार हेलियोडोरस तक्षशिला का यवन राजदूत था जो अंतलितिकस के समीप था। यह अंतिलितिकस संभवतः इंडो–ग्रीक शासक अंटीआकाइडस था जिसका उल्लेख पतंजलि इस प्रकार करते हैं– 'अरुनद यवनः साकेतं, अरुनद यवनों मध्यमिका' अर्थात पश्चिमी भारत में यवन आ चुके हैं। किन्तु इस शासक की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। अनुमानतः इसे ई.पू. दूसरी शताब्दी के अंतिम चरण में रखा जा सकता है, जिसकी पुष्टि पं.जाब क्षेत्र में पाए गए इसके सिक्कों से होती है।

4. इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है की विदिशा में एक भारतीय शासक काशीपुत्र 'भागभद्र' का शासन था। मालविकाग्निमित्रम के अनुसार इस समय विदिशा में शुंगवंशीय शासकों का राज्य था अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है यह एक शुंग शासक रहा होगा। किन्तु पुराणों में शुंग शासकों के वंश में इस शासक का नाम नहीं मिलता। किन्तु ब्रह्मांड पुराण में 'भद्र' तथा भागवत पुराण में 'भद्रक' या 'भड़क' का नाम आता है जिसे वसुमित्र का उत्तराधिकारी तथा पाँचवाँ शुंग शासक कहा गया है। सर जॉन मार्शल ने इसी शासक से भागभद्र से समता स्थापित की है किन्तु यह सही नहीं प्रतीत होता क्योंकि पुराणों में इसका शासन काल 2 से 7 वर्ष मिलता है जबकि यह स्तम्भलेख भागभद्र के 14 वें वर्ष में स्थापित करवाया गया था। डॉ. भागवतशरण उपाध्याय के अनुसार यह शुंगवंशीय शासक पुष्यमित्र के क्रमशः 5वें या 9वें उत्तराधिकारी 'ओद्रक' या 'भागवत' में से कोई एक रहा होगा। किन्तु पुष्यमित्र शुंग के बाद के शुंगवंशीय शासक भागवत से जो पुराणों की तालिका में शुंगवंश का नवां शासक था तथा जिसका शासनकाल 32 वर्ष था, नागभद्र की समता डॉ.. जायसवाल ने स्थापित की है। भंडारकर, रामप्रसाद चंद तथा डॉ. राजबली पाण्डेय भी इसी मत का समर्थन करते हैं। किन्तु डॉ. रायचौधरी ने इसे उचित नहीं माना है क्योंकि बेसनगर से ही एक दूसरे गरुड़स्तम्भ की प्राप्ति हुई है जो महाराज भागवत के राज्यारोहण के 12वें वर्ष में स्थापित किया गया था। एक ही स्थान से 2 वर्षों के अंतर में एक ही

राजा के दो अलग–अलग नाम 'भागभद्र' व 'भागवत' मिलना तर्क संगत नहीं लगता। अतः उन्होंने काशीपुत्र भागभद्र से भिन्न इसे विदिशा का शासक माना है। राजस्थान के अजमेर जिले के बारली से इसी काल का कल का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें राजा भागवत का उल्लेख है। अतः डॉ.रायचौधरी का यह मत अधिक तर्कसंगत लगता है की अभिलेख में उल्लिखित काशीपुत्र शासक भागभद्र की समता भागवत अथवा भागशुंग से स्थापित नहीं की जा सकती। कुछ विद्वानों का मानना है की यह कोई शुंग शासक ना होकर कोई स्थानीय शासक रहा होगा।

5. इस अभिलेख से यह ऐतिहासिक जानकारी मिलती है की बख्त्रि यवन शासकों ने पुष्यमित्र के काल में गंगा घाटी के विजय में सिकंदर (अलेक्जेंडर) के सेनापति सेल्यूकस की तरह पहले आक्रमण करने तथा असफल होने पर संधि व मैत्री की नीति अपनाते हुए शुंग शासकों से मैत्री की थी।

6. इस लेख से अंतिअकाइडस तथा यवन शासकों के तिथि निर्धारण से सहायता मिलती है।

7. इस अभिलेख में भागभद्र को त्रातारस (यूनानी सोटरस) विश्लेषण से संबोधित किया गया है जिसका अर्थ होता है 'रक्षक' जो अंतलिटिक्स या किसी दूसरे समकालीन यूनानी शासक के लिए भी प्रयोग नहीं किया गया है। यह संभव है की अंतलितिकस किसी संकट में रहा हो जिस समय भागभद्र ने उसकी सहायता या रक्षक की होगी इसी कारण उसे यवनदूत त्रातारस विरुद के साथ संबोधित कर रहा है। किन्तु ऐसे किसी घटना की हमें कोई जानकारी नहीं मिलती।

8. इस अभिलेख से हमने यवन शासक अंतलितिकस तथा भारतीय शासक भागभद्र के मध्य सांस्कृतिक संबंध की भी जानकारी मिलती है जहाँ विदेश शासक के लिए भारतीय उपाधि 'महाराज' तथा भारतीय शासक के लिए यूनानी विशेष 'त्रातारस' जो की यूनानी उपाधि 'सोटेरस' का संस्कृत रूपांतर है का प्रयोग हुआ है। डॉ. सरकार के अनुसार त्रातारस प्रयोग करने कारण यह हो सकता है की इस अभिलेख की मूल रचना किसी यूनानी द्वारा की गई होगी जो की संभवतः हेलियोडोरस हो सकता है।

9. इस अभिलेख से हमें यह ज्ञात होता है की यवनों में वैष्णव धर्म का प्रचार हो चुका था जो की भारतीयों में धार्मिक संकीर्णता के अभाव को

दर्शाता है जिसमें बाह्य लोग भी भारतीय मतों को अपना सकते थे।

12.9 धार्मिक महत्व

इस अभिलेख का सर्वाधिक महत्व वैष्णव धर्म के विकास की जानकारी प्राप्त करने में है। इस अभिलेख से हमें ज्ञात होता है की ई.पू. दूसरी शताब्दी के आसपास इस क्षेत्र में वैष्णव धर्म का प्रचार अधिक मात्रा में थे जिसके प्रभाव में यूनानी भी आ चुके थे तभी भारतीय शासक के क्षेत्र में एक यवन दूत ने वैष्णव ध्वज स्थापित करवाया तथा इसपर अभिलेख उत्कीर्ण करवाया जिसमें वैशावन धर्म के प्रमुख देवता वासुदेव (कृष्ण) का उल्लेख किया तथा उन्हे 'देवदेवस' कहा जिसका अर्थ है 'देवताओं में श्रेष्ठ'। इस स्तम्भ को अभिलेख में गरुड़ध्वज कहा गया था तथा इसके ऊपर गरुड़ का अंकन है जो भगवान विष्णु का मुख्य वाहन है। इस अभिलेख में वैष्णव धर्म से संबंधित प्रमुख ग्रंथ महाभारत से संबंधित एक उपदेश लिखा है जिसमें दम, त्याग व अप्रमाद के अनुष्ठान करने का उपदेश दिया गया है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने इन पदों से अंधकार के विनाश तथा अलौकिक प्रकाश के प्राप्ति की बात की है। यह दूसरी शताब्दी ई.पू. में वैष्णव धर्म के स्वरूप को व्यक्त करता है जब कृष्ण की उपासना उनके पुरषोत्तम के रूप में हो रही है न की उनके लीलामय गोपी वल्लभ रूप में।

वैष्णव धर्म की उत्पत्ति प्रारंभ में नारायण नामक एक अवैदिक देवता से मानी जाती है जो बाद में वैदिक देवताओं में महत्वपूर्ण देवता बन गए। बाद में इन्हे आदिपुरुष माना गया था भागवत नाम से संबोधित किया जाने लगा। इसी से यह संप्रदाय भागवत धर्म के नाम से जाना जाने लगा।

बाद में वैदिक देवता विष्णु जो ऋग्वेद में इन्द्र के सहायक देवता थे तथा इन्द्र से कम महत्वपूर्ण देवता थे भागवत धर्म में समाहित होकर इस धर्म के प्रमुख देवता बन गए। यह नारायण के साथ रूप और कार्य के समानता के कारण एकाकार हुए और अब नारायण विष्णु के नाम से जाने लगे। बाद में इसमें वासुदेव की उपासना प्रारंभ हुई जो वैदिक देवता नहीं थे अपितु मथुरा के पास पूजे जाने वाले एक यादव वीर थे। ये वृष्णियों के प्रधान देवता थे जो वसुदेव और देवकी के पुत्र थे जिन्हे कृष्ण के नाम से भी जाना जाता है। पुराणों में कृष्ण के बाल्यकाल का तथा महाभारत में कृष्ण के युवाकाल का वर्णन है। मेगस्थनीज ने अपनी इंडिका में बताया है की यमुना (जोबरेस) नदी के किनारे शूरसेनो (सौरसेनोई) में कृष्ण की पूजा वासुदेव नाम से की जाती थी। इससे स्पष्ट होता है की मौर्यो के पहले से हि वासुदेव की पूजा का चलन था।

वासुदेव कोपाणिनी के काल में भी धार्मिक देवता के रूप में पूजा की जा रही थी। पतंजलि पाणिनी के एक सूत्र 'ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुम्यश्र' (4.3.98) पर भाष्य करते हुए कहा है की अंधक–वृष्णि वासुदेव की पूजा करते थे। वासुदेव केवल क्षत्रिय नहीं थे बल्कि एक देवता के रूप में पूजे जाने लगे हैं। डॉ. हरिपद चक्रवर्ती के अनुसार यदुवंशी वीर वासुदेव लगभग ई.पू. 150 पतंजलि के काल में देवता के रूप में पूजे जाने लगे थे तथा यूनानी जाति पर भी ई.पू. दूसरी सदी तक स्थापित हो गए थे।

ई.पू. चौथी शताब्दी में वासुदेव धर्म की उपासना मथुरा में प्रचलित थी किन्तु ई.पू. तीसरी शताब्दी में इस संप्रदाय के अधिक उपासक होने के प्रमाण नहीं मिलते। ई.पू. दूसरी शताब्दी के आस पर भागवत धर्म का प्रचार भारत के पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेशों में हो चुका था किन्तु अन्य क्षेत्रों में इसका प्रभाव अत्यंत अल्प था। बेसनगर से ही प्राप्त एक अन्य स्तम्भलेख से हमें ज्ञात होता है की यहाँ भागवत संप्रदाय का मंदिर था। डॉ.. डी. आर. भंडारकर के अनुसार इस मंदिर के भग्नावशेष 156 ई.पू. के हो सकते हैं। बाद के काल में इस संप्रदाय का विस्तर हुआ तथा विदेशी जातियों ने भी स्वीकार किया।

इस अभिलेख से ज्ञात होता है की दूसरी शताब्दी ई.पू. में वैष्णव धर्म के प्रमुख देवता वासुदेव थे जिनके लिए 'देवदेवस' विश्लेषण का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है सभी देवताओं में श्रेष्ठ। यह कृष्ण–वासुदेव से संबंधित है। पाणिनी ने सम्मिलित रूप से वासुदेव और अर्जुन संप्रदाय का वर्णन किया है किन्तु दूसरी सदी ई.पू. के इस अभिलेख में अर्जुन का नाम न होकर केवल वासुदेव का ही उल्लेख मिलता है जो की वैष्णव धर्म के विकास का दूसरा चरण दर्शाता है।

इस स्तम्भ के शीर्ष पर गरुड़ का अंकन है जो की विष्णु के वाहन के साथ साथ सूर्य का भी प्रतीक है। अतः सूर्य–उपासना और वासुदेव की पूजा के बीच इस समय घनिष्ठ संबंध स्थापित हो चुका था। डॉ. विन्सेंट स्थिम के अनुसार रोम की कला में निर्मित 'ईगल' की प्रतिमा गरुड़ के रूप में यहाँ निर्मित की गई है। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार यह धारणा गलत प्रतीत होती है क्योंकि यह पक्षी गरुड़ है जिसका संबंध पौराणिक ग्रंथों में वैष्णव धर्म के साथ बताया गया है तथा जिसकी चर्चा इस अभिलेख में हुई है। इस भारतीय धर्म के साथ विदेशी भावना को जोड़ना अत्यंत अनुचित और प्रासंगिक है।

इस अभिलेख के दूसरे खंड में तीन अमृत पदों दृ दम, त्याग और

अप्रमाद का समुचित रूप से अनुष्ठान करने की चर्चा की गई जो की एक उपदेशात्मक लेख लगता है। दम, त्याग और अप्रमाद के पालन का आदेश महाभारत में भी दिया गया है (दमसत्यागोप्रमदाश्च एतेष्वमृतमहितम् – महाभारत 5.43.23) इसी से मिलता जुलता उपदेश धम्मपद में भी मिलता है (अप्यमादो अमेतदं पमादो मच्चुनों पदं धम्मपद 2.1)। डॉ. रायचौधरी के अनुसार महाभारत के इस उद्धरण को इस अभिलेख में उत्कीर्ण कराने का यह अर्थ है की यूनानी दूत संस्कृत जानते थे।

मथुरा के अतिरिक्त पं.जाब, पश्चिमी सीमा प्रदेश तथा मध्य एशिया में भी इस धर्म का विस्तार हो चुका था। अतः पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत में स्वदेशियों तथा विदेशियों के बीच यह धर्म फैल चुका था। लगभग ई.पू. दूसरी शताब्दी की एक चतुर्भुजी विष्णु की प्रतिमा छत्तीसगढ़ के मल्हार से भी प्राप्त हुई थी जिसमें ब्राह्मी में एक अभिलेख लिखित है। राजस्थान में आदि क्षेत्रों में भी वैष्णव धर्म के प्रचार के प्रमाण घुसूँडी आदि अभिलेखों से मिलते हैं।

12.10 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं की लगभग ई.पू. दूसरी शताब्दी का यह गरुड़ स्तम्भ अभिलेख तात्कालिक एतिहासिक राजनैतिक, संस्कृति तथा विशेष रूप से धार्मिक महत्व की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण अभिलेख है जिससे हमें उस काल में हिन्द–यवन शासकों की स्थिति, उनके भारतीय शासकों से संबंध, उनमें भारतीय धर्मों के प्रति सम्मान व भारत में वैष्णव धर्म के प्रचार के बारे में विशेष जानकारियाँ प्राप्त होती है।

बेसनगर का हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख भारतीय इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। लिपि व भाषा के आधार पर इसकी तिथि को विद्वानों दूसरी सदी ई.पू. के काल में रखते हैं। यह अभिलेख तक्षशिला के यवन शासक अंतलितिकस के दूत हेलियोडोरस द्वारा काशीपुत्र के भागभद्र के चौदहवें वर्ष में वासुदेव के सम्मान में गरुड़ स्तंभ स्थापित कराने के उपलक्ष्य में उत्कीर्ण करवाया गया था। यह अभिलेख दूसरी सदी के आसपास भारत के राजनैतिक, धार्मिक व सामाजिक स्थिति का अध्यायन करने में विशेष सहायता करता है। यह अभिलेख यवनों में भारतीय धर्मों के प्रभाव का तथा उनके भारतीय शासकों से संबंध को दर्शाता है। इस अभिलेख से उस काल में भागवत धर्म के प्रभाव पर प्रकाश डालता है।

12.11 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि – डॉ. शिव स्वरुप सहाय
2. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख – डॉ.. परमेश्वरी लाल गुप्त
3. पाणिनी अष्टाध्यायी सूत्र
4. आर्केओलॉजी सर्वे रिपोर्ट 1914–15
5. H H Lake (1910). Besnagar (JRAS, Vol. XXII). RoyalAsia-tic Society
6. Early Brahmi Records in India-

12.12 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख किस शासक से संबंधित है तथा यह कहाँ स्थित है ?
2. हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।
3. हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख किस भाषा व लिपि में उत्कीर्ण है एवं यह किस काल से संबंधित है ?
4. हेलियोडोरस गरुड़ स्तंभलेख के धार्मिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक महत्व पर वर्णन कीजिए।

इकाई 13 : खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 मूल पाठ

13.3 हिन्दी अर्थान्तर

13.4 भाषा व लिपि

13.5 ऐतिहासिक महत्व

13.6 अभिलेख के अध्ययन सम्बन्धी समस्याएं

13.7 सारांश

13.8 संदर्भ ग्रंथ

13.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत हाथीगुंफा अभिलेख उड़ीसा (कलिंग) के शासक खारवेल से संबंधित है। यह अभिलेख उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर से 5 किमी दूरी पर स्थित उदयगिरी पहाड़ी में स्थित है, यह अभिलेख कलिंग शासक खारवेल का एकमात्र अभिलेख तथा खरवेल के इतिहास का एकमात्र स्रोत है। इस अभिलेख का कलिंग के इतिहास में विशेष महत्व है तथा कलिंग के एक महत्वपूर्ण राजवंश महमेघवाहन का इतिहास ज्ञात होता है। जो की मौर्यकाल के बाद कलिंग के संभवतः सबसे अधिक शक्तिशाली राजवंश था। क्योंकि इस राजवंश के इतिहास से संबंधित कोई साहित्यिक स्रोत नहीं मिलता अतः यह अभिलेख महामेघवाहन राजवंश तथा कलिंग के अंधकारमय इतिहास का एक मात्र स्रोत माना जा सकता है।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम ई.पू. 1 के लगभग शताब्दी में भारत तथा उड़ीसा (कलिंग) के इतिहास के अध्ययन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में खारवेल के हाथीगुंफा अभिलेख (छायाचित्र पृ.192) का अध्ययन तथा भारत, उड़ीसा

(कलिंग) के इतिहास में इस अभिलेख के एटिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक व अन्य परिपेक्ष्यों में करेंगे।

13.2 मूल पाठ

1. नमो अरहंतानं (।) णमो सवसिधानं (।।) ऐरेण महाराजेन महामेघवाहनेन चेति–राज–वंस–वधनेन–पसथ–सुभलखलेन चतुरंतलुठ (ण)–गुण–उपेनेत कलिंगाधिपतिना सिरि–खारवेलेन।

2. (पं.) दरस–वसानि–सीरि–(कडार) सरीर–वता कीडिता कुमार कीडिका (।।), ततो लेख रूप–गणना–ववहार–विधि–विसारदेन सव–विजावदातेन नव–वसानि योवराजं (प) सा –सितं (।।) संपुणं–चतुविसति–वसो तदानि वधमान–सेसयो–वेनाभिविजयो ततिये।

3. कलिंग–राज–वंसे पुरिस–युगे महाराजभिसेचनं पापुनाति (।।), अभिसितमतो च पधमेवसेवात–विहत–गोपुर–पाकार–निवेसनं पटिसंखारयति कलिंगनगरि खिबी (रं) (।) सितल तडाग–पाडियो च बंधापयति सवूयान प(टि), संथपनं च।

4. कारयति पनति (सि ?) साहि सत–सहसेहि पकतियो च रंजयति (।।), दुतिये च वसे अचितयिता सातकनिं पछिम–दिंस हयं–गज–नर–रध–बहुलं दंडं पठापयति (।) कन्हवेंण–गताय च सेनाय वितासिति असिकनगरं (।) ततिये पुन वसे।

5. गंधव–वेद–बुधो दप–नत गीत–वादित–संदसनाहि उसव–समाज–कारापनाहि च कीडापयति नगरिं (।।) तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहतपुवं कलिंग–पुव–राज–खनिवेसितं, ...वितध–म(कु)ट स....निखित–छत(?),

6. भिंगारे (हि) त–रतन सपतेये सव–रठिक भोजके पादे वंदापयति (।।)पं. चमे च दानी वसे नंदराज–तिवससत–ओ (घा) टितं तनसुलिय–बाटा पनाणि नगरं पवेस (य), ति सो...(।।) अभिसितो च (छठे वसे) राजसेयं संदंसयंतो सवकर–वण–

7. अनुगह अनेकानि सतसहसानि विसजति पोर जानपदं (।।) सतमं च वसे (पसा) सतो वजिरधर... स मतुक पद (कु) म...(।) अठमे च वसे महता सेना...गोरधगिरिं

8. घातपयिता राजगहं उपपीडयति (।), एतिन (।) कंमपदान–स () नादेन...

सेन–वाहने विपमुचितुं मधुरं अपयातो यवनरा (ज) (डिमित)...यछति... पलव

9. कपरूखेहयगजरधसह यति सवघरावास.....सव गहणं च कारयितुं बम्हणनं ज(य) परिहार ददाति (।) अरहत... (नवमे च वसे)

10. ..... महाविजय– पासादं कारयति अठतिसाय सत–सहसेहि (।।) दसमे च वसे दंडसंधिसा (ममयौ) भरघवस–पठानं मह (ी) जयनं (?) ... कारापयति (।।) एकादमे च वसे प (ा) यातानं च म (नि), रतनानि उपलभते (।।)

11. ...पुवराज–निवेसितं पीथुडं गदभनंगलेन कासयति (।) जन (प) दभावनं च तेरसवससत कतं भि (।) दति त्रमिस्रदह संघातं (।) बारसमे च वसे. .... (सह) सेहि वितासयति उतरापध राजनो

12. म (ा) गधानं च विपुल भयं जनेतो हथसं गंगाय पाययति (।) मा (ग) ध (।)च राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति (।) नंदराज–नीतं चका (लिं) ग–जिनं संनिवेसं..... अंग मगध वसुं च नयति (।।)

13. ...(क) जठर– (लखिल) (गोपु) राणि सिहराणि निवेसयति सतविसिकनं (प) रि (हारे हि) (।) अभुतमछरियं च हथीनिवा(स) परिहर ..... हयहथीरतन (मानिकं) पं.डराजा .....(भु) त–मनिरतनानि आहारापयति इध सत (सहसानि)

14. .....सिनो वसीकरोति (।) तेरसमे च वसे सुपवतविजयचके कुमारीपवते अरहते (हि) परिवन सं खसि, तेहि कायनिसीदियाय यापूजावकेहि राजभितिनं चिनवतानि वासा(।) (सि) तानि पूजानुरतउवा (सगखा) रवेलसिरिना जीवदेह (सायि) का परिखाता (।।)

15. .....सकत–समण सुविहितानं च सव–दिसानं ञ (नि) नं (?) तपसि–इ खसि, न संघियनं अरहतनिसीदिया–समीपे पाभारे वराकार–समुथापिताहि अनेक–योकना– हिताहि..... सिलाहि ....

16. .....चतेरे च वेडुरिय–गभे थभे पतिठापयति पानतरीय–सतसहसेहि (।) मु (खि)–य –कल–वौछिनं च चोय (ठि)–अंग संतिक (।) तुरियं उपादयति (।) खेम–राजा स वढ–राजा स भि–राजा धमराजा पसं (तो) सुनं (तो) अनुभव (तो) कलानानि

17. ...गुण विसेस कुसलो सव पासंड पूजको सवदेवायतन संकार कारको

अपतिहत चक वाहन बलो चकधरो गुतचको पवत चको राजसि वसुकुल विनिसितो महाविजयो राजा खारवेल सिरि (।।)

13.3 हिन्दी अर्थान्तर

1. अरहंतों को नमस्कार। सब सिद्धों को नमस्कार। आर्य, महाराज महामेघवाहन, चेदिराज के वंशवर्धन करने वाले, प्रशस्त एव शुभ लक्षणयुक्त चतुर्दिक प्रशस्त गुणों से पूर्ण, कलिंगाधिपति श्रीखारवेल ने

2. पं.द्रह वर्ष तक धूल धूसरित शरीर से बाल क्रीडा किया। तदन्तर लेख, रूप, गणना तथा व्यवहार–विधि में विशारद, सभी विद्यायों (ज्ञान) से प्रकाशित नववर्षों तक युवराज पद पर बना रहा। इस प्रकार 24 वर्ष पूर्ण होने पर, शैशव से वर्धमान पृथु के समान विजय करने वाले वह युवा होने पर

3. कलिंग राजवंश की तीसरी वंश पीढ़ी में राज्याभिषेक प्राप्त किया। अभिषिक्त होने के प्रथम वर्ष तीव्र वायुवेग से क्षतिग्रस्त गोपुर एवं प्रकार पुनिर्मित कराया।

4. कलिंग नागरी के दुर्गों का जीर्णोद्धार कराया। शीतल जल युक्त सीढ़ियों से अलंकृत तड़ागों को बनवाया। 35 लाख मुद्रा खर्च कर प्रजा का रंजन किया। द्वितीय वर्ष में शातकर्णी का विचार न करके पश्चिम दिशा में बहुत से घोड़ों, हाथियों, पैदल सैनिकों तथा रथों से युक्त बहुत बड़ी सेना को भेजा और कृष्णवेणा तट पर गई हुई सेना द्वारा मूषिकनगर को त्रस्त किया।

5. पुनः तीसरे वर्ष में गांधर्व शस्त्र के ज्ञाता खारवेल द्वारा मल्ल, नृत्य, गीत, वादन, प्रदर्शन तथा उत्सव एवं समाज के द्वारा, नगर के लोगों का मनोविनोद किया तथा चौथे वर्ष में पूर्वकाल में अक्षत, कलिंग के पूर्व राजाओं द्वारा निर्मित विद्याघरों के अधिवास (नगर) को ...विथटकिरीट टाटा क्षिप्तक्षत्र –

6. शृंगार एवं रत्नसंपत्ति सब राष्ट्रिकों एवं भोजकों से छीना और उनसे पद वंदना कराया। पांचवें वर्ष में नंदराज द्वारा 300 वर्षों पूर्व उद्घाटित तनसुली नहर को नगर में प्रविष्ट कराया। राज्याभिषेक के छठें वर्ष राजैश्वर्य को प्रदर्शित करते हुए सब वर्णों.....?

7. पर अनुग्रह करते हुए लाख मुद्राओं को पौर और जनपद पर व्यय किया।

प्रशासन के सातवें वर्ष वाजिरधर की रानी से उसे पुत्र उत्पन्न हुआ। आठवें वर्ष महती सेना ...(द्वारा) गोरथगिरी को वाहन के भी से छोड़कर यवनराज डिमित मधुरा (मथुरा) भाग गया।

8. घोड़ों, हाथियों तथा रथों सहित गया सब गृहवास...और सब को कराने के लिए (सब के स्वीकार के लिए ..?) ब्राह्मणों को जयोपलब्ध प्रदान किया।.....नवें वर्ष में

9. 1138 मुद्राओं द्वारा महान विजय–प्रसाद बनवाया। दसवें वर्ष दंड–संधि साम–नीतियुक्त खारवेल ने (सेना) का भारतवर्ष की महती विजय हेतु प्रस्थान... कराया। तथा ग्यारहवें ने .....पलायित राजाओं का मणिरत्न ग्रहण किया।

10. ..पूर्व राजा की राजधानी पिथुण्ड नगर को गदहों से जुटवाया। जनपद के लिए 1300 वर्षों में बने त्रिमिस्रह्रद का भेदन किया तथा बारहवें वर्ष... हजारों सैनिकों द्वारा उत्तरपथ के राजा को भयाकाल किया

11. मागधों में अत्यधिक भी उत्पन्न करते हुए हाथियों तथा घोड़ों को गंगा में जल पान कराया। मगध के राजा वृहस्पतिमित्र से पाने चरणों की वंदना कराई। नंदराज द्वारा (पाटलिपुत्र) ले जायी गयी कलिंग से जिन (की प्रतिमा) को वाहन वापस लाया। ...अंग तथा मगध का धन ले गया।

12. दृढ़ एवं सुंदर गोपुर के शिखरों को बनवाने के लिए 100 विंशक मुद्राएं व्यवय की, अद्‌भुत तथा आश्चर्यजनक हस्ति निवास को अपहृत किया.... घोड़े हाथी तथा माणिक्य, पाण्ड्य राजा से 1100 मुक्ता एवं मणिरत्न छीन कर यहाँ ले आया ...

13. वासियों को वक्ष में किया। तेरहवें वर्ष में विजयचक्र के सुप्रवर्तित होने पर जीर्ण आश्रय वाओए धर्मोपदेशक अरहंतों के विश्राम–हेतु राजपुष्ट व्रतों का आचरण करने वाले, वर्षाश्रितों की पूजा में अनुरुक्त, उपासक श्री खारवेल द्वारा कुमारी पर्वत में आश्रय–गुहायें खुदवायी गयीं।

14. श्रमणों को सत्कृत करने वाले ने संघीय, सर्वदेशीय, सुविहित ज्ञानी, तपस्वी, ऋषियों का पर्वतपृष्ट में अर्हत विश्रामवास के समीप कई योजनों से लाई गई, सुष्ठु प्रकार से स्थापित की गई शिलाओं द्वारा

15. चत्वर में अंतर्भाग में वैदूर्ययुक्त 1105 मुद्राओं द्वारा, स्तम्भ स्थापित किया। (गीत नृत्यादि) प्रमुख कलाओं से समन्वित चौसठ प्रकार के वाद्यों से पूर्ण शक्तिकालीन सूर्य को उत्पन्न किया। क्षेमराज, वृद्धराज, धर्मराज, कल्याणों

को देखते, सुनते और अनुभव करते हुए।

16. गुणों में विशेष निपुण, समस्त पार्षदों का पूजक, सभी देव प्रतिमों का संस्कार करने वाला, राजर्षि वसु–कुलोत्पन्न, महाविजयी राजा श्रीखारवेल।

13.4 भाषा व लिपि

डॉ.. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार इस हाथीगुंफा अभिलेख की भाषा संस्कृत है किन्तु डॉ. सरकार ने इसकी भाषा पालि युक्त प्राकृत माना है। इस लिपि में मौर्यकालीन ब्राह्मी से थोड़ा परिवर्तन व विकास दिखता है जिनका अध्ययन हमने पिछले अध्यायों में किया तथा इस अभिलेख में नंदों के 300 वर्ष बाद की घटनाओं का वर्णन करते हैं, जिससे यह लिपि ई.पू. लगभग ई.पू. पहली सदी शुंगकालीन ब्राह्मी सिद्ध होती है।

13.5 ऐतिहासिक महत्व

यह अभिलेख आज के पुरी, गंजाम और कटक जिला सम्मिलित एक शक्तिशाली राज्य था जिसमें दक्षिण के कुछ तेलगू भाषी क्षेत्र भी सम्मिलित रहे। मगध के पड़ोसी होने से मगध शासक सदा इसे अधिक रखने और यह स्वतंत्र रहने के प्रयास में रहता था।

कलिंग का इतिहास अब तक अनिश्चित है। कलिंग नंदों के समय मगध के अधीन था जिसका प्रमाण इस अभिलेख के 12वीं पंक्ति में वर्णित नन्द शासक द्वारा कलिंग की जिन मूर्तियों को ले जाने की बात से स्पष्ट होती है, किन्तु चन्द्रगुप्त व बिन्दुसार के काल में कलिंग मगध के अधीन था या नहीं यह अनिश्चित है। इनके बाद अशोक द्वारा अपने राज्यकाल के 8 वें वर्ष में कलिंग को युद्ध में विजित करने का प्रमाण उसके 13वें अभिलेख से मिलता है जो भी यह सिद्ध करता है की कलिंग अशोक के राज्यारोहण के काल में स्वतंत्र था। अशोक के बाद कलिंग कब तक मगध के अधीन रहा यह निश्चित नहीं है।

खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से हमें मौर्यकाल के बाद के कलिंग के इतिहास की जानकारी मिलती है जो की हमें किसी अन्य स्रोत से नहीं मिलता।

इस अभिलेख में कलिंग के शासक खारवेल के जीवन के प्रारम्भिक 13 वर्षों तक का क्रमिक एवं विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार से वर्षानुसार क्रमिक विवरण देने का उदाहरण अभी तक किसी अन्य अभिलेख से नहीं मिला है। इस अभिलेख की कुछ पं.क्तियाँ घिस चुकी है जिससे उनको पढ़ना अत्यंत कठिन है तथा उनके पाठ संदिग्ध है।

इस अभिलेख के संबंध में मुख्यतः दो समस्याएं आज भी चुनौती बनी हुई है

1. यह अभिलेख किसने उत्कीर्ण कराया ?
2. खारवेल की तिथि कया है ?

इस अभिलेख में खारवेल को चेदिवंशीय शासक कहा गया है। डॉ. चंद के अनुसार इस वंश का उल्लेख वेसन्तर जातक में हुआ है, मिलिंदपन्हों में भी चेति वंश का संबंध से बताया है। चेदि शासकों ने बुंदेलखंड में भी लंबे समय तक शासन किया। अनुश्रुति के अनुसार चेदि शासक यहीं से दक्षिण कोसल होते हुए कलिंग गए होंगे। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार 'एरण' चेदिवंशी क्षत्रिय थे। क्योंकि चंद्रवंशी राजर्षि वसु के परिवार से उत्पन्न हुआ था। सरकार के अनुसार एरेण का अभिप्राय आर्य है, जो संभवतः उन्हे उड़ीसा के आर्येत्तर लोगों से अलग रखने के लिए कहा गया है।

इस अभिलेख के आरंभ में ही खारवेल के लिए तीन विशेषणों का प्रयोग किया गया है। खरवेल, कलिंगाधिपति, महाराजा, महामेघवाहन। बरुआ के अनुसार यह पुराणों मे वर्णित मेघवंश है जिसे महामेघवाहन वंश है। किन्तु पुराणों के अनुसार मेघवंश का राज्य कोशल में था, जबकि अभिलेख में उल्लेखित खारवेल का शासन कलिंग में था। यह संभव है की ये कोशल से ही कलिंग गए हो।

इस अभिलेख में खारवेल को चेदि वंश का बताया गया है। डॉ. विमल चंद्र पाण्डेय ने मेघवाहन को इस वंश क शासक रहा होगा। किन्तु इसकी भी पुष्टि नहीं है। यह प्रथम भारतीय नरेश है जिसने 'महाराज' की उपाधि धारण की थी जिसका अभिप्राय इन्द्र से भी लिया गया है।

कलिंगाधिपति से स्पष्ट है की खारवेल कलिंग का राजा था और शौर्य में महामेघवाहन अर्थात मेघ वंश में इन्द्र के समान वीर व पराक्रमी था। चेदि राज्य में बसने के कारण ये चेदिवंशीय कहलाये और इन्हीं की एक शाखा ने उड़ीसा में शासन किया। खारवेल इस वंश के तीसरे शासक थे। इस वंश के पहले शासक का नाम वसु का मिलता है (वसु कुल विनिश्रितो) मंचपुरी गुहा (उदयगिरि पहाड़ियों में) के निचले मंजिल का निर्माण उसके अभिलेखानुसार महामेघवाहन वंश के वक्रदेव ने कराया था जिसकी ऊपरी मंजिल वहां के दूसरे अभिलेख के अनुसार खारवेल की पटरानी द्वारा कराया गया था, जो उनके बाद की पीढ़ी की रही होगी क्योंकि ऊपरी मंजिल निचली (वक्रदेव) मंजिल के बाद बना होगा। इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता है की इस वंश शासक क्रमशः वसु दृ वक्रदेव दृ खारवेल शासक रहे होंगे। इनमें केवल खारवेल का इतिहास ही हमें इस अभिलेख से ज्ञात होता है।

इस अभिलेख का आरंभ अरहंतों व सिद्धों को प्रमाण करते हुए होता है जिससे यह संकेत मिलता है की खारवेल संभवतः जैन धर्मानुयायी रहा होगा। आगे की पं.क्तियों खारवेल के आरंम्भिक 15 वर्ष के सामान्य बाल्यकाल का वर्णन मिलता है जिसके बाद 9 वर्षों तक वह युवराज बना राहत है। इस समय में वह विभिन्नन विद्याओं का अध्ययन किया जिसमें लेखन, रूप, गणना, व्यवहार, विधि आदि का उल्लेख है। इस प्रकार 24 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद वह कलिंग का राजा बना दिया जाता है। 24 वर्ष की आयु में ही राजा बनने से यह संकेत मिलता है कि संभवतः खारवेल के पिता की मृत्यु हो गई हो गई होगी या उन्होंने सिंहासन का त्याग कर दिया होगा। इसके बाद अभिलेख के तीसरी पं.क्ति से ही खारवेल के कृतियों का वर्ष क्रमानुसार वर्णन मिलता है।

राज्य के प्रथम वर्ष में उसने तीव्र वायु (आंधी) से क्षतिग्रस्त हुए गोपुर और प्रसाद को पुनर्निर्मित करवाया तथा 35 लाख द्रव्य का व्यय करके बगीचों एवं शीतल जलाशयों का निर्माण करवाया।

दूसरे वर्ष में उसने आंध्र के शासक शातकर्णी की चिंता न करते हुए अपनी सेना को पश्चिम में आक्रमण करने भेजा। जिन्होंने कश्यप क्षत्रियों की सहायता के लिए इसने मूषिक नगर को विनष्ट कर दिया। इस तथ्य से हमें यह पता चलता है की खारवेल सातवाहनों का समकालीन था जिससे खारवेल का काल ज्ञात करने में सहायता मिलती है जो कि प्रथम सदी ई.पू. में आंध्र में शासन करने वाला एक प्रमुख राजवंश था। इस पं.क्ति में खारवेल की सेना का सातवाहनों से युद्ध होने का वर्णन नहीं मिलता, संभव है की मूषिक नगर सातवाहनों के प्रभाव में या नियंत्रण में रहा होगा। इस लेख में उल्लेखित सातकर्णी सातवाहन वंश का कौन स शासक था यह स्पष्ट नहीं है।

तीसरे वर्ष में खारवेल ने अपनी विजय के उपलक्ष्य में उत्सव का आयोजन करवाया जिससे राज्य की प्रजा का मनोरंजन हुआ।

खारवेल ने अपने राज्य के चौथे वर्ष पुनः रठिक और भोजकों पर आक्रमण कर उनके छत्र और स्वर्ण पात्र को तोड़ दिया था, उनकी रत्न और संपत्ति छिन ली और उन्हें चरणों में झुकने के लिए विवश कर दिया। इसी वर्ष उसने विद्याधरों के अधिवास और उनके वितथ मुकुट हो जाने की चर्चा है। डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार इस संदर्भ में जैन संप्रदाय के विद्याधर के नाम लेने से लगता है कि रठिक और भोजकों को जीतना उद्देश्य नहीं था बल्कि विद्याधर संप्रदाय की सुरक्षा के लिए युद्ध लड़ होगा संभवतः रठिक व भोजकों को खारवेल ने अपने साम्राज्य में विलीन नहीं किया होगा।

पांचवें वर्ष में नन्द राजा द्वारा 300 वर्ष पूर्व निर्मित तनसुली नामक नहर को उसने अपनी राजधानी में सिंचाई की सुविधा प्रदान के लिए बढ़ावा दिया।

छठे वर्ष में उसने पुर तथा जनपद के लोगों को 1,00,000 मुद्राओं के व्यवय से अनेक सुविधाएं प्रदान किया।

सातवें वर्ष में वाजिरधर की रानी से खारवेल को एक पुत्र प्राप्त हुआ।

आठवें वर्ष खारवेल को पर आक्रमण किया और राजगृह के बाह्य भाग में गोरखगिरी पर तूफान की तरह यह चढ़कर वहां की जनता को उत्पीड़ित किया। इससे दिमित (डेमेट्रियस ?) डर कर अपनी सेना सहित और वाहनों के साथ भाग गया। पर यह द्वितीय शताब्दी ई.पू. का शासक था जो की खारवेल का समकालीन नहीं हो सकता। अतः यह कोई पूर्वी पं.जाब और मथुरा का स्थानीय हिन्द–यवन शासक रहा होगा। अब यह दिमित पाठ भी गलत बताया जा रहा है।

नवें वर्ष में खारवेल ने मगध की विजय के उपलक्ष्य में एक महाविजय प्रसाद का निर्माण कराया तथा हाथी, घोड़े और घुड़सवार को ब्राह्मणों को दान दिया।

दसवें वर्ष में उसने भरधवस (भारतवर्ष) का विजय अभियान में निकला। यहाँ भारतवर्ष से तात्पर्य उत्तरापथ से है किन्तु इस अभियान में किन राज्यों को विजिट किया तथा किनपर इसका प्रभाव पड़ा स्पष्ट नहीं है। संभवतः उसने उत्तरापथ के राज्यों को विजित कर केवल वहां की धन व संपत्ति लेकर वापस लौट गया होगा।

अपने राज्यवर्ष के ग्यारहवें वर्ष में उसने दक्षिण की ओर अभियान किया जिसने पिथुण्ड नगर को गदहों से जुतवाया था तथा पराजित शत्रुओं का मणि–रत्न प्राप्त किया। इसी वर्ष खारवेल ने राजाओं के संघ को तोड़ दिया था। टॉलमी के अनुसार मूसल की राजधानी था जो कृष्णा और गोदावरी नदियां के बीच स्थित था।

खारवेल में अपने राज्यवर्ष बारहवें वर्ष में उत्तरापथ के राजाओं पर आक्रमण कर उन पर विजित किया। जिसके बाद वह मगध को ओर गया जहाँ उसने अपने हाथी घोड़ों को गंगा का पानी पिलाया। यहाँ मगध के राजा वृहस्पतिमित्र से अपने चरणों का वंदन कराया तथायहाँ से उसने 300 वर्ष पूर्व नन्द शासक द्वारा पाटलिपुत्र ले जाई गई जैन प्रतिमाओं को वापिस लाया। इस विजय के बाद खारवेल मगध और बंग से बहुत सा धन लेकर आया। इसके बाद वह दक्षिण में पाण्ड्यों को विजित प्राप्त कर 10000 मणि और मोती लाया तथा पर्वत की चोटियों को गोपुरों और प्रासादों से सुशोभित कराया। डॉ.

काशीप्रसाद जायसवाल ने वृहस्पतिमित्र की तुलना पुष्यमित्र से किया है क्योंकि दोनों के नामों में अंत में मित्र शब्द है एवं ज्योतिष में बृहस्पति को पुष्य नक्षत्र का स्वामी माना जाता है इसलिए वह मानते की यहाँ पुष्य के स्थान वृहस्पति लिखा गया है। इसके बाद इसने वासियों को अपने नियंत्रण में ले लिया। पर डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार यह धारणा मान्य नहीं है लगती है क्योंकि मगध के शासन के तेरहवें वर्ष में खारवेल ने कुमारी खलटिक पर्वत पर जैनों की एक सभा बुलायी और मंदिर बनवाया। इस सभा में जैन धर्म के आठों अंगों और चौसठों कलाओं को पुनः संगठित किया गया।

इसके बाद श्रमणों व अरहंतों के विश्रामावास के लिए 1105 मुद्राओं के व्यवय से चत्वर में अंतर्भाग में वैदूर्ययुक्त स्तम्भ स्थापित करवाया।

इसके बाद खारवेल ने आनंदमय जीवन व्यतीत किया और अपने देश में जनता का गौरव पुनः स्थापित किया। उसका सम्राज्य में अदर था तथा वह विभिन्नन गुणों से युक्त और कलाओं से सम्पन्न था उसका साम्राज्य अंत्यन्त विस्तृत था।

अभिलेख की समस्याएं

इस अभिलेख के अध्ययन में हमें कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो की निम्न है –

1. इस अभिलेख में खारवेल को वसु के परिवार का बताया है, वसु महाभारत में कुरुवंश के पौरव राजा के परिवार का पाँचवाँ शासक कहा गया है। उसने सम्राट तथा चक्रवर्तिन की उपाधि धारण की थी तथा उसके राज्य में मगध तथा मत्स आदि सम्मिलित थे। किन्तु यह चेदि वंश का नहीं था। क्योंकि उसने यादवों से चेदि राज्य को जीता था इसलिए इसकी उपाधि 'चेदिपरिचर' मिलती है।
2. खारवेल के लिए 'ऐट' की उपाधि से संबोधित किया गया है। डॉ. बनर्जी के अनुसार इसका संस्कृत रूप 'ऐल' है तथा उन्होंने इस नाम की समता पौरव की माता या पिता के नाम से किया है। बी. एम. बरुआ के अनुसार इसका संस्कृत रूप 'आर्य' है तथा इसका अर्थ 'स्वामी' है। डॉ. जायसवाल ने भी यही स्वीकार किया है किन्तु इसका प्रयोग करने का उद्देश्य संभवतः कलिंग के द्रविड़ लोगों से खारवेल को अलग दिखाना माना है। डॉ. सुकुमार सेन ने 'ऐट' की समता वैदिक 'इर्य' से किया है जिसका अभिप्राय ईश्वर संप्रदाय के उपासकों से है, जो मान्य नहीं प्रतीत होता। डॉ. दिलीप कुमार गांगुली ने 'आर्य' की ही समता को ठीक माना

है तथा इसका प्रयोग उसको सम्मान प्रदान करने वाला कहा है।

3. खारवेल के पूर्व के शासकों का ज्ञान इस अभिलेख से प्राप्त नहीं होता। डॉ. राखलदास बनर्जी के अनुसार इसके दो कारण हो सकते हैं– (1) चाहे तो अल्पायु में ही उसने गद्दी प्राप्त की हो या (2) उसका पैत्रिक पक्ष संदिग्ध रहा हो क्योंकि खारवेल कलिंग में किसी प्रकार का मातृसत्तात्मक परिवार रहा हो। पर ये दोनों संभावनाएं भी स्वीकार नहीं की जा सकती क्योंकि खारवेल पुरुषयुग में गद्दी पर बैठा तथा कलिंग में मातृसत्तात्मक परिवार होने के प्रमाण नहीं हैं। संभव है की चतुर्थ सदी के पूर्व तक अभिलेखों में वंशावली के विवरण की परम्परा न होने के कारण यह अभाव हाथीगुंफा अभिलेख में भी मिलता है।

4. इस अभिलेख का 'महामेघवाहन' कौन था इस प्रकार डॉ. दिनेश चंद्र सरकार का मत है की उक्त अभिलेख में महामेघवाहन इस वंश की तीन पीढ़ी के शासकों के प्रथम था। जिसके अनुसार खारवेल का दादा कहा जा सकता है की जो अमान्य है। एक फ्रांसीसी विद्वान के अनुसार खारवेल की तरह महामेघवाहन (महा़मेघवाहन) दो शब्दों के योग से बना है। डॉ. बरुआ के अनुसार कलिंग के चेदि, पुराणों में वर्णित मेघवंशीय हैं। पर यह मान्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि मेघ कोशल में थे और चेदि कलिंग है।

5. खारवेल की तिथि अत्यंत विवादास्पद है जिसके निराकरण में विद्वानों ने अनेकों मत दिए है। खारवेल की तिथि के लिए इसी अभिलेख में उल्लेखित नंद शासक के 300 वर्ष पूर्व होने, सातकर्णी का उल्लेख, तथा खारवेल की पत्नी मंजपुरी गुहालेख जैसे अन्य स्रोतों के आधार पर कुछ समाधान करने का प्रयास किया गया है जो की निम्न है –

    5.1 इस अभिलेख में वर्णित सातकर्णी का वर्णन है जो की सातवाहन शासक था, सातवाहनों का काल ई.पू. प्रथम शताब्दी माना जाता है।

    5.2 अभिलेख में एक स्थान पर वर्णन है की खारवेल 300 वर्ष पूर्व नन्द शासकों द्वारा बनवाए गए तनसुलीय नहर को अपने नगर ले आया था। यह सर्वविदित है की नंदों का काल मौर्यों से पूर्व लगभग चौथी शताब्दी व उससे पूर्व का है।

    5.3 इस अभिलेख में मगध के शासक वृहस्पतिमित्र का उल्लेख

मिलता है जो संभवतः शुंग शासक रहा होगा। शुंगों का काल भी ई.पू. 2 शताब्दी के लगभग था।

5.4 अभिलेख में वर्णित दिमित संभवतः हिन्द–यवन शासक डेमीट्रियस रहा होगा, हिन्द–यवन शासकों का काल भी लगभग ई.पू. 2 शताब्दी माना जाता है।

इन सभी तथ्यों के आधार पर विद्वानों के विभिन्नन तर्क हैं। डॉ. काशी जायसवाल तथा बनर्जी के अनुसार यह दूसरी सदी ई.पू. के पूर्वार्ध में सिंहासन पर बैठा। जिसका आधार उन्होंने दिमित को डेमीट्रियस तथा वृहस्पतिमित्र को पुष्यमित्र मानकर लिया। डॉ. भगवान लाल इन्द्रजी के अनुसार यह 103 ई.पू. में कलिंग का शासक था। इन्होंने मौर्यकाल (मौरियकाल) होने की संभावना को स्वीकार किया है जो 255 ई.पू. में स्थापित किया गया होगा तथा खारवेल के शासन का 13 वां वर्ष मौर्यकाल का 165 वर्ष माना गया है। ब्यूलर ने नंदराज के पूर्व 103 तिथि को आधार मानकर 302, 226ई.पू. के बीच इसका शासन बताया है। फ्लीट ने 154 ई.पू. इसकी तिथि माना है तथा स्मिथ ने 223 ई.पू.। जगन्नाथ जी के अनुसार खारवेल का काल द्वितीय सदी ई.पू. के प्रारंभ का हो सकता है।

इन सभी मतों के बीच निम्न आधारों पर अध्ययन कर सकते हैं –

जायसवाल आदि अनेक विद्वान वृहस्पति की समता पुष्यमित्र से तथा नन्द की समता नंदिवर्धन स्थापित कर खारवेल का काल ई.पू. दूसरी सदी के पूर्वार्ध में मानते हैं तथा लेख में मोरिय संवत के 165 वें वर्ष का उल्लेख भी किया। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार यह मत भी सहीं नहीं लगता। डॉ. जायसवाल आदि ने वृहस्पतिमित्र व पुष्यमित्र के बीच समता दिखाने के लिए यह तर्क दिया की दोनों के नां का उच्चारण एक जैसा है तथा ज्योतिष में वृहस्पति पुष्य नक्षत्र का स्वामी है। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप जी के अनुसार लेखक ने ज्योतिष के इस समीकरण को यहाँ यहाँ नहीं लिखा है। दुसरा अभिलेख में '**मगधं च राजनम् वृहस्पति मितम**' का उल्लेख है जिससे यह स्पष्ट होता है की खारवेल ने मगध को हराने के साथ–साथ वृहस्पतिमित्र को भी पराजित किया था। वृहस्पतिमित्र के सिक्के मगध व उसके पड़ोसी पांचाल व कौशांबी से प्राप्त हुए हैं। जायसवाल के अनुसार ये शुंगों के सिक्के हैं जबकि शुंगों ने संभवतः सिक्के नहीं चलाए थे। संभव है की शुंगों के बाद किसी अन्य वंश मगध पर शासन किया हो जिनका साम्राज्य पांचाल व कौशांबी तक विस्तृत रहा हो। इन तीनों स्थानों से प्राप्त मित्र नामांत वाले सिक्कों में एकरूपता के आधार पर यह माना जा सकता है की एक एक ही परिवार के होंगे, गया की वेदिका में इनका नाम भी मिलता है जिसमें वृहस्पतिमित्र का भी नाम है, भास

अभिलेख में भी इसका नाम आता है। संभव है की वृहस्पतिमित्र कोई स्थानीय शासक रहा होगा जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र रही होगी। इस अभिलेख में मौर्यकाल पाठ को भी गलत माना गया, डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार इसका सही पाठ मुखीय कला हो सकता है। अशोक के अभिलेख उसके राज्याभिषेक के काल का निर्धारण करते हैं अगर ऐसा होता तो वह मौर्यकाल की गणना में लिखे गए होते। इस प्रकार इसमें उल्लिखित नन्दराजा की समता नंदिवर्धन से नहीं की जा सकती। नंदिवर्धन के विषय में कोई साक्ष्य नहीं मिलता की जो मगध का बड़ा शासक रहा हो तथा उसने कलिंग पर विजय प्राप्त किया हो व वहां नहर का निर्माण करवाया हो।

खारवेल की तिथि निर्धारण के लिए एक अन्य आधार अभिलेख में वर्णित 'दिमित' है, जिसे यूनानी शासक डेमीट्रियस से समता बताकर खारवेल को उसका समकालीन बताया जाता है। अभिलेख के अनुसार खारवेल ने जब गोरखगिरी पर आक्रमण किया तो दिमित पाटलिपुत्र से मथुरा भाग गया था। किन्तु डॉ. शिवस्वरूप के अनुसार अभिलेख में वर्णित 'दिमित' पाठ सर्वमान्य नहीं है तथा इसे डेमीट्रियस प्रथम नहीं माना जा सकता। गार्गी संहिता में यवनों के भारतीय विजय के अभियान में कहीं भी पुष्यमित्र का वर्णन नहीं आता। इस ग्रंथ के अनुसार यवनों का आक्रमण शालिशुक मौर्य के बाद हुआ था। शालिशुक का काल 206 ई.पू. में होगा जबकि पुष्यमित्र का काल ई.पू. 184 से ई.पू. 148 के बीच का माना जाता है। अतः यह आक्रमण इससे पूर्व का ही माना जा सकता है।

अभिलेख के अनुसार खारवेल ने सातकर्णी के काल में कलिंग के पश्चिम में आक्रमण किया था किन्तु यह सातकर्णी कौन था यह स्पष्ट नहीं है क्योंकि सातवाहन वंश में कई शासकों के नाम में सातकर्णी मिलता था। किन्तु खारवेल की तिथि संभवतः ई.पू. प्रथम शताब्दी रही होगी। अतः यह सातकर्णी प्रथम के समकालीन रहा होगा।

डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार अभिलेख में वर्णित नन्द शासक संभवतः मौर्यों से पूर्व मगध पर शासन करने वाले नन्द वंश का कोई शासक रहा होगा जिनके दिग्विजय का वर्णन पुराणों में आता है। अभिलेख के अनुसार खारवेल का काल नंदों से 300 वर्ष बाद आता है। एतिहासिक स्रोतों के अनुसार महापद्मनन्द का काल ई.पू. चौथी सदी के अंतिम चरण लगभाग ई.पू. 322 था। इस आधार पर खारवेल का काल ई.पू. प्रथम शताब्दी मानी जा सकती है। सिमुक ने कण्व वंश का अंत करके सातवाहन वंश की संस्थापक की थी। सातकर्णी सिमुक का भतीजा था अतः वह खारवेल और सातकर्णी समकालीन थे जिनका समय पहली सदी ई.पू. का उत्तरार्ध होगा।

लिपि के आधार पर चन्दा जी का मत है की इसकी लिपि बेसनगर

गरुड़ स्तम्भलेख (लगभग 2 सदी ई.पू. के अंतिम चरण) तथा नानाघाट अभिलेख (प्रथम शताब्दी ई.पू.) के पूर्वार्ध के बाद की है। पुरातत्विक के आधार पर भी यह सिद्ध होता है की खारवेल का काल ई.पू. प्रथम सदी का होगा क्योंकि मंचपुरी का गुहा शुंगकालीन भरहुत के स्थापत्य कला के बाद का है। शुंगों के बाद कण्व वंश के काल व उसके बाद मगध साम्राज्य पहले जितना शक्तिशाली नहीं था संभवतः वृहस्पतिमित्र एक साधारण शासक था जिसे खारवेल ने पराजित किया। इस आधार पर भी खारवेल का काल ई.पू. प्रथम शताब्दी है।

13.6 सारांश

अतः कलिंग के शासक खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख प्राचीन भारत तथा कलिंग के इतिहास के स्रोत के रूप एक महत्वपूर्ण स्रोत है। जिससे हमें मौर्यों के बाद के कलिंग व मध्य–पूर्वी भारत के इतिहास का ज्ञान मिलता है। यह अभिलेख खारवेल के जीवन व इतिहास का एक मात्र स्रोत है। इस अभिलेख से हमें खारवेल के व्यक्तित्व, उसके विजय अभियानों व उसके द्वारा किए कार्यों का विवरण मिलता है। इस अभिलेख से हमें खारवेल के जैन धर्मावलम्बी होने के साथ–साथ स क्षेत्र में जैन धर्म के प्रभाव का ज्ञान मिलता है उसने श्रमणों के लिए आश्रयगुहाओं का निर्माण कराया। उसने प्रजा के मनोरंजन व उनके हित के लिए कई कार्य करवाए उसके द्वारा किये गए अनेक निर्माण कार्यों से हमें ज्ञात होता है की खारवेल एक महान निर्माणकर्ता था। वह सभी विद्याओं में पारंगत तथा प्रतापी शासक था जिसने भारत विजय के उद्देश्य से दक्षिण व उत्तरापथ का युद्ध भी किया जिसके अंतर्गत उसने कई क्षेत्रों की विजित भी किया। इस अभिलेख से हमें ब्राह्मी के विकास का भी ज्ञान मिलता है तथा अभिलेखों में संस्कृत प्रभावित प्राकृत के प्रयोग का उदाहरण मिलता है।

हाथीगुम्फा अभिलेख कलिंग के सबसे प्रतापी शासकों में से एक चेदिवंशीय महामेघवाहन वंश खारवेल से संबंधित है जो लगभग प्रथम शताब्दी ई.पू. में कलिंग (उड़ीसा) का शासक था। इस अभिलेख में उसके खारवेल के बाल्यकाल से लेकर उसके 13 वें राज्यवर्ष तक के जीवन काल का क्रमवार वर्णन किया गया है। इस अभिलेख में उसके द्वारा बाल्यकाल में ली गई शिक्षा–दीक्षा का वर्णन किया गया है। 24 वर्ष की आयु में खारवेल शासक बना जिसके बाद उसने अपने नगर में कई निर्माण कार्य करवाए जैसे तालाबों व दुर्गों, गोपुरम आदि, नंदों द्वारा उद्घाटन कीये गए नहर को उसने नगर तक लाया, मनोरंजन उत्सव का आयोजन कराया, उसने राजगृह पर आक्रमण किया। शतकर्णी के काल में पश्चिम पर आक्रमण किया। मगध पर आक्रमण किया तथा मगध के राजा वृहस्पतिमित्र को हराया। नंदों द्वारा ले जाई गई जिन मूर्तियों को वापस लाया। उसने अरहंतों के कार्य और विश्राम के लिए कुमारी पर्वत पर

गुहाओं का निर्माण करवाया। इस अभिलेख से ज्ञात होता है की खारवेल का राज्यकाल सफल रहा व महान शासक रहा।

13.7 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, डॉ. शिव स्वरूप सहाय
2. भारतीय पुरालिपि, डॉ.राजबली पाण्डेय
3. Select Inscriptions Bearining India-n HistoryAnd Civilization – DC Sarkar

13.8 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. हाथीगुंफा अभिलेख किस शासक से संबंधित है ?
2. हाथीगुंफा अभलेख किस भाषा व लिपि में लिखित है ?
3. हाथीगुंफा अभिलेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।
4. हाथीगुंफा अभिलेख के धार्मिक, राजनैतिक व आर्थिक महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई 14 : हुविष्क का मथुरा प्रस्तर अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 मूल पाठ

14.3 संस्कृत पाठ

14.4 हिंदी अर्थान्तर

14.5 भाषा एवं लिपि

14.6 ऐतिहासिक महत्व

14.7 सारांश

14.8 संदर्भ ग्रंथ

14.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

मथुरा से गोवर्धन जाने के मार्ग पर चौरासी जैन मंदिर के पास कुएं पर पड़े एक स्तम्भ पर एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जो आज मथुरा संग्रहालय में रखा गया है। यह अभिलेख कुषाण शासक हुविष्क से सम्बंधित है। प्रमाणों से ज्ञात होता है की हुविष्क कुषाणशासक वसिष्क के बाद शासक बना था। यह अभिलेख हुविष्क का यह सबसे पुराना अभिलेख है, हुविष्क का इससे पूर्व का कोई अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम कुषाण शासक हुविष्क के मथुरा प्रस्तर अभिलेख के एतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक व् आर्थिक पक्षों का अध्ययन करेंगे। यह अभिलेख हमें कुषाण शासकों के राजनैतिक इतिहास का अध्ययन करने में महत्वपूर्ण है।

14.2 मूल पाठ

1. सिद्ध (प्रतीक) (।।) संवत्सरे 20 (+) 8 गुर्षि्णये दिवसे 1 अयं पुण्य–
2. शाला प्राचीनीकन सरुकमान–पुत्रेण खरासले–
3. र–पतिन वकन–पतिना अक्षय–नीवि दिन्न (ा) (।) तुतो वृ (द्धि)–
4. तो मासानुमासं शुद्धस्य चतुदिशि पुण्य–शा (ला) –
5. यं ब्राह्मण–शतं परिविषितव्यं (।) दिवसे दिव (से)
6. च पुण्य–शालाये द्वार–मुले धारिये साद्यं–सक्तना (ै) आ–
7. ढका 3 ळवृण–प्रस्धो 1 शक्त–प्रस्थो 1 शक्त प्रष्थो 1 हरित–कलापक–
8. घटक (ा) 3 मल्लक (ा) 5>(।) एतं अनाध (आ) नां कृतेन द (तव्य)
9. बभक्षितन पिबसितनं (।) य चत्र पुण्य तं देवपुत्रस्य
10. षाहिस्य हुविष्कस्य (।) येषा च देवपुत्रो प्रियः तेषामपि पुण्य
11. भवतु (।) सर्वायि च पृथिवीये पुण्य भवतु (।) अक्षय–निवि दिन्ना
12. .... (र)आक–श्रेण (इ) ये पुराण–शत 500 (+) 50 समितकर–श्रेणी–
13. (ये च) पुराण–शत 500 (+) 50 (।।)

14.3 संस्कृत पाठ

सिद्धम् संवत्सरे 28 गुर्पिये दिवसे 1 इयं पुण्यशाला प्राचीनेकेन सरुकमाण पुत्रेण खरासलेरपतिना वकनपतिना अक्षयनिवि दत्ता। ततः वृद्धितः मासानुमासं शुद्धस्य चतुर्दश्यां पुण्यशालायां ब्राह्मणंशतं परिवेशयितव्यं दिवसे दिवसे च पुण्यशालायां द्वारमूले धार्य स्वाध सक्तूनां आढ़काः 3, लवणप्रस्थ 1, शुक्तप्रस्थ 2, हरितकलापक घटका, मल्लाकः 5। एतत् अनाथानां कृतेन दातव्य वुभुक्षितानां पिपासितानां। यतं च अत्र पुण्यं ततं देवपुत्रस्य पुत्रस्य षाहे, हुविष्कस्य। येषां च देवपुत्र प्रिय तेषाम् अपि पुण्यं भवतु। सर्वस्याः च पृथिव्याः पुण्यं भवतु। अक्षयनीविः दत्ता श्रेण्यां पुराणं शतानि 500, सामिताकर श्रेण्यां च पुराण शतानि 550।

14.4 हिन्दी अर्थान्तर

1. सिद्धम। संवत्सर 28में गुर्पियमसा के प्रथम दिन यह पुण्य
2. शाला प्राचीनीक सरुकमाण–पुत्र खरासले

3. राधिपति के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को पुण्यशाला में
4. सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और प्रत्येक दिन
5. पुण्यशाला के द्वारमूल चौखट में रखना चाहिए–स्वाद्य सत्तू के
6. तीन आढक, लवण–प्रस्थ 1 आढक, शूक्तप्रस्थ 1 आढक, तरकारियों के
7. तथा बुभुक्षित, पिपसितों के लिए 1 जो इससे पुण्य हो वह देवपुत्र
8. षाहि हुविष्क को हो और जिनका देवपुत्र प्रिय है उनको भी पुण्य हो
9. और सम्पूर्ण पृथ्वी को पुण्य हो। इस हेतु अक्षयनीवी गयी
10. श्रेणी में 500 पुराण और समिताकार श्रेणी में पुराण 550।

14.5 भाषा एवं लिपि

हुविष्क का यह मथुरा प्रस्तर अभिलकह संस्कृत प्रभावित संस्कृत में उत्कीर्ण है तथा इसकी लिपि शुंगकाल के बाद विकसित कुषाणकालीन ब्राह्मी है।

14.6 ऐतिहासिक महत्व

हुविष्क का मथुरा प्रस्तर अभिलेख कुषाण साम्राज्य व कुषाण राजवंश के इतिहास पर प्रकाश डालता है अतः यह अभिलेख प्राचीन भारत में इतिहास के अध्ययन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अभिलेख हुविष्क के 28 वें राज्यवर्ष का है। इसी वर्ष का 10 माह पूर्व का एक अभिलेख साँची से प्राप्त हुआ था जिसमें वसिष्क का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है की वसिष्क के बाद हुविष्क शासक बना। हुविष्क का इससे पहले कोई कोई अभिलेख प्राप्त नहीं होता। डॉ. सिंह के अनुसार दोनों के अंतर से अनुमान लगाया जा सकता है की कनिष्क का कुषाण संवत कार्तिक मास में प्रारंभ हुआ होगा।

इस अभिलेख में हुविष्क के लिए देवपुत्रशाही उपाधि प्राप्त होती है न की देवपुत्र–शाही–शाहानुशाही अर्थात महाराज। किन्तु आगे उसे यह उपाधि मिलती है। संभव है की इस अभिलेख के काल में वह शासक न रहा होगा। सरोजनी कुलश्रेष्ठ के अनुसार उत्कीर्ण लेख में नाम स्पष्ट अक्षरों में हुविष्क न होकर पुविष्क है। अभिलेख प्रकाशित करते समय स्टेन कोनो ने भी पुविष्क हो पढ़ा था जिसे पाद टिप्पणी में लिखा भी था किन्तु पुविष्क अथवा विष्क नामांत किसी अन्य नाम की जानकारी के अभाव में ही उन्होंने हुविष्क पाठ ग्रहण किया। डॉ. सरकार ने भी यही स्वीकार किया किन्तु पुविष्क पाठ पर मौन थे।

कुलश्रेष्ठ ने अभिलेख में पुविष्क के लिए प्रयुक्त विरुद षाहि पर कहती हैं की वर्ष 84 से पूर्व कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के जितने भी अभिलेख हैं, उन सभी में समान रूप से 'महाराज राजतिराज देवपुत्र' विरुद का प्रयोग मिलता है। वर्ष 84 के बाद के वासुदेव के जो भी अभिलेख प्राप्त हैं उनमें तथा उन मूर्तियों के आलेखों में, जिन्हें लोहिजों और रोजेनफील्ड ने कला–शैली के आधार पर वसुदेवोत्तर काल का स्वीकार किया है तथा उन पर तिथि शतसंख्या के विलोपन के साथ अंकित की गयी है। इसके अतिरिक्त एक अन्य विसद 'षाहि' का प्रयोग किया गया है। इन सभी के आधार पर कुछ विद्वानों का यह मानना है की इस लेख पर अंकित तिथि शत–संख्या विलुप्त (1)28 है तथा इसे वासुदेव के पूर्व नहीं रखा जा सकता।

इस अभिलेख में उल्लेखित 'गुर्पिय' शब्द मैसोडोनिया के संवत गणना का बोधक है। ब्राह्मी लिपि में लिखा यह एक मात्र अभिलेख है जिसमें इस संवत का उल्लेख है। डॉ. शिवस्वरूप के अनुसार संभव है की यह अभिलेख जिसके लिए उत्कीर्ण करवाया गया था वह कोई विदेशी रहा हो जो इसी संवत में ही काल गणना जानता हो।

डॉ. हरिपद चक्रवर्ती के मत में चवनीज के अनुसार पाँचवी शताब्दी तक बदखशां यूचियों का केंद्र था। जब ये पूर्व की ओर बढ़ते हुए मथुरा में अपना राज्य स्थापित कर लिया तब उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र में इनके लग मथुरा आए होंगे। यहाँ 'शाही' शब्द का प्रयोग मथुरा पर उसका अधिकार सिद्ध करता है तथा इससे यह सिद्ध होता हुविष्क ने अपने पिता के प्राप्त राज्य को अक्षुण रखा था इस अभिलेख में वर्णित 'प्राचीनिक' हुविष्क के अधीन प्रांतपति रहा होगा।

स्टेनकोनों के अनुसार अक्षयनीवि के साथ पुण्यशाला का भी दान दिया गया था, किन्तु डॉ. गुप्त के अनुसार ऐसी कोई बात इस अभिलेख में नहीं है। उनके अनुसार अक्षय नीवि के रूप में दाता ने 1100 पुराण डॉ. श्रेणियों के पास आधा–आधा जमा किया था।

आर्थिक इतिहास के अध्ययन में भी यह एक महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करता है की रौप्य मुद्रा 'पुराण' का प्रयोग इस समय कर–विक्रय के लिए किया जाता था। पुरातात्विक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है की कुषाणों के काल में प्रायः स्वर्ण या ताम्र के ही प्राप्त होते हैं। केवल विमकडफिसेस के चांदी व ताम्र के सिक्के प्रचलित थे। मनुस्मृति में सिक्कों के रूप में पुराण का उल्लेख मिलता है। इनका भार 32 रत्ती के अदृत सिक्के थे जो मुख्यतः चांदी के बने होते थे। दूसरी ओर इसमें बाट या मापक इकाइयों का उल्लेख मिलता है। डॉ. शिव

स्वरूप के अनुसार संभव है की नाप एवं तौल के लिए आढक (बीस सेर का माप), प्रस्थ (आढक की चौथाई इकाई), घटक (निश्चित माप का घड़ा) का प्रयोग किया जाता रहा होगा यद्यपि घटक पानी के लिए घड़े के अर्थ में प्रयुक्त है पर डॉ. चक्रवर्ती ने इसे किसी तरल पदार्थ के मापक की इकाई माना है।

इस अभिलेख से कृषि और उद्योग पर भी प्रकाश पड़ता है। डॉ.. गुप्त के अनुनार श्रेणी व्यवसायियों की संस्था थी जो व्यापार के साथ–साथ बैंकों का भी काम करती थी। अभिलेखों से प्रकट होता है की दान में दिए गए धन का उत्तरदायित्व प्रायः श्रेणियों को दिया गया था। यहाँ उल्लेखित समितिकर श्रेणी से आटा पीसने के उद्योग का प्रमाण मिलता है। अभिलेख में जिन दो श्रेणियों को धन देने का उल्लेख है उसमें से एक नाम अक्षरों के मिट जाने से नहीं पढ़ा जा सका है तथा दूसरा नाम है समितकर। उद्योगों में पीसने, थाली बनाने आदि का ज्ञान प्राप्त होता है क्योंकि चने को पीसकर सत्तू का निर्माण होता है और थाली का निर्माण कारीगरों द्वारा होता है। नारद स्मृति में श्रेणियों की व्याख्या इस प्रकार किया गया था – एकेन शिल्पेन ये जीवते तेषां समूहः श्रेणी।

इस अभिलेख से जनकल्याणकारी कार्यों के प्रति जन–मानस की भावना का पता चलता है। इस अभिलेख में अक्षयनीवि द्वारा मास में एक बार 100 ब्राह्मणों को भोजन करवाने के साथ–साथ नित्य भूखे–प्यासे लोगों को भी खिलाने–पिलाने की व्यवस्था की गई। इसके लिए नित्य 3 आढक, ताजा (सद्यः) पीसा हुआ सत्तू, 1 प्रस्थ, लवण (नमक, 1 प्रस्थ शुक्त (डॉ. गुप्त के अनुसार संभवतः चटनीं, खटाई या आचार) और ताजी मूली तथा 3 घड़े और 5 थाली (मल्लक) रखने की व्यवस्था है। सत्तू तथा मूली का उल्लेख कृषि के उत्पादों का भी विवरण देते हैं। सत्तू के साथ नामक, आचार और मूली की प्रयोग आज भी होता है और सत्तू बेचने वाले ये सभी वस्तुएं प्रस्तुत करते हैं। पूर्वी उत्तर–प्रदेश और बिहार के अनेक स्थानों में वे लोग खाने के लिए पानी और थाली की भी व्यवस्थित रखते हैं।

इस अभिलेख के अनुसार विदेशियों में भी दान देने की महत्ता थी। लोग मार्ग में किसी भी जाति द्वारा पकाया हुआ अन्न स्वीकार नहीं करते थे तभी सूखा अन्न व सत्तू मूली और चटनी का उल्लेख मिलता है। ये भोजन के साथ खाने वाली सहयोगी सामग्रियां सत्तू के साथ प्रयोग की जाती रही होंगी।

दाताओं के दान के द्वारा ये मध्य एशिया विदेशी लगते है, क्योंकि उन्होंने गुर्पिय संवत का प्रयोग किया गया है। इससे संकेत मिलता है की मध्य–एशियाई लोगों में भी ब्राह्मण धर्म का प्रचार था तथा वे पुण्य प्राप्ति के

लिए ब्राह्मणों को भोजन कराने की परम्परा को मानते थे।

अभिलेख में दूसरी–तीसरी पंक्ति में उल्लेखित प्रचिनीकन सरुकमान व प्रचिनी को स्टेन कोणों ने प्राचीनी कनासरुकमान के रूप में और प्रचिनी को पुण्यशाला के विशेषण के रूप में ग्रहण किया है। उनके अनुसार पूर्वी और पश्चिमी डॉ. शालाएं थी। उनमें विभेद करने के लिए इसका प्रयोग हुआ है। पं. क्ति 4 में चतुदिशी पुण्यशाला पढ़कर उन्होंने पुण्यशाला को चारों ओर से खुला अनुमान किया है। किन्तु डॉ. गुप्त के अनुसार इस लेख में इस प्रकार का कोई भाव नहीं है।

स्टेनो के अनुसार कनसरुकमाण–पुत्र का अर्थ कनसरुकमान–वंश ग्रहण किया लिया है, पर स्टेनों के अनुसार कनसरुकमान व्यक्तिवाचक नाम भी हो सकता है।

डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल ने प्रचिनीकान को प्राचीतिकन पढ़ा है और तिकन और तुर्की उपाधि तिगिन अनुमान किया है। किन्तु नीकन पाठ स्पष्ट है। अतः इस लेख में तिकिन जैसी उपाधि के उल्लेख की बात नहीं उठती। डॉ. जायसवाल के अनुसार प्राची तिकिन को रुकमान का पुत्र है। डॉ. सरकार इसके तीनों रूपों को स्वीकार करते है 1. प्राचीनी–केन सरुकमाण–पुत्र 2. प्राचीना (पूर्वोदिग्वर्तिनी अथवा पुरातन) कनसरुकमाण–पुत्र, 3. प्राचीनीकस्य रुकमाण–पुत्र। डॉ. गुप्त के अनुसार पहले रूप का कोई तर्क नहीं बनता तथा दूसरे व तीसरे रूप के ग्रहण करने में कठिनाई यह है कि इन रूपों में पुत्र का नाम उपलब्ध नहीं होता, जो आवश्यक और अनिवार्य है।

इस अभिलेख में प्राचीनीकन को खरासलेर–पति और बकन–पति कहा गया है। खरासलेर का अर्थ किसी स्थान से ग्रहण कर उसे उस स्थान का शासक कहा जा सकता है। वकनपति शब्द का उलकह मथुरा से प्राप्त एक अन्य कुषाण–कालीन अभिलकह में भी मिलता है। इस शब्द के ईरानी होने की भी कल्पना की जाती है जिसका अर्थ 'मंदिर' का प्रबंध–अधिकारी समझा जाता है।

14.7 सारांश

अतः हम कह सकते हैं की हुविष्क का मथुरा प्रस्तर अभिलेख प्राचीनन भारत के इतिहास में कुषाण काल से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी मिलती है। यह अभिलेख हमें कुषाण वंश के अनुक्रम ज्ञात करने में सहायता करता है। इससे हमें कुषाणों द्वारा भारतीय परम्पराओं को अपनाने का

संकेत मिलता है। इस अभिलेख में जनकल्याण हेतु किए जाने वाले कार्यों की परम्परा के प्रमाण देखने की मिलता है। इसमें उल्लेखित विनमय साधनों से उस काल के आर्थिक इतिहास का ज्ञान होता है जिसमें उस काल मे प्रचलित मुद्रा प्रणाली की जानकारी मिलती है। इस अभिलेख में उल्लेखित खाद्य पदार्थों व भोज्य पदार्थों व उत्पादों के वर्णन से उस काल में कृषि उत्पादों व भोजन के लिए उपयोग में लाई जाने वाली भोज्य पदार्थों की जानकारी मिलती है।

हुविष्क का मथुरा अभिलेख कुषाण वंश के शासक हुविष्क से संबंधित है। यह अभिलेख मथुरा के समीप चौरासी जैन मंदिर के कुए से प्राप्त हुआ था। इस अभिलेख में हुविष्क के 28 वें वर्ष में उत्कीर्ण कराया गया था। इस अभिलेख में खरासलेर नामक स्थान में वकनस्वामि द्वारा अक्षय निधि देने का वर्णन है। जिससे प्रत्येक मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को पुण्यशाला में सौ ब्राह्मणों को भोजन कराने तथा द्वारा पर सत्तू, आढक, लवण, तरकारियों आदि को रखने का वर्णन है। तथा इसमें हुविष्क को देवपुत्रषाहि की उपाधि दी गई है। इस अभिलेख में जनकल्याणकारी कार्यों के समाज में परम्परा का इतिहास ज्ञात होता है।

14.8 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ. शिव स्वरुप सहाय
2. प्राचीन भारतीय मुद्राएं, रजवन्त राव
3. Epigraphy Indica Vol21

14.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. हुविष्क के मथुरा अभिलेख पर लेख लिखिए।
2. हुविष्क के मथुरा प्रस्तर अभिलेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।
3. हुविष्क के मथुरा अभिलेख के राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई 15 : समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख (प्रयाग प्रशस्ति)

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 मूल पाठ

15.3 हिन्दी अर्थान्तर

15.4 भाषा व लिपि

15.5 तिथि

15.6 ऐतिहासिक महत्व

15.7 सारांश

15.8 संदर्भ ग्रन्थ

15.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

समुद्रगुप्त का प्रयाग–प्रशस्ति अभिलेख चतुर्थ शताब्दी में उत्तर भारत में शासन करने वाले चक्रवर्ती गुप्तवंश के चतुर्थ शासक समुद्रगुप्त से संबंधित है। वर्तमान में यह स्तम्भलेख प्रयागराज किले में स्थित है। किन्तु यह स्तम्भ मूल रूप से कौशांबी में स्थापित था किन्तु बाद के काल में इसे संभवतः यमुना नदी में बहाकर लाया गया था इसकी रचनामहादण्डनायक भवभूति के पुत्र समुद्रगुप्त के कुमारामात्य एवं संधिविग्रहिक हरिषेण ने की थी। यह अभिलेख अशोकस्तम्भ पर उत्कीर्ण किया गया है। समुद्रगुप्त के इतिहास व व्यक्तित्व की सर्वाधिक व प्रामाणिक जानकारी देने वाला यह एक मात्र अभिलेख है। जबकि समुद्रगुप्त के अन्य अभिलेखों में एरण अभिलेख कोई विशेष सूचना नहीं देता, इससे केवल एरण पर उसके अधिकार की जानकारी मिलती है जबकि गया व नालंदा से ताम्रपत्र नकली माने जाते हैं। डॉ. उदयनारायण के लिखते हैं ...this epigraphic record isA unique oneAmong India-nAnnals in its wealth of detail. इस स्तम्भ में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति का उलकह है तथा यह प्रयाग में है। इस कारण इसे '**प्रयाग प्रशस्ति**' भी कहा जाता है। चूँकि इस प्रशस्ति की रचना हरिषेण ने की

थी इस कारण इसे '**हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति**' भी कहा जाता है।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य हरिषेण रचित समुद्रगुप्त के प्रयागप्रशस्ति (छायाचित्र पृ.193) का ऐतिहासिक, राजनैतिक, एतिहासिक, सांस्कृतिक व धार्मिक अध्ययन करना है। यह प्रशस्ति गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की उपलब्धियों व उसके व्यक्तित्व की जानकारी देने वाला एक मात्र स्रोत है अतः इस अभिलेख का अध्ययन गुप्त शासकों के इतिहास विशेषकर राजनैतिक इतिहास की जानकारी के लिए करना आवश्यक है।

15.2 मूलपाठ

1. यहः....कुल्यैः (?)....
2. स्वै....ातस....(यस्य ?) ....(॥) (1)
3. ———मुं (?) व....
4. (स्फु)रद्वं (?) ....क्षःस्फुटोद्ध ( )सित....प्रवितत....(॥) (2)
5. यस्य प्र(ज्ञानु)षङ्कोचित–सुख–मनसः शास्त्र–त (त्व)र्त्थ–भर्त्तः ———स्तब्धो———नि———नौच्छृ——— (।)
6. (स) त्काव्य–श्री–विरोधाबन्धु–गुणित–गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा (वि) द्वल्लोके (5) वि (ना) (शि () स्फुटबहु–कविता–कीर्ति–राज्यं भुनक्ति (॥) (3)
7. (आ) (र्य्यो) हीत्युपगुह्य भाव–पिशुनैरुत्कीर्णोण्तै रोमभिःसभ्येषूच्छ्वसितेषु तुल्य–कुलज– म्लाननोद्वीक्षि(त)ः (।)
8. (स्ने) ह–व्यालुलितेन बाष्प–गुरुणा तत्वेक्षिणा चक्षुषायः पित्राभिहितो नि(रीक्ष्य) निखि (लां) (पाह्येव) (मुर्वी) मिति (॥) (4)
9. (दृ) ष्ट्रवा कर्माण्यनेकान्यमनुज–सदृशान्य (दभु) तोद्भिन्न–हर्षाभा (।) वैरस्वादय (न्तरू) –(के) चित (।)
10. वीर्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते (5) प्रणामे– () प्य (र्ति?) – ग्रस्तेषु——— ——— ——— ——— (।) (5)
11. संग्रामेषु स्व–भुज–विजिता नित्यमुच्चापकारा : श्वरू–श्वो मान–प्र ———

——— ——— ——— ——— ——— (।)

12. तोषोतुङ्गैः स्फुट–बहु–रस–स्नेह–फुल्लैर्म्मनोभिः पश्चात्तापं. व ——— ——— ——— ——— ——— ——— म(?)स्य( )द्वसन्त(म?) (।) (6)

13. उद्वेलोदित–बाहु–वीर्य्य–रभसादेकेन येन क्षणा–दुन्मूल्याचुत–नागसेन–ग ——— ——— ——— ——— ——— (———)

14. दण्डैर्गाहयतैव कोतकुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता सूर्य्ये (?) नित्य (?) ——— ——— तट ——— ——— ——— (॥) (7)

15. धर्म्म–प्राचीर–बन्धः शशि–कर–शुचयः कीर्तयः स–प्रतानावैदुष्यं तत्त्व–भेदि प्रशम् ——— ——— ———, कु———यमु(सु?) ——— तार्त्थम् (?) (।)

16. (अद्धयेयः)सूक्तमार्ग्गः कवि–मति–विभवोतसारणं चापि काव्यंको नु स्याद्यो (अ)स्य न स्यादगुण–मति–(वि)दुषां ध्यानपात्रं य एः (॥) (8)

17. तस्य विविध–समर शतावतरण–दक्षस्य स्वभुज–बल–पराक्क्रमैकबन्धोः पराक्क्रामांकस्य परशुशर–शंक–शक्ति–प्रासासि–तोमर–

18. भिन्दिपाल–न(ा)राच–वैतस्तिकाद्यनेक–प्रहरण–विरुढाकुल–व्रण–शतांक–शोभा– समुदयो–पचित–कान्ततर–वर्ष्मणः

19. कोसलमहेन्द्र–माह(ा)कान्तारकव्याघ्रराज–कौरालकमण्टराज–पैष्टपुरक–महेन्द्रगिरि–कौट्टूरकस्खामिदत्तैरण्डपल्लकदमन–काञ्चेयकविष्णुगोपावसमुक्त्तक

20. नीलराजवैङ्गेयकहस्तिवर्म्म–पाल्लकोग्रसेन–दैवराष्ट्रकुबेर–कौस्थलपुरक–धनञ्जय–प्रभृति–सर्व्वदक्षिणापथराज–ग्रहण–मोक्षानुग्रह–जनित–प्रतापोन्मिश्र–महाभाग्यस्य

21. रुद्रदेव–मतिल–नागदत्त–चन्द्रवर्मा–गणपतिनाग–नागसेनाच्युत–नन्दि–बल–वर्म्मा–द्यनेकार्य्यावर्त्त–राज–प्रसभोद्धरणोद्धृत–प्रभाव–महतः परिचारकीकृत– सर्व्वाटविक– राजस्य

22. समतट–डवाक–कामरूप–नेपाल–कर्त्तृपुरादि–प्रत्यन्त–नृपतिभिर्म्मालवार्जुनायन–यौधेय–माद्रकाभीर–प्रार्जुन–सनकानीक–काक–खरपरिकादिभिश्च सर्व्व–कर – दानाज्ञाकरण–प्रणामागमन–

23. परितोषित–प्रचंड–शासनस्य.....
अनेक–भ्रष्टराज्योत्सन्न–राजवंश–प्रतिष्ठापनोद्भूत
–निखिल–भु(व)न–(विचरण–शा)न्त–यशसहदेवपुत्रषाहीषाहनुषाहि–शकमु
रुंडैःसैंहलका दिभिश्च

24. सर्व्व–द्वीप–वासिभिरात्मनिवेदन–कन्योपायन–दान–गुरुत्मदंकस्वविषयभूि
क्तशासन (य)ाचनाद्यु–पाय–सेवा–कृत–बाहु–वीर्य्य–प्रासर–धरणि–बंधस्य
प्रिथिव्यामप्रतिरथस्य..

25. सुचरित–शतालंकातानेक–गुण–गणोत्सिक्तिभिश्चरण–तल–प्रमृष्टान्य–
नरपति–कीर्तेः साद्धृ साधूदय–प्रलय–हेतु–पुरुषस्याचिंत्यस्य भक्तपवनति–
मात्र–ग्राह्य– मृदुहृदयस्यानुकंपावातो–(S)नेक–गो–शतसहस्त्र –प्रदायिन
(:)

26. (कृप)ण–दीनानाथातुर–जनोद्धरण–समन्त्रदीक्षाभ्युपगत–मनसः समिद्भस्य
विग्रहवातो लोकानुग्रहस्य धनद–वरुणेन्द्रान्तक–समस्य स्वभुज–बल–
विजितानेक–नरपति– विभव–प्रत्यर्पणा–नित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य

27. निशितविदग्धमति–गांधर्व्वललितैव्रीडित–त्रिदशपतिगुरु–तुंबुरूनारदादेर्व्विव
द्वज्जनोप –जिव्यानेक–काव्य–विक्रयाभिः प्रतिष्ठित–कविराज–शब्दस्य
सूचिर– स्तोतव्यानेकाद्भुतोदार–चारितस्य

28. लोकसमय–विक्रयानुविधान–मात्र–मानुष्य लोकधाम्नों देवस्य महराज–
श्री–गुप्त–प्रपौत्रस्यकृमहाराज–श्री–घटोत्कच–पौत्रसी महाधिराजाधीराज–
श्री–चंद्रगुप्त–पुत्रस्य

29. लिच्छवि–दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्फन्नस्य महाराजाधिराज
–श्री– समुद्रगुप्तस्य सर्व्व–पृथिवी–विजय–जनितोदय–व्याप्त–
निखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपति–

30. भवन–गमनावाप्त–ललित–सुख–विचरणामचक्षाण इव भुवो बहुरयमुछितः
स्तम्भ (।) यस्य।

31. प्रदान–भुजविक्क्रम–प्रशम–शास्त्रवाक्योदै–रूपर्य्युपरि–सञ्चयोच्छ्रितमने
कमर्ग्गं यशः (।)

32. पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा–नरोध–परिमोक्ष–शीघ्रमिव पांडु
गङ्ग

33. (पयः)(।।) एतच्च काव्यमेषामेव भट्टारकपदानां दासस्य समीप–

परिसर्प्पणानुग्रहोन्मीलित–मतेः

34. खाद्य(कू)टपाकिकस्य महादण्डनायक–ध्रुवभूति–पुत्रस्य सान्धिविग्रहिक–कुमारामात्य– म(हादण्डनाय)क–हरिषेणस्य सर्व्व–भूत–हित–सुखायास्तु अनुष्ठितं च परमाभट्टारक– पादानुध्यातेन महादण्डनायक–तिलभट्टकेन

15.3 हिन्दी अर्थान्तर

1. अपने कुलवालों द्वारा
2. (जिसका ?)
3. .....
4. ....विस्तृत ?
5. विद्वानों के सत्संग में प्रसन्न मन वाले शस्त्रों के तत्वार्थ का पोषक ..
6. जो विद्वज्जनों के बहुत गुणों की शक्ति से सत्काव्य के विरोधों को दबा कर बहुत–सी स्फूट काव्य से प्राप्त कीर्ति राज्य का भोग करता है।
7. जिसके दरबारियों में हर्ष का उच्छवास था एवं जिसे समान कुल वाले म्लान मुख से देखते थे, पिता उसे भाव प्रवण एवं रोमांच सहित गले लगाते हुए कहा कि कि तुम वास्तव में आर्य हो।
8. स्नेहाकुल, आँसू युक्त तत्वदर्शी नेत्रों से देखकर, यह कहा कि 'तुम सम्पूर्ण पृथ्वी का पोषण करो'।
9. जिसके अनेक मानवेत्तर कार्यों को देख कुछ लोग अत्यंत प्रसन्नता से भावपूर्वक आस्वादन करते थे।
10. और कुछ लोग जिसके शौर्य से संतप्त होकर शरणागत होते हुए उसको नमन करते थे।
11. जिसने युद्धों में नीती अपकार करने वाले को जीता था
12. आनंद से भरे, बहुत हर्ष एवं स्नेह से युक्त मन से ....पश्चाताप ... वसंत।।
13. जिसने सीमा से बड़े बाहु द्वारा अकेले ही अच्युत तथा नगसेन की अविलंब जड़ से उखाड़ दिया..
14. जिसने पुष्प नाम के नगर को क्रीड़ा करते हुए स्वाधीन किया तथा

अपने सैन्य द्वारा जो कोटकुलोत्पन्न था उसको पकड़वा लिया

15. धर्म प्राचीर की तरह जिसकी कीर्ति चंद्र रश्मि की तरह उज्ज्वल और विस्तृत थी तथा जिसकी विद्वत्ता शास्त्र तत्वभेद करने वाली थी...

16. वेदों द्वारा प्रतिपादित मार्ग जिसका ध्येय था तथा कवि के मति–वैभव को स्पष्ट व्यक्त करने वाली उसकी कविता थी। ऐसा क्या गुण था जो इसमें नहीं था जो गुण और प्रतिभा ज्ञाताओं का एक मात्र ध्यान पात्र है।

17. सैकड़ों युद्दों में उतरने मे दक्ष, अपने भुजबल पर एक मात्र बहरोस करने वाला, पराक्रम वाला, फारसा, शर, शैकू, प्रास, असि, तोमर

18. भिंदिपाल, नाराच, वैतस्तिक आदि अनेक शस्त्रों प्रहार से जनित सैकड़ों घावों की चिन्हों से जिसका शरीर सुशोभित था।

19. कोसल के महेंद्र, महाकांतर के व्याघ्रराज, केयरल के मण्टराज, पिष्टपुर के महेंद्रगिरि, कोट्टूर के स्वामिदत्त, एयण्डपल्ल के दमन, कांची के विष्णुगोप, अवमुक्त के

20. नीलराज, बेङ्ग्ई के हस्तिवर्मन, पल्लक के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, कुस्थलपुर के धनंजय आदि समस्त दक्षिणापथ के राजाओं के ग्रहण करने एवं तदुपरांत अनुग्रह द्वारा उनको मुक्त करने से उत्पन्न प्रताप से संयुक्त महाभाग्य वाला था।

21. जिसने रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चंद्रवर्मन, गणपतिनाग, नगसेन अच्युत नंदि, वलवर्मन आदि अनेक अर्थावर्त के राजाओं को उन्मूलित कर अपना महान प्रभाव बढ़ाया तथा सम्पूर्ण अटवी प्रदेश (जंगल) के राजाओं का अपना परिचायक बनाया।

22. समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर आदि सीमा के राजों तथा मालव, आर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीकम् काक, खनपरिक, आदि सभी जातियाँ करों के देने, आज्ञा पालन, प्रणाम तथा

23. प्रचंड शासन प्रति संतोष आगमन द्वारा व्यक्त करती थीं, जो अनेक च्युत राज्यों तथा नष्ट राजवंशों की पुनः स्थापना से उत्पन्न भुवनों में व्याप्त शांत यशवल था तथा जिसे देवपुत्र शाहि शाहानुशाहिशक मुरुनड़ तथा सिंहल आदि

24. द्वीपों के निवासी आत्म समर्पण, पैर पर अपनी कन्याओं का समर्पण

करते थे तथा गरुड़ चिन्ह युक्त अपने विषय एवं भुक्ति के शासन की याचना करते थे। इस प्रकार की सेवाओं से जिसमें भुजबल के विस्तार से पृथ्वी को बांध लिया था तथा समस्त पृथ्वी पर जिसका कोई शत्रु नहीं था।

25. शत सत्कार्यों से भूषित, अपने बहुसंख्यक गुणों के समुदाय से अन्य अनेक राजाओं की कीर्ति को मिटाने वाला जो साधु के लिए उदय तथा असाधु के लिए अंत का कारण था, अचिनत्यपुरुष, भक्तिपूर्वक नमन मात्र से जिसका मृदुल हृदय वंश में हो जाता था, अनुकम्पावान, जो शतसहस्त्र गायों को दान करने वाला था।

26. कृपण, दीन, अनाथ एवं व्यग्र लोगों के कष्ट–निवारण तथा दीक्षा में लगे अन्तः–करणवाले जो अनुकंपा का प्रतिमा था जो धनद, वरुण, इन्द्र, यम, सदृश, अपने बाहुबल से विजित अनेक राजाओं की संपत्ति लौटाने में नित्य लगा हुआ था।

27. तीक्ष्ण एवं विदग्धमति, वाद्य एवं कण्ठ संगीत द्वारा इन्द्र, गुरु वृहस्पति तुंबुरु तथा नारदादि को लज्जित करने वाला था, विद्वानों की जीविकार्जनोपयोगी अनेक काव्यों की रचना द्वारा 'कविराज' उपाधि को प्रतिष्ठा करने वाला था, चिर–काल तक स्तुत्य जिसके अनेक विलक्षण एवं उदार कार्य थे।

28. जो केवल लौकिक–कार्य सम्पादन से ही मनुष्य था अन्यथा भूलोकवासी देवता था वह महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज श्रीघटोत्कच का पौत्र, महाराजाधिराज श्री चनद्रगुप्त का पुत्र था जो

29. लिच्छवि वंश की लड़की का लड़का, जो महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न था। महाराज चंद्रगुप्त के समस्त पृथ्वी की विजय द्वारा उत्पन्न अभ्युदय से समस्त संसार व्याप्त है यहाँ पृथ्वी इन्द्र के

30. भवन पँहुचने वाली, सुंदर–सुखमय गति वाली कीर्ति को घोषित करता हुआ, पृथ्वी की भुज की भांति यह स्तम्भ ऊंचा है। जिसका यश

31. दान, बाहु–विक्रम, प्रज्ञा एवं शास्त्र–विधान के अभ्युदय से, उच्चोच्च उन्न होता हुआ, अनेक मार्गों से त्रैलोक्य को, शिव की जटा के अन्तः गुहा–बंध से मुक्त त्वरित पीले गंगाजल की भांति निकालकर पवित्र करता है।

32. यह काव्य उन्हीं स्वामी के चरणों के दस, समीप रहने के अनुग्रह से

विकसित मतिवाले, महादण्डनायक भवभूति के पुत्र, खाद्यत्पाकिक, संधिविग्रहिक, कुमारामात्य हरिषेण ने रचा। यह समस्त प्राणियों के हित एवं सुख का हो।

33. परमभट्टारक के चरणों का चिंतन करने वाले महादण्डनायक द्वरा इसकी स्थापना की गयी।

15.4 भाषा एवं लिपि

इस अभिलेख की भाषा संस्कृत है तथा इसकी लिपि गुप्तकालीन ब्राह्मी है। इस अभिलेख के अनुसार इस अभिलेख को चंपू शैली में की गई है।

समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति समुद्रगुप्त के बारे में सर्वाधिक जानकारी प्रदान करने वाला एक मात्र स्रोत है। इसके अतिरिक्त अन्य एरण अभिलेख व गया व नालंदा ताम्रपत्र से कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। किन्तु भाषा, व्याकरण संबंधी त्रुटियों के कारण फ्लीट, सरकार आदि विद्वानों ने गया और नालंदा के ताम्रपत्रों को जाली माना है।

15.5 तिथि

यह अभिलेख तिथिविहीन है, किन्तु अभिलेख के अनुसारउसने सिंहासन को सुरक्षित करने के लिए अपने संबंधियों से युद्ध करना पड़ा था, जिसके बाद समुद्रगुप्त ने उत्तरापथ व दक्षिणापथ का अभियान किया युद्धों के बाद उसने कला व विद्वानों को आश्रय दिया था जिससे यह स्पष्ट होता है की यह काल शांति काल में ही हुई होंगी जिसका अर्थ है की यह अभिलेख समुद्रगुप्त के शासन काल में बहुत बाद में उत्कीर्ण करवाया गया होगा। चूँकि समुद्रगुप्त के अश्वमेध सिक्के हमें प्राप्त होते हैं तथा इस अभिलेख में समुद्रगुप्त द्वारा अश्वमेध यज्ञ किए जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता जिसका अर्थ है की प्रयाग प्रशस्ति लिखवाए जाने के बाद समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया होगा। इतिहासकारों के अनुसार समुद्रगुप्त का काल लगभग 335/50 ईसवी से 375 ईसवी के बीच माना है। डॉ. डिस्कल्कर के अनुसार यह अभिलेख 350 ई का हो सकता है।

15.6 ऐतिहासिक महत्व

समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति स्तम्भलेख भारतीय इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। यह अभिलेख गुप्त राजवंश, 4–5 वीं सदी में भारत की राजनैतिक स्थिति की जानकारी का प्रमुख स्रोत है। इस अभिलेख से हमें कुषाण सम्राज्य के अंत के बाद भारत की स्थिति की जानकारी डेने वाले

सबसे प्रमुख स्रोतों में से एक है। इस अभिलेख से गुप्त साम्राज्य के विस्तार, उसके प्रशासनिक तंत्र, गुप्त साम्राज्य की विशालता, गुप्त वंश के अनुक्रम व समुद्रगुप्त के व्यक्तिगत चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

गुप्तकालीन भारत की राजनैतिक अवस्था का ज्ञान

इस अभिलेख में प्रशस्तिकार ने समुद्रगुप्त की विजय अभियानों का वर्णन किया है, जिससे हमें गुप्तकालीन भारत के मध्य व पश्चिमी भाग को छोड़कर शेष अन्य भारतीय प्रदेशों की राजनैतिक स्थिति का ज्ञान मिलता है। इस लेख में कहीं राज्य और राज्य व्यवस्था, कहीं केवल राज्य, कहीं केवल राजा, कहीं केवल क्षेत्रीय विभाजन का उल्लेख मिलता है जिससे भारत में विभिन्नन क्षेत्रों की राजनैतिक इकाइयों की राजनैतिक व्यवस्था का ज्ञान मिलता है।

भारतीय इतिहास में कुषाणों के बाद व गुप्तों के पूर्व तक के इतिहास का कोई समकालीन साहित्यिक व अभिलेखीय इतिहास हमें नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति हमें इस काल के राजनैतिक इतिहास का जानकारी मिलती है। डॉ. केपी जायसवाल ने इसे अंधकार युग कहा है। इस प्रयाग प्रशस्ति में उल्लेखित राजनैतिक इकाइयों का अध्ययन करने पर निम्न राजनैतिक इकाइयों व राज्यों का ज्ञान मिलता है –

सीमा–प्रदेश के राज्य

अभिलेख में कई सीमा प्रदेशों का वर्णन है। जिसमें – समतट (समुद्रतटीय भाग = दक्षिण–पूर्वी बंगाल), डवाक (फ्लीट के अनुसार ढाका, स्मिथ के अनुसार दिनाजपुर के पास, बसाक के अनुसार ढाका का उत्तरी भाग, बरुआ के अनुसार आसाम में नवगांव जिले का डवोक), कामरूप(आसाम प्रांत का गोहाटी), नेपाल (काठमांडू की घाटी का प्रदेश जहाँ के शासक लिच्छवि थे) तथा कर्तृपुरा (फ्लीट के अनुसार कर्तापुर, रायचौधरी गढ़वाल कुमायूं का भाग, किन्तु अब विद्वानों के अनुसार यह कश्मीर का एक भाग जहाँ के के शासक 'क्रितिय' थे। इनके संदर्भ में 'नृपतिमिः' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अतः उत्तरी पश्चिमी तथा पूर्वी सीमा के ये राजतंत्रयी राज्य थे।

पश्चिमी भारत के राज्य

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में आज के हरियाणा, पं.जाब, राजस्थान के क्षेत्र का भू उल्लेख आता है जिसमें छोटे–छोटे गणराज्यों का वर्णन है जो निम्न है –

1. **मालव** (अजमेर–टोंक–मेवाड़ प्रदेश)– प्रायः सभी विद्वान मालव का

तात्पर्य यवन लेखकों द्वारा उल्लिखित मल्लोई से अनुमान करतेहैं जिन्होंने एलेक्जेंडर के आक्रमण का विरोध किया था यह धारणा भंडारकर ने प्रस्तुत की है। मलावों का उल्लेख लोगों का उल्लेख महाभारत में है। इसके अंतर्गत पं.जाब का सतलज और घग्घर नदी के बीच का भूभाग, जिसके अंतर्गत फिरोजपुर, फरीदकोट, भटिंडा, लुधियाना, संगरूर, पटियाला, रूपड़, चंडीगढ़ और अंबाला का क्षेत्र आते हैं, इन्हें मालवा या मालव कहा जाता है। इसी के साथ ही राजस्थान का दक्षिणी, पूर्वी भाग तथा मेवाड़ और टोंक में भी मालव निवास करते थे। टोंक के निकट कर्कोटनगर के आसपास के क्षेत्र में मलावों के सिक्के मिलते हैं।

2. **आर्जुनायन** (देहली, आगरा, जयपुर के निवासी) – अर्जुनयनों का उल्लेख पाणिनी के अष्टाध्यायी में मिलता है। बृहतसंहिता के अनुसार वे उत्तरी भाग के निवासी थे जिसका प्रमाण इस क्षेत्र में मिलने वाले उनके सिक्कों से होते हैं।

3. **यौधेय** (दक्षि–पूर्वी पं.जाब तथा उत्तरी राजस्थान के लोग) – यौधेयों का उल्लेख भी पाणिनी अष्टाध्यायी में मिलता है। इनकी स्थिति वाह्विक (पश्चिमी पं.जाब) के बीच है। सतलुज और व्यास के क्षेत्र से तीसरी सदी के आसपास के सिक्के मिलते हैं।

4. **मद्रक** (रावी–चिनाब दोआब में पं.जाब का मद्र देश) – मद्र का उल्लेख उपनिषदों में मिलता हैं। इनकी चर्चा अष्टाध्यायी और महाभारत में भी हुई है। वे पूर्व और ऊपर डॉ. भागों में बटें हुए थे। पूर्व मद्र रवि से चिनाव तक और अपर भद्र चिनाव से झेलम तक फैला था। पाणिनी के अनुसार मदर का नाम भद्र भी था। भद्र राजस्थान में घग्घर के किनारे बीकानेर के उत्तर–पूर्वी सीमा पर स्थित है।

5. **आभीर** (पंजाब, पश्चिमी राजस्थान तथा मध्य–प्रदेश का अहिरवाड़ा क्षेत्र) झांसी और विदिशा के मध्य का भाग अहिर्वर कहलाता है। किन्तु महाभारत में आबहिरों की अवस्थिति सरस्वती और विनशन नदियों के निकट अर्थात निचले सिंधु–काठे और पश्चिमी राजस्थान में बताया है।

6. **प्रार्जुन** – भंडारकर तथा स्मिथ के अनुसार नरसिंपुर–मध्यप्रदेश का क्षेत्र था, डॉ. पी.एल. गुप्ता के अनुसार उत्तर पश्चिम का क्षेत्र था। किन्तु कौटिल्य ने इनका उल्लेख गंधारों के साथ किया है। अर्थशास्त्र के टीका में उन्हे चांडाल–राष्ट्र कहा गया है।

7. **सनकानिक** (मध्य–प्रदेश में) – चन्द्रगुप्त द्वितीय के सामंतों में एक सनकानिक महाराज थे जिन्होंने उदयगिरी के एक देवालय को दान दिया था। इस कारण रायचौधरी और उनके अनुकरण में अन्य लोगों ने मान रखा है। इसमें यह बात ध्यान देनी चाहिए की इसी काल में गणपति नाग को विदिशा का शासक था। सनकानीक महाराज उन सैनिक और प्रशासनिक अधिकारियों में रहें होंगे जो चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता के संरक्षणकाल में वाकाटक राज्य की शासन व्यवस्था के लिए पाटलिपुत्र से भेजे गए थे। वीरसेन और अम्रकादेव गुप्त राज्य के कुछ अन्य अधियाकरी हैं, जिनका उल्लेख उदयगिरी और सांची के अभिलेखों में मिलता है। वे निःसंदेह इस भूभाग के निवासी न थे। इस आधार पर यह माना जा सकता है की सनकानीक महाराज विदिशा के निवासी रहे होंगे इसी कारण हरिषेण ने इन्हे प्रारजूनों और कार्कों के बीच रखा है।

8. **खरपरिक** (दमोह जिला–मध्यप्रदेश)– बटियागढ़ अभिलेख में खर्पर शब्द का प्रयोग देख कर अनुमान लगाया गया है की खरपरिक मध्य प्रदेश के दामोह जिले के निवासी रहे होंगे। किन्तु इस अभिलेख में मात्र इतनी सि बात कही गई है कि सुल्तान महमूद ने मीर जुलाच को, जो खर्पर सेना के विरुद्ध लड़ा था, चेदि का सूबेदार नियुक्त किया था। मध्यकालीन ग्रंथों में खर्पर का तात्पर्य मँगोल बताया गया है। इस आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि समुद्रगुप्त कालीन खर्परीक लोगों को उत्तरपश्चिमी प्रदेश का निवासी ही अनुमान किया जाना चाहिए।

9. **काक–** राखलदास बनर्जी ने कार्को की समता कश्मीर के कार्को से की है। सांची में काकनादबोट नामक एक विहार था इसलिए स्मिथ ने कार्कों का संबंध सांची से जोड़ने का प्रयास किया है। भिलसा के निकट ककपुर नामक एक ग्राम है, उसका भी संबंध कार्कों से जोड़ने का प्रयास किया गया है। किन्तु महाभारत में कार्कों का उल्लेख ऋषिक, तंगण, प्रतंगण और विढ़ल लोगों के साथ हुआ है। विद्वानों के अनुसार तो ऋषिक यू–ची (कुषाणों का कबीला) थे। पुराणों के अनुसार तंगण कश्मीर के निकट के प्रदेश के निवासी थे। विढ़ल संभवतः यू–चियों की ही एक शाखा का नाम है। इस प्रकार काक भी उनके पड़ोसी रहे होंगे।

डॉ. मजुमदार के अनुसार जनता द्वारा शासित ये गणराज्य दो भागों में विभक्त थे – एक भाग में मालव, खरपरिक, आर्जुनायन और मद्र तथा दुसरे में अन्य पांच थे, पर यह विभाजिकरण किस आधार पर था यह स्पष्ट नहीं है।

आर्यावर्त के राज्य

इस अभिलेख में आधुनिक उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश एवं बंगाल के शासकों को आर्यावर्त के राजा के रूप में कहा गया है। मनु और उनके भाष्यकार मेधातिथि के अनुसार आर्यावर्त की सीमा पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक तथा हिमालय से विन्ध्य तक थी। इसके पश्चिमी भाग में गणराज्य थे जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है। शेष राजाओं के लिए आर्यावर्त का राजा कहा गया है इसे ही उत्तरापथ भी कहा जाता था।

इस अभिलेख में केवल राजाओं का नाम दिया गया है इनके राज्यों का नहीं जो निम्न हैं –

1. **रुद्रदेव**– रुद्रसेन की समता कुछ विद्वानों ने शकक्षत्रप रुद्रदामन या रुद्रसेन तृतीय से की है जो की डॉ. शिव स्वरुप के अनुसार उचित नहीं है क्योंकि शकों का उल्लेख अभिलेख में अनाग से किया गया है। डॉ.. गोयल के नुसार यह वाकाटक शासक रुद्रसेन प्रथम था किन्तु इसे भी उचित नहीं माना जाता क्योंकि वाकाटक मुख्यतः दक्षिण के शासक थे। डॉ..सहाय के अनुसार यह कौशाम्बी का शासक रहा होगा जो समुद्रगुप्त के काल में उभर कर आया होगा डॉ..नागर एवं चट्टोपाध्याय का भी यही मत है।

2. **मंतिल**– बुलंद शहर एवं उसके समीप के क्षेत्र से मिली मिट्टी की मुहर पर जो मतिल नाम अंकित है उसके आधार पर फ्लीट और ब्राऊस का कहना है की यह बुलंदशहर के आसपास के क्षेत्र का शासक रहा होगा।

3. **नागसेन**– पद्मावती, ग्वालियर–मध्य प्रदेश का आधुनिक पदमपताया जो नरवर से 25 मील उत्तर–पूर्व में है)।

4. **गणपतिनाग**– भंडारकर के अनुसार विदिशा का शासक पर, डॉ.. अल्तेकर ने सिक्कों के आधार पर इसे मथुरा का क्षेत्र बताया है।

5. **अच्युत**– अहिछत्र उत्तर पांचालकी राजधानी–आधुनिक बरेली का रामनगर।

6. **नन्दिन**– गोयल नागराज के अनुसार चुकी इसका उल्लेख अच्युत के साथ हुआ इस कारणसंभव है की यह अच्युत के समीप का ही कोई राजा रहा होगा।

7. **नाग्दत्त**– दिस्कल्कर के अनुसार इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है किन्तु

संभव है की मथुरा के पड़ोसी नाग परिवार से ही सम्बंधित होगा तभी नाग शब्द जुड़ा है।

8. **चन्द्रवर्मा**– बंगाल का शासक, जिसका उल्लेख सुसुनिया लेख में मिलता है।

9. **बलवर्मा**– गोपाल चन्द्र वर्मा का वंश, डॉ..जायसवाल के अनुसार कौमुदी महोत्सव का कल्याण वर्मा। वसु दांडेकर के अनुसार यह पश्चिमी असम का शासक था जो हर्ष के समकालीन भास्कर वर्मा का पूर्वज रहा होगा।

डॉ..रैम्प्सन ने इन नौ नामों को नौ नन्द राजा माना है जो उचित नहीं लगता। चन्द्रवर्मा, बल्वार्मा और मलित नन्द वंशीय नहीं हो सकते।

आटविक राज्य

आटविक का अर्थ वन्य क्षेत्र होता है, अतः ये वन्य प्रदेश के राज्य रहे होंगे। डॉ..रायचौधरी के अनुसार यह गाजीपुर से जबलपुर तक विस्तृत था, किन्तु गाजीपुर तो मगध का भाग था जहाँ का वह स्वयं महाराधिराज था। बुंदेलखंड से प्राप्त दो अभिलेखों में महाराज हस्ती को डहाल और पड़ोस के अठारह आटवी राज्यों का स्वामी कहा गया है, अतः डहाल जबलपुर के समीप का भाग रहा होगा। अतः यह जबलपुर से छोटा नागपुर तक विस्तृत रहा होगा।

दक्षिणापथ के राज्य

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में उसके दक्षिण अभियान का उल्लेख गौरवशाली ढंग से किया गया है। राजशेखर जी ने विन्ध्य के दक्षिण में स्थित नर्मदा नदी के उत्तर का भाग उत्तरापथ तथा दक्षिण के भाग को दक्षिणापथ माना है। दक्षिणापथ में कई छोटे–छोटे राज्य था जिसमें से 12 राजाओं और उनके राज्यों का नाम इस अभिलेख में उल्लेखित है। चुकिइस अभिलेख में पहले राज्य का नाम फिर राजा का नाम बताया गया है अतः विद्वानों को इसे पढने में प्रमुख कठिनाई इसे समास पदों को तोड़ने में आती है और फिर राज्यों को पहचानने में।

समुद्र गुप्त के प्रयाग प्रशस्ति में उल्लेखित दक्षिणापथ के राज्य निम्न है –

1. **कोसल के महेंद्र**– कोसल वर्तमान छत्तीसगढ़ का मध्य भाग था जिसमें रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, गंजाम व उड़ीसा का सम्बलपुर आदि जिलों के क्षेत्र आते थे, यहाँ का शासक महेंद्र था जो संभवतः शरभपुरीय शासक था।

2. **महाकान्तार का व्याघ्रराज** – वर्तमान छत्तीसगढ़ का बस्तर क्षेत्र, महावन, डॉ. मजुमदार के अनुसार उड़ीसा जयपुर नामक वन्य प्रदेश। विद्वान इस व्यघ्रराज की समता बस्तर के नलवंशी शासक व्ययघराज से करते हैं।

3. **कोराल का मन्टराज** – डॉ..सरकार के अनुसार कॉलेर झील के निकट का प्रदेश, फ्लीट ने कैरलक पढ़कर इसकी समता केरल से की है।

4. **पिष्टपुर का महेंद्रगिरी** – गोदावरी जिले का पीठापुर।

5. **कोट्टुर का स्वामिदत्त** – डेब्रू ने इसे गंजाम जिले का कोट्टूर माना है, जबकि आयंगर ने पिथापुरम के समीप का कोट्टूर माना है किन्तु स्मिथ ने इसे कोयंबटूर माना है।

6. **एरंडलपल्ल का दमन** – फ्लीट के अनुसार यह खानदेश का एरण्डोल, रामदास के अनुसार विजगापट्टम के एंडिपल्ली।

7. **कांची का विष्णुगोपीय** – यह पल्लवों की राजधानी कांजीवरम है तथा विष्णुगोपीय संभवतः पल्लववंशी राजा था।

8. **अवमुक्त का नीलराज**– गोदावरी जिले का अवमुक्ति क्षेत्र।

9. वेंगी का हस्तिवर्मा दृ मद्रास के पास वेंगी या पेड–वेग्गी

10. **पालकक का उग्रसेन** – स्मिथ ने मालवार जिले के उत्तर का पायघाट माना है, मान्य है। डैब्रूएल का मत कि यह नल्लोर जिले का पलक्कड़ है।

11. **देवराक्षत्र का कुवेर** – फ्लीट ने महाराष्ट्र, सुथियनथियर ने महाराष्ट्र के खानपुर का महाराठे गांव पर डेब्रूएल ने ठीक पहचाना है विजगापट्टम जिले का एलमंञ्ज्चीकलिंग देश।

12. **कुस्थलपुर का धनञ्जय** – वार्नेट ने उत्तरी आर्कट का कुत्तलूर, स्मिथ ने द्वारका पर, डॉ..गोपाल ने अज्ञात कहा है।

दक्षिणी पश्चिमी भारत की विदेशी जातियाँ

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में भारत में उपस्थित कुछ विदेशी जातियों का उल्लेख मिलता है जिन्हे समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। ये पश्चिमी भारत के पहले के विदेशी शासकों के वंशज थे। अभिलेख की 23 वीं पं.क्ति में वर्णित

'देवपुत्रषहवाहानुवाहिशकमुरुण्डैः'। 'देवपुत्र' उपाधि का प्रयोग कुषाण शासक करते थे। समुद्रगुप्त के काल में किदार कुषाण इनका उत्तराधिकारी था जिसक लिए इसका प्रयोग किया गया होगा। डॉ. आर एस शर्मा के अनुसार कुषाण स्वयं इसका प्रयोग नहीं करते थे बल्कि भारतीय यह उपाधि उनके लिए करते थे। इनके सिक्कों पर 'शा' (षाहि) अंकित है। इसी से देवपुत्रषाहि यहाँ कुषाण जातीय राजा का बोधक है। 'षाहानुषाहि' ईरानी राजाओं की उपाधि थी, जिसका रूप पह्लव सिक्कों पर 'शाओ' तथा 'शाओनानोशाओ', यूनानी सिक्कों पर 'वैसीलिओस' तथा 'बैसीलिओस बैसीलिओन' कुषाण सिक्कों पर 'महरज' तथा 'महरज राजदिरज' मिलता है। इसी का संस्कृत रूप 'राजा', 'राजाधिराज' है। 'शकमुरुण्डै' (शक और मुरुण्ड) में शक एक विदेशी जातियाँ थी जो पश्चिमी भारत में शासन करते थे तथा मुरुण्ड शकों की एक जाति विशेष का नाम था। ये पश्चिमी भारत के शक–क्षत्रप रहे होंगे। इस प्रकार यह सिद्ध होता है समुद्रगुप्त के काल में पश्चिमी भारत में कुषाण, ईरान तथा शक जातियाँ थी। रघुवंश में भी रघु (समुद्रगुप्त) द्वारा कंबोजो, हूणों और पारसिकों के पराजय का उल्लेख भी इसे पुष्ट करता है।

सीमा के बाहर के द्वीप

समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति में भारतवर्ष के अनेकों राज्यों के साथ–साथ भारत भूमि क्षेत्र से बाहर के द्वीपों पर भी विजय का उल्लेख किया गया है। इसमें केवल सिंहल का नाम लिया गया है और 'सर्वद्वीप वासिभिः' से अन्य द्वीपों की ओर संकेत हैं। इससे भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र के विस्तार का ज्ञान होता है। सिंहल का प्रयोग 'सिंघल' का प्रयोग आज के लंका द्वीप के लिए किया है। जबकि सर्वद्वीप से आशय दक्षिण–पूर्व एशिया के अनेक द्वीपों से है। जिससे समुद्रगुप्त के राजनैतिक व भारत के सांस्कृतिक विस्तार का ज्ञान मिलता है। भारत के बाहर अनेकों द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रभाव भविष्य में भी रहा जब चोल शासकों ने मलाया द्वीपों तक सैन्य अभियान किया। यह प्रभाव आज भी इन द्वीपों पर आज भी दिखाई देता है।

समुद्रगुप्त के सत्ता में आने के स्रोत के रूप में

प्रयाग प्रशस्ति के चतुर्थ श्लोक में समुद्रगुप्त के लिए 'आर्यो हित्युपगुह्य–पाह्येवमूर्वीमिति' का प्रयोग किया गया है। इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि इसका पिता चंद्रगुप्त प्रथम योग्यता का पारखी था – तत्वेक्षिणा। उसने अन्य तुल्य कुलज होने पर भी योग्यता के कारण उसे पृथ्वी पालन का कार्य सौंपा – पाह्वेवमूर्वीमिति। इसकी पुष्टि ऋद्धपुर एवं पूना ताम्रपत्रों द्वारा भी होती है –

तत्पादपरिगृहीत (पिता द्वारा चुना हुआ)। वहाँ स्पष्ट है कि इसके और भी भाई इससे बड़े थे जीमें से इसे चुना गया था। इससे उनमें इसके प्रति विरोध होना स्वाभाविक था। तभी वे 'मलानानने द्विक्षितः' अर्थात दुखी होकर राज्याभिषेक को देख रहे थे।

रैप्सन और हेरास के अनुसार राज्याभिषेक के बाद समुद्रगुप्त को गृह युद्ध का सामना करना पड़ा। इसके लिए कांच की मुद्राओं की प्राप्ति के आधार पर विरोधी दल का नेता उसके भाई (?) कांच को ही माना गया है। इस लेख के अनुसार – 'सग्रामेषु स्वभुजबलविजिताः नियमुच्चापकाराः' अर्थात कुछ को संग्राम में पराक्रम से जीता और कुछ स्नेह से – स्नेहयुलैर्म्मनोभिः। पर कुछ लोग काच और समुद्रगुप्त की मुद्राओं में तौल, उपाधि, उत्कीर्ण लेख की दृ ष्टिगत दोनों को एक–एक ही व्यक्ति मानकर कांच को समुद्रगुप्त का दूसरा नाम मानते हैं, जो उसका मौलिक नाम था। विजय के बाद उसने समुद्रतट तक विजय करने के कारण अपने को समुद्रगुप्त नाम से संबोधित किया। पर यह बहुत मान्य नहीं प्रतीत होता।

समुद्रगुप्त की विजय नीतियाँ

अभिलेख में समुद्रगुप्त के विजय अभियान का क्रम दक्षिणापथ से आरंभ होता है। डेब्रूएल ने इस क्रम को ही सही विजय क्रम मिलता है। किन्तु यह तार्किक नहीं लगता, क्योंकि अभिलेख में समुद्रगुप्त के उत्तरापथ अभियान का उल्लेख है। यह संभव नहीं लगता कि यदि उत्तर भारत समुद्रगुप्त के नियंत्रण में नहीं था तो वह अपने विजय अभियान का आरंभ दक्षिण से कैसे आरंभ कर सकता है ? यदि उसके दक्षिणापथ अभियान कारण राजधानी पाटलिपुत्र में उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर कोई भी राज्य राजधानी पर आक्रमण कर सकता था। ऐसे में अपनी राजधानी के समीप के राज्यों को सुरक्षित किये बिना समुद्रगुप्त का दक्षिणापथ अभियान तार्किक नहीं लगता। अतः इन तथ्यों व तर्कों के आधार पर विद्वानों ने समुद्रगुप्त के विजय अभियान का निम्न क्रम दिया है–

1. आर्यावर्त का युद्ध
2. आटविक राज्यों पर विजय,
3. पूर्वी व उत्तरी सीमा के राज्यों पर विजय,
4. पश्चिम के गणराज्यों पर विजय,
5. दक्षिणापथ अभियान।

यह तार्किक भी लगता है की पहले समुद्रगुप्त ने पहले उत्तर, पश्चिमी व पूर्वी राज्यों को सुरक्षित करने के बाद ही उसने दक्षिण का अभियान किया होगा। उसके बाद उसने विदेशी और द्वीपवासियों को विजित किया। विद्वानों के अनुसार दक्षिणापथ अभियान को अभिलेख में पहले करने का कारण संभवतः समुद्रगुप्त के सबसे प्रभावक गुण को सामने रखना रहा होगा। अशोक के बाद किसी शासक ने इतने बड़े स्तर पर दक्षिण का विजय अभियान नहीं किया था। दक्षिणापथ के अभियान को अभिलेख में पहले रखने का कारण संभवतः यही रहा होगा।

समुद्रगुप्त को दक्षिणापथ अभियान के बाद पुनः आर्यावर्त (उत्तरपथ) का युद्ध लड़ना पड़ा था। पिता द्वारा समुद्रगुप्त को अयोध्या का राजा बनाया गया था किन्तु अभिलेख से ज्ञात होता है की दूसरों से यहाँ कब्जा कर लिया था जिस पर अधिकार करने के लिए उसे युद्ध करना पड़ा। संभवतः इन सभी ने मिलकर समुद्रगुप्त के विरुद्ध युद्ध किया था। किन्तु समुद्रगुप्त ने एक ही लड़ाई में (एकेन....उन्मूलय) इनको अपने भुजबल से पराजित किया था (उद्वेलोदित–बाहु–वीर्य्यभसादेकेन येन क्षणादु मूल्य)। कुछ विद्वानों ने आर्यावर्त के दोनों युद्दों में समान नाम होने के कारण एक ही युद्ध होने की संभावना जताई है। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप के अनुसार यह सही नहीं है। समुद्रगुप्त ने प्रथम युद्ध पाटलिपुत्र पर अधिकार के लिए हुआ था तथा समुद्रगुप्त ने इस युद्ध में केवल उन्मूलित किया था किन्तु आर्यावर्त के दूसरे युद्ध में समुद्रगुप्त ने इन्हे पुरी तरह समाप्त कर दिया।

शासन की सुविधा और विजय के स्थायित्व के लिए विभिन्नन क्षेत्रों के विजय में उसने विविध नीतियों का अनुसरण किया था। समुद्रगुप्त जैसे महत्वाकांक्षी व राजनैतिक निपुण शासक के लिए यह नीति अपनाना आवश्यक भी था जो की निम्न है –

1. आर्यावर्त के प्रथम युद्ध में अच्युत, नागसेन तथा कोतकुलज को उन्मूलित किया (उन्मूल्यात)।
2. सीमावर्ती राज्य व पश्चिमी भारत के गणराज्यों को आदेश दिया था कि वे सर्वकरदान, आज्ञाकरण और प्रणाम करने हेतु उपस्थित होकर राजा को संतुष करें (सर्व्व–कर–दानाज्ञाकरण–प्रणामागमन–परितोषित–प्रचंड–शासनस्य)।
3. आर्यावर्त के राजों को उन्मूलित किया था जिससे उसका प्रताप फैला (प्रसभोद्धरणोदृत्त–प्रभाव–महतः)।

4. आटविक प्रदेश के राजाओं को अपना सेवक बना लिया (परचारकीकृत सर्व्वाटविक–राजस्य)।

5. दक्षिणापथ के राजों को ग्रहण करके पुनः उन पर अनुग्रह करके छोड़ दिया जिससे उसके प्रताप की वृद्धि हूई (राजग्रहण–मोक्षानुग्रह–जनित–प्रतापोन्मिश्र महाभगस्य)।

6. दक्षिण पश्चिम की विदेशी जातियों तथा द्वीपवासियों को बाध्य किया कि वे आत्मनिवेदन करें, कन्याओं का उसे दान भेट दें और अपने विषय–भुक्ति पर शासन करते रहने के लिए गरुड़ान्कित आज्ञापत्रों की याचना करें (आत्मनिवेदन–कन्योपायदान–गरून्मदक्ङ्गस्व– विषयभुक्ति शासनायाचन)।

दक्षिणापथ के विजय क्रम में डेब्रूएल का अनुमान कि पहले उड़ीसा के समीपस्थ राज्यों को जीता गया होगा उसके बाद समुद्रगुप्त दक्षिण की ओर बढ़ते हुए कृष्णा नदी तक गया होगा। यहीं पूर्वीघाट के शासकों के सम्मिलित संघ ने उसे परास्त किया होगा किन्तु डॉ. शिव स्वरूप के अनुसार यह काल्पनिक है। इस अभिलेख में समुद्रगुप्त के कहीं भी पराजित होने का उल्लेख नहीं हुआ है इससे लगता है की उसके दक्षिणी–पूर्वी, मध्य–प्रदेश के शासकों को पहले परास्त किया होगा तथा उड़ीसा के राजाओं को जीतते हुए दक्षिण में कांची तक गया होगा।

डॉ..जायसवाल के अनुसार दक्षिणापथ के राजाओं के डॉ. संघों ने अलग–अलग इससे युद्ध किया था। एक संघ था कोराल के भण्टराज के अधीन एरण्डपल्लव दमन और कोट्टूर के स्वामिदत्त तथा दूसरा संघ शेष नौ राजाओं का कांची के विष्णुगोप के अधीन था, पर इसका कोई एतिहासिक आधार नहीं हैं। दण्डेकर का मानना है कि दक्षिणापथ के सभी राजाओं ने कांची के विष्णुगोप के अधीन संघ बनाकर युद्ध किया था। किन्तु विद्वानों के अनुसार यह संभव नहीं है कि इतनी दूर के राजाओं ने कोई संघ बनाया होगा। अतः यह तार्किक लगता है कि समुद्रगुप्त ने अलग–अलग युद्धों में समुद्रगुप्त ने इन्हे परास्त किया होगा।

दक्षिणी भारत से लौटने का मार्ग

समुद्रगुप्त दक्षिण के विजय के लिए कलिंग प्रदेश से चलकर पूर्वीघाट होते हुए गया था, किन्तु दक्षिण विजय के बाद वह किस मार्ग से लौटा इस पर दो मत हैं।

कुछ इतिहासकार उसके इस अभियान को पूर्वी घाट तक ही सीमित मानते हैं, जहाँ से वह उसी मार्ग से लौट आया। कुछ कतिपय वर्णित स्थानों का समीकरण पश्चिमी घाट के स्थानों से करके उसके लौटने की मार्ग पश्चिमी तथा मध्य भारत होकर बताते हैं। ऐसा मानना निम्न स्थलों के पहचान में भेद के कारण हैं –

1. **पलक्क**– स्मिथ ने पलक्क की समता पश्चिमीघाट के मालावार जिले के उत्तर में स्थित पालघाट से की है जो पश्चिमी घाट है।
2. **देवराष्ट्र**– फ्लीट के अनुसार यह महाराष्ट्र था। सुथियंथियस और दीक्षित भी इसे वहीं महाराष्ट्र के खानपुर तालुक के देवराठा ग्राम बताते हैं। महाराष्ट्र पश्चिमी घाट में है।
3. **एरण्डपल्ल** – फ्लीट और दीक्षित के अनुसार महाराष्ट्र के पूर्वी खानदेश का एरन्डोल नामक स्थान था।

यदि उपरोक्त कथन को मान लिया जाए तो यह संकेत मिलता है कि समुद्रगुप्त पूर्वीघाट के विजय के बाद पश्चिमीघाट गया होगा। किन्तु डॉ. शिव स्वरूप के अनुसार यह मान्य नहीं है क्योंकि पूर्वीघाट के राज्यों के बीच–बीच में पश्चिमी घाट का उल्लेख भौतिक दृष्टि से क्रमिक व व संभव नहीं लगता। अतः ये सभी पूर्वीघाट के ही स्थान होंगे। डैब्रूएल ने ठीक ही पूर्वीघाट में स्थित पल्लक की समता कृष्णा नदी के तटवर्ती निलौर जिले के पलक्कड़ से जो पल्लवों की राजधानी थी, देवराष्ट्र को विजगापट्टम जिले में वेलमञ्जिली प्रदेश से तथा एरण्डपल्ल को उड़ीसा के तटवर्ती एरण्डपल्ली नगर से की है। अतः जब समुद्रगुप्त काभी महाराष्ट्र की ओर गया ही नहीं तो पश्चिमीघाट होकर लौटाने की बात उठती ही नहीं। इसकी पुष्टि में हम यह भी तर्क दे सकते हैं कि –

1. पश्चिमीघाट से होकर लौटते समय समुद्रगुप्त को वाकटकों से युद्ध करना पड़ता, किन्तु अभिलेख में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। वाकटकों के संबंध में स्मिथ ने लिखा है – (The Vakataka Kings occupied suchAn impirant geographical position in which he could be of much serice or disservice to the Northen invader in the dominions of the Khatraps of Gujrat or Saurashtra) जिससे स्पष्ट होता है की वाकाटक आज के महाराष्ट्र के क्षेत्र की एक बहुत बड़ी शक्ति थे। ऐसे में यदि समुद्रगुप्त पश्चिमी घाट होकर लौटता तो बिना उनसे युद्ध किए वह आगे नहीं बढ़ सकता था और यह भी संभव नहीं लगता की इतनी बड़ी

शक्ति पर विजय का उल्लेख प्रशस्तिकार न करे।

2. पूर्वीघाट से पश्चिमीघाट जाने के रास्ते के बीच में आने वाले राज्यों भी पर भी विजय का उल्लेख अभिलेख में नहीं है। अर्थात यदि समुद्रगुप्त पूर्वी घाट से पश्चिमी को जाता तो अवश्य ही उसे इन दोनों के बीच स्थित राज्यों को अवश्य जीतता। किन्तु अभिलेख में इसका भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इन दोनों तर्कों के आधार पर विभिन्नन विद्वानों का मत है की समुद्रगुप्त पूर्वीघाट से होते हुए दक्षिण भारत पर आक्रमण किया था तथा उसी मार्ग से अपनी राजधानी को लौटकर आया।

राज्य विस्तार

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने केवल आर्यावर्त के राजाओं को पूर्णतः उन्मूलित किया था जबकि अन्य शेष के साथ अन्य नीतियों को अपनाया था तथा निश्चित अनुबंधों के साथ शासन करने की छूट दी। समुद्रगुप्त ने यही नीति विदेशी जातियों के साथ भी अपनाई थी। किन्तु उत्तरापथ (आर्यावर्त) के वे क्षेत्र जिनमें प्रयाग से पूरब विहार तक के राज्यों का उल्लेख नहीं हैं, जिससे ऐसा संकेत मिलता है की संभवतः ये क्षेत्र समुद्रगुप्त को पैतृक उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। इसमें आर्यावर्त के युद्ध मे सम्मिलित हुए नौ राजाओं के राज्य भी थे जो पश्चिमोत्तर और मालवा के राज्य, मध प्रदेश एवं पश्चिमी बंगाल के कुछ क्षेत्र भी थे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि समुद्रगुप्त का अधिकार क्षेत्र गंगा और यमुना के क्षेत्र में उसका अधिकार था। इसी कारण गुप्त कालीन मंदिरों की द्वार शाखा पर गंगा यमुना का अंकन होने लगा था। समुद्रगुप्त के सिक्कों पर सिंहवाहिनी दुर्गा को देखकर डॉ..रायचौधरी ने यह माना है कि उसका सम्राज्य हिमालय से विंध्याचल तक था। इसके अतिरिक्त शेष सीमा के राज्य, पश्चिम के गणराज्य, आटविक प्रदेश के शासक, दक्षिणापथ के राजा और दक्षिण–पश्चिम की विदेशी जातियाँ जो आर्यावर्त को चारों दिशाओं से किसी घेर हुआ था सभी समुद्रगुप्त के अंतर्गत सामंत बन चुकि थी जिन पर उसका प्रभाव व नियंत्रण था।

गुप्त वंशावली के स्रोत के रूप में

इस अभिलेख से हमें आरंम्भिक गुप्त शासकों की वंशावली का ज्ञान मिलता है। अभिलेख की 28 वीं पं.क्ति में यह लिखा है – 'देवस्य महाराज–श्रीगुप्त–प्रपौत्रस्य महाराजा–श्री–घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज–

श्री–चन्द्रगुप्त–पुत्रस्य लिच्छवि महदेव्यां कुमार–देव्यां उत्पन्नस्य महाराधिराज–श्री–समुद्रगुप्त'–इससे समुद्रगुप्त के पूर्वराजाओं और उसके वंश का परिचय मिलता है। यह पहला गुप्त अभिलेख है जिसमें गुप्त वंश के शासकों का क्रम उसके समुद्रगुप्त के काल तक प्राप्त होता है। अभिलेख के अनुसार इस वंश का प्रथम शासक समुद्रगुप्त का प्रपितामह श्रीगुप्त था जिसकी उपाधि 'महाराज' थी। जिसके बाद घटोत्कच शासक बना जिसकी उपाधि भी 'महाराज' थी। किन्तु घटोत्कच के बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त गुप्त राजवंश का अगला शासक बना तथा उसकी उपाधि 'महाराजाधिराज' थी। इससे यह संकेत मिलता है कि श्रीगुप्त एवं घटोत्कच संभवतः एक अधीनस्थ सामंत शासक रही होंगे तथा संभवतः इस समय तक इस वंश का नामकरण गुप्त नहीं हुआ होगा। जबकि चन्द्रगुप्त के लिए महाराजाधिराज के लिए प्रयुक्त होना यह संकेत देता है कि संभवतः चन्द्रगुप्त एक स्वतंत्र शासक था।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि श्रीगुप्त व घटोत्कच किसके सामंत थे ? सिलवांलेवी ने विदेशी विवरणों और सुधारकर चट्टोपाध्याय ने वायु व विष्णु पुराणों के प्रमाणों के आधार पर गुप्तों को 'मूरुन्डों' का सामंत माना है। फ्लीट तथा आर डी बनर्जी ने गुप्तों को शकों का सामंत माना है जो मगध पर शासन करते थे। विन्सेंट स्मिथ और काशी प्रसाद जायसवाल ने इन्हे लिच्छवियों का सामंत है, क्योंकि चन्द्रगुप्त की मुद्राओं पर लिछवयः लेख अंकित है तथा समुद्रगुप्त के लिए इस अभिलेख में 'लिछवि दौहित्रः' का प्रयोग किया गया है।

समुद्रगुप्त के चरित्र चित्रण

इस अभिलेख में हमें समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व चरित्र के बारें में विशेष जानकारी प्राप्त होती है जो की निम्न है –

1. धर्म प्राचीर बांधः– अर्थात धर्म में जो बंधा हुआ है।
2. शास्त्र तत्वार्थ भर्तुः– शस्त्रों के तत्वों को समझने वाला।
3. कविता कीर्ति राज्य भुनक्ति– काव्य के क्षेत्र में उसकी कीर्ति व्याप्त थी।
4. शशिकर शुचयः कीर्तयः – चंद्रमा के समान धवल कीर्तिवाला।
5. उसका शरीर युद्ध क्षेत्र में अनेक शस्त्रों के प्रहार से घायल था।
6. विदेशी जातियों तथा द्विपवासियों से उसका संबंध था।
7. कूटनीतिज्ञ– समुद्रगुप्त ने अपने विजय अभियान में विविध राज्यों के साथ भिन्न नीतियों को अपनाया था इसलिए उसे राजनैतिक कूटनीतिज्ञ

बताया गया है।

8. समुद्रगुप्त ने लोक– कल्याण धनद, वरुण और इन्द्र के समान था।
9. समुद्रगुप्त को संगीत में गुरु, तम्बुरु और नारद जैसे आचार्यों को पराजित करने वाला बताया गया है।
10. समुद्रगुप्त के ज्ञान, दान, शौर्य की ख्याति गंगा की धारा की तरह सर्वत्र व्याप्त थी।
11. समुद्रगुप्त को महान विजेता बताया गया है जिसने अपने बाहुबल से अनेकों राज्यों को विजित किया था।

प्रशासनिक इतिहास के स्रोत के रूप में महत्व

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से हमें गुप्त कालीन प्रशासनिक व्यवस्था की भी जानकारी मिलती है जिसमें विभिन्नन पदाधिकारियों का उल्लेख निम्न है –

1. **संधि–विग्रहिक**– यह मित्र एवं सामंत राज्यों के साथ राज्य की देख–रेख करने वाला अधिकारी था। उसका मुख्य काम कदाचित सामतों और मित्र–राजाओं के साथ सद्भाव बनाये रखने के प्रति सजग रहना और विद्रोहोन्मुख राज्यों का दमन करना था। कदाचित वह युद्ध में सम्राट के साथ उपस्थित भी रहता था। कुछ विद्वानों ने आधुनिक युद्ध के ढंग पर उसके युद्ध और शांति मंत्रि होने की कल्पना की है।
2. **कुमारामात्य**– गुप्त अभिलेखों और मुहरों में कुमारामात्य का उल्लेख आता है, संभवतः यह आजकल के आई.सी.एस और आई.ए.एस के समान उच्चवर्गीय अधिकारियों का वर्ग था। इस वर्ग से केन्द्रीय तथा स्थानीय शासन के लिए अधिकारियों का मनोनयन अथवा निर्वाचन होता था। दूसरे शब्दों में गुप्त शासन के शासन–तंत्र का नाम कुमारामात्र था।
3. दंडनायक और महादंडनायक दृ दंड का अर्थ सेना और नये दोनों से लिए जाता है। इस कारण कुछ लोग इन पदों का समबंध सेना और कुछ न्याय से अनुमान करते हैं, इससे अनुमान है की ये उच्च पुलिस अधिकारियों के पद रहे होंगे। किन्तु दंड शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर (टैक्स) कर के अर्थ में भी हुआ है। यदि इस भाव को ग्रहण करें तो इसका तात्पर्य कर से संबंधित अधिकारी से लिया जा सकता है।

अभिलेख के उत्कीर्णनन के काल की समस्या

इस अभिलेख के अध्ययन में विद्वानों को जो समस्या है वह है इसके लेखन के काल की। यह अभिलेख समुद्रगुप्त के शासनकाल के किस समय में की गई थी यह निश्चित करना अभी भी कठिन है। डॉ. फ्लीट ने जब पहली बार इस लेख का सम्पादन किया तब इसे समुद्रगुप्त के मृत्योपर्यंत लिखा जाना माना गया था। किन्तु विद्वानों ने इस समस्या के अध्ययन के लिए निम्न बिन्दु निर्देशित किए हैं –

1. अभिलेख की 30 वीं पं.क्ति में 'आचक्षाणः वभूव' पढ़ा गया। इस आधार पर इस अभिलेख को उसकी मृत्यु के बाद का माना गया।
2. इसी पं.क्ति में 'त्रिदशपति भवनगमन' का अर्थ समुद्रगुप्त को 'इंद्रलोक गमन करने वाला' लिया गया है।

किन्तु इन तर्कों के विरुद्ध निम्न तर्क प्रस्तुत किए गए हैं –

1. 30 वीं पनकी का शुद्ध पाठ 'आचरण इव भुवो' है जिससे समुद्रगुप्त की मृत्यु का अर्थ नहीं निकलता।
2. 'त्रिदशपति भवनगमन' अभिप्राय समुद्रगुप्त की कीर्ति का स्वर्ग तक पँहुचना है न कि उसके शरीर का।
3. यहाँ भूतकाल की क्रिया का अभाव है। इससे महरौली स्तम्भ लेख की तरह भूतकालिक क्रिया का उल्लेख से विदित नहीं है जिससे समुद्रगुप्त के मृत्यु पर्यंत उसे माना जाय।
4. यदि इस अभिलेख को समुद्रगुप्त के बाद के किसी शासक द्वारा उत्कीर्ण करवाया गया होता तो इसमें उसका नाम भी अवश्य अंकित होता। कर्मदंडा शिवलिंग अभिलेख से विदित है की उत्कीर्ण कराने वाला कुमारगुप्त के पिता के समय का मंत्रि था पर यहाँ हरिषेण तो संधिविग्रह और महादंडनायक के पद पर था जब समुद्रगुप्त के शासक था।
5. इस लेख में हरिषेण का कथन 'एतमेव भट्टारकपादानां' से स्पष्ट है इसी भट्टारक के चरण कमलों में। अतः यह समुद्रगुप्त के जीवन काल को उजागर करता है।
6. समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार प्रकार के सिक्कों तथा एरण अभिलेख से उसके द्वारा किए गए असवमेध यज्ञ का ज्ञान मिलता है जिसका उल्लेख इस अभिलेख में नहीं मिलता। जिसका अर्थ है की संभवतः इस लेख के लिखे जाने के समय तक समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ नहीं किया था।
7. इसमें समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों की उपाधियां जिनका प्रयोग उन्होंने

किया है जैसे– 'चतुरुदधिसलिलास्वादितयशसा' आदि यहीं है।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर यह माना जा सकता है की यह अभिलेख समुद्रगुप्त के जीवन काल में ही लिखा गया होगा जब वह समस्त आर्यावर्त और दक्षिणापथ को जीतकर अपनी राजधानी में शांतिपूर्वक शासन कर रहा था तथा, संगीत, कला, दान आदि जन कल्याण व राज्य के विकास के कार्य कर रहा था।

15.7 सारांश

समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति स्तंभ लेख गुप्त शासकों में से सबसे प्रतापी शासक गुप्त वंश के चौथे व दूसरे स्वतंत्र सम्राट समुद्रगुप्त से संबंधित है। यह अभिलेख अशोक स्तंभ पर उत्कीर्ण है। विद्वानों के अनुसार यह स्तंभ पहले कौशांबी में था जिसे जहाँगीर के काल में प्रयागराज (इलाहाबाद) किले में लाया गया। यह अभिलेख प्रशस्ति की शैली में लिखा गया है जिसकी रचना समुद्रगुप्त के संधिविग्रहिक हरिषेण ने की थी। इस अभिलेख में समुद्रगुप्त के विजय अभियानों का वर्णन है जिसमें उसके द्वारा लड़े गए आर्यावर्त के दो युद्ध और दक्षिणपथ के अभियान का वर्णन है। इस अभिलेख के अनुसार समुद्रगुप्त का सम्राज्य अत्यंत विस्तृत था जिसमें अनेक समतटीय प्रदेश जैसे बंगाल, डवाक, नेपाल असम आदि,पश्चिम भारत के राज्य हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, मालव, आदि, आर्यावर्त के राज्य जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, बंगाल आदि, अटविक प्रदेश, दक्षिण भारत के क्षेत्र जिसमें छत्तीसगढ़, कलिंग, कांजीवरम, एरण्डपल्ल, पालक्क, वेंगी, देवराष्ट्र आदि तक का क्षेत्र था। उसने शक मुरुण्ड आदि विदेशी जातियों पर भी विजय प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त समुद्रगुप्त को सिंहल द्वीप सहित अनेक द्वीपों पर शासन करने वाला बताया गया है द्यइन सभी क्षेत्रों को समुद्रगुप्त ने अलग अलग नीतियों के तहत विजिट किया था इस अभिलेख में समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व का भी वर्णन है जिसमें उसे महान योद्धा, संगीतज्ञ, कवि, दिन–आनाथों के कष्ट निवारण करने वाला बताया गया है इस अभिलेख में समुद्रगुप्त के वंश का भी वर्णन मिलता है जिसमें उसे श्रीगुप्त का प्रपौत्र, घटोत्कच का पौत्र, व चन्द्रगुप्त का पुत्र बताया गया है इस में समुद्रगुप्त को परमभट्टारक बताया गया है जिससे उसके भागवत धर्म के अनुयायी होने का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं, कि समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति प्राचीन भारतीय के सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है जिससे हमें उत्तर कुषाण कालीन भारत के इतिहास की अनेकों महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इससे हमें यह ज्ञात होता है की मौर्य शासक अशोक के बाद समुद्रगुप्त ने ही सर्वाधिक क्षेत्र को विजित करने के उद्देश्य से सबसे बाद सैन्य अभियान

किया। यह कहा जा सकता है की अशोक के बाद यह प्रथम बार था जब भारत वर्ष का एक बाद भूभाग किसी एक राजवंश के अधीन था। समुद्रगुप्त द्वारा विजित क्षेत्र को उसके उत्तराधिकारियों ने भी लंबे समय तक अक्षुण रखा। यह विशाल सम्राज्य ही भविष्य में भारत के आर्थिक, धार्मिक, कला व अन्य क्षेत्रों में समृधि के शिखर पर पँहुचने का आधार बना क्योंकि बिना बड़े भूभाग से ही राज्य की अर्थव्यवस्था, स्थापत्य, कला आदि के विकसित होने के लिए स्रोत प्रदान करता है। यह कहना अनुचित नहीं होगा की गुप्त काल को भारत के स्वर्ण काल कहलाने के पीछे संभवतः समुद्रगुप्त का यह विजय अभियान प्रमुख भूमिका प्रदान करता है। आगे चलकर भारत में कला, साहित्य, स्थापत्य का जो विकास हुआ उसका प्रभाव सम्पूर्ण भारत में देखने को मिलता है चाहे वो कालिदास, वराहमिहिर के ग्रंथ हो या आरंम्भिक मंदिरों के स्थापत्व। गुप्त काल में बड़ी मात्रा में स्वर्ण सिक्कों को चलना गुप्तसाम्राज्य की समृद्ध आर्थिक स्थिति का बोध कराता है। अतः इस अभिलेख को प्राचीन भारत के सबसे महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक माना जा सकता है।

15.8 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय पुरालिपि, डॉ. शिव स्वरुप सहाय
2. प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख भाग 2, डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त
3. Select Inscriptions Bearining India-n HistoryAnd Civilization – DC Sarkar

15.9 आदर्श अभ्यास प्रश्न

1. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेख किससे संबंधित है ?
2. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेख की विषयवस्तु पर लेख लिखिए।
3. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेख की रचना किसने की थी ?
4. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेखके राजनैतिक महत्व पर लेख लिखिए।
5. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्ति लेख के धार्मिक महत्व पर लेख लिखिए।
6. इलाहाबाद (प्रयाग) प्रशस्तिलेख के आधार पर समुद्रगुप्त के राजनैतिक विस्तार का वर्णन कीजिए।
7. प्रयाग प्रशस्तिलेख के आधार पर समुद्रगुप्त के व्यक्तिगत चरित्र का वर्णन कीजिए।

8. समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति का भारतीय इतिहास के अध्ययन में क्या महत्व है ?

9. समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति के आधार पर भारत के तात्कालिक राजनैतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

10. समुद्रगुप्त के प्रयागप्रशस्ति के आधार पर गुप्तवंश के इतिहास का वर्णन कीजिए।

छायाप्रति

मौर्य कालीन ब्राह्मी का स्वरूप

अ 𑀅	आ 𑀆	इ 𑀇	ई 𑀈	उ 𑀉	ऊ 𑀊
ए 𑀏	ऐ 𑀐	ओ 𑀑	औ 𑀒		

क 𑀓	ख 𑀔	ग 𑀕	घ 𑀖	ङ 𑀗
च 𑀘	छ 𑀙	ज 𑀚	झ 𑀛	ञ 𑀜
ट 𑀝	ठ 𑀞	ड 𑀟	ढ 𑀠	ण 𑀡
त 𑀢	थ 𑀣	द 𑀤	ध 𑀥	न 𑀦
प 𑀧	फ 𑀨	ब 𑀩	भ 𑀪	म 𑀫
य 𑀬	र 𑀭	ल 𑀮	व 𑀯	
श 𑀰	ष 𑀱	स 𑀲	ह 𑀳	

	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
अ	𑀓	𑀔	𑀕	𑀖	𑀗	𑀘	𑀙	𑀚	𑀛	𑀜	𑀝	𑀞	𑀟	𑀠	𑀡
आ	𑀓𑀸	𑀔𑀸	𑀕𑀸	𑀖𑀸	𑀗𑀸	𑀘𑀸	𑀙𑀸	𑀚𑀸	𑀛𑀸	𑀜𑀸	𑀝𑀸	𑀞𑀸	𑀟𑀸	𑀠𑀸	𑀡𑀸
इ	𑀓𑀺	𑀔𑀺	𑀕𑀺	𑀖𑀺	𑀗𑀺	𑀘𑀺	𑀙𑀺	𑀚𑀺	𑀛𑀺	𑀜𑀺	𑀝𑀺	𑀞𑀺	𑀟𑀺	𑀠𑀺	𑀡𑀺
ई	𑀓𑀻	𑀔𑀻	𑀕𑀻	𑀖𑀻	𑀗𑀻	𑀘𑀻	𑀙𑀻	𑀚𑀻	𑀛𑀻	𑀜𑀻	𑀝𑀻	𑀞𑀻	𑀟𑀻	𑀠𑀻	𑀡𑀻
उ	𑀓𑀼	𑀔𑀼	𑀕𑀼	𑀖𑀼	𑀗𑀼	𑀘𑀼	𑀙𑀼	𑀚𑀼	𑀛𑀼	𑀜𑀼	𑀝𑀼	𑀞𑀼	𑀟𑀼	𑀠𑀼	𑀡𑀼
ऊ	𑀓𑀽	𑀔𑀽	𑀕𑀽	𑀖𑀽	𑀗𑀽	𑀘𑀽	𑀙𑀽	𑀚𑀽	𑀛𑀽	𑀜𑀽	𑀝𑀽	𑀞𑀽	𑀟𑀽	𑀠𑀽	𑀡𑀽
ए	𑀓𑁂	𑀔𑁂	𑀕𑁂	𑀖𑁂	𑀗𑁂	𑀘𑁂	𑀙𑁂	𑀚𑁂	𑀛𑁂	𑀜𑁂	𑀝𑁂	𑀞𑁂	𑀟𑁂	𑀠𑁂	𑀡𑁂
ओ	𑀓𑁄	𑀔𑁄	𑀕𑁄	𑀖𑁄	𑀗𑁄	𑀘𑁄	𑀙𑁄	𑀚𑁄	𑀛𑁄	𑀜𑁄	𑀝𑁄	𑀞𑁄	𑀟𑁄	𑀠𑁄	𑀡𑁄

	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
अ																		
आ																		
इ																		
ई																		
उ																		
ऊ																		
ए																		
ओ																		

कुषाणकालीन ब्राह्मी

अ आ इ उ

ए ओ औ

क ख ग घ ङ

च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

य र ल व

श ष स ह

गुप्त ब्राह्मी

ब्राह्मी के विकासक्रम

	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	न	त	थ	द	ध	न
अशोक	+	?	∧	?	⊏	?	?	⊟	?	?	⊂	○	?	?	I	⅄	⊙	?	D	⊥
गिरनार	?	?	∩	?	⊏	?	?	⊟	?	?	⊂	○	?	?	I	?	⊙	?	D	⊥
कुषाण	?	?	∩	?	⊏	?	?	⊟	?	?	⊂	○	?	?	⊥	?	⊙	?	⊏	⊥
गुजरात	?	?	⊓	?	⊏	?	?	⊟	?	?	⊂	○	?	?	?	?	⊙	?	⊏	?
गुप्ता	?	?	?	?	⊏	?	?	⊟	?	?	⊂	○	?	?	?	?	⊙	?	⊏	?

	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
अशोक	?	?	□	?	?	?	?	?	?	?	?	?	?
गिरनार	?	?	□	?	?	?	?	?	?	?	?	?	?
कुषाण	?	?	□	?	?	?	?	?	?	?	?	?	?
गुजरात	?	?	?	?	?	?	?	?	?	?	?	?	?
गुप्ता	?	?	□	?	?	?	?	?	?	?	?	?	?

MODIFICATIONS OF THE SANSKRIT ALPHABET FROM 543 B.C. TO 1200 A.D.

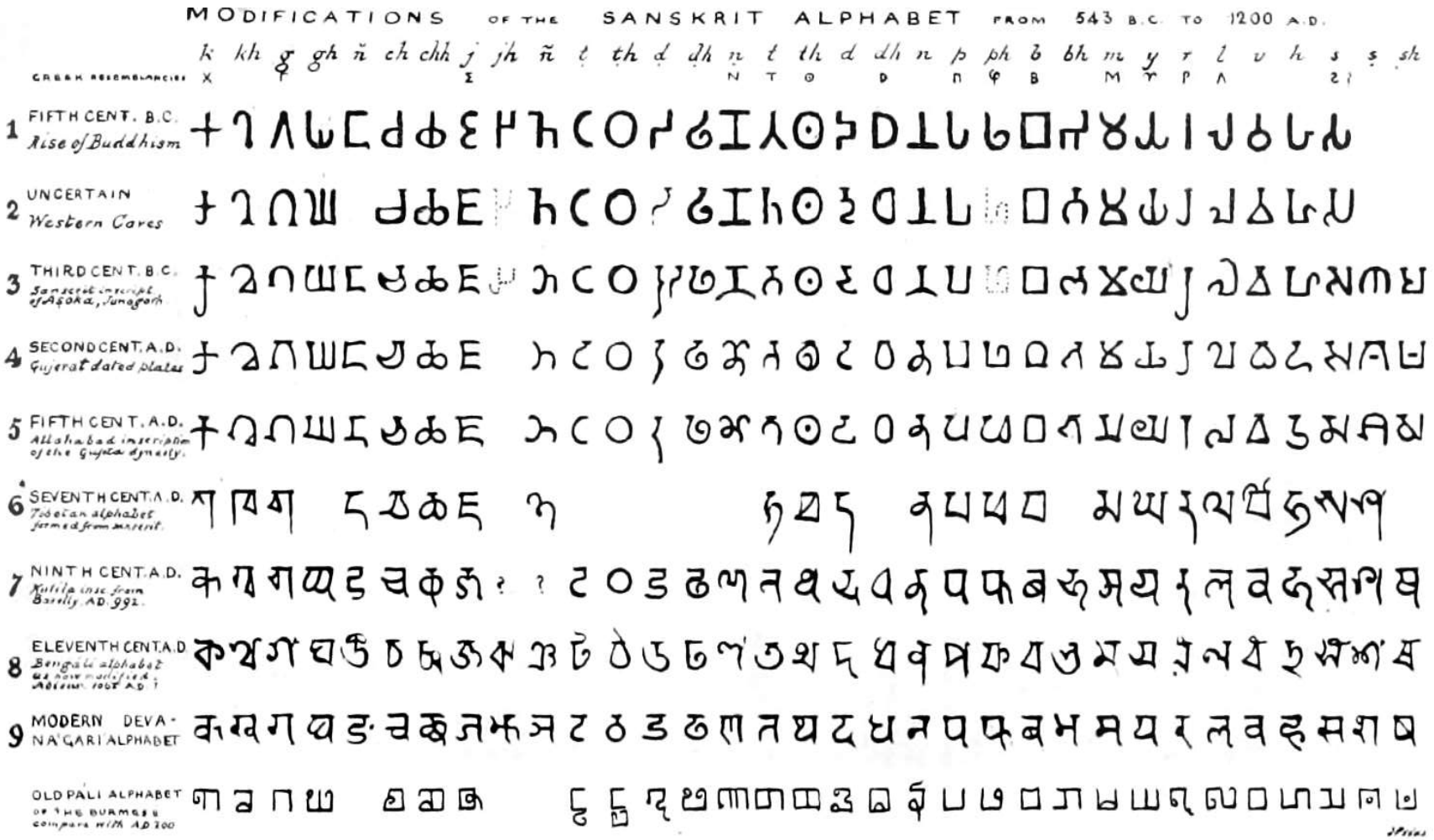

खरोष्ठी

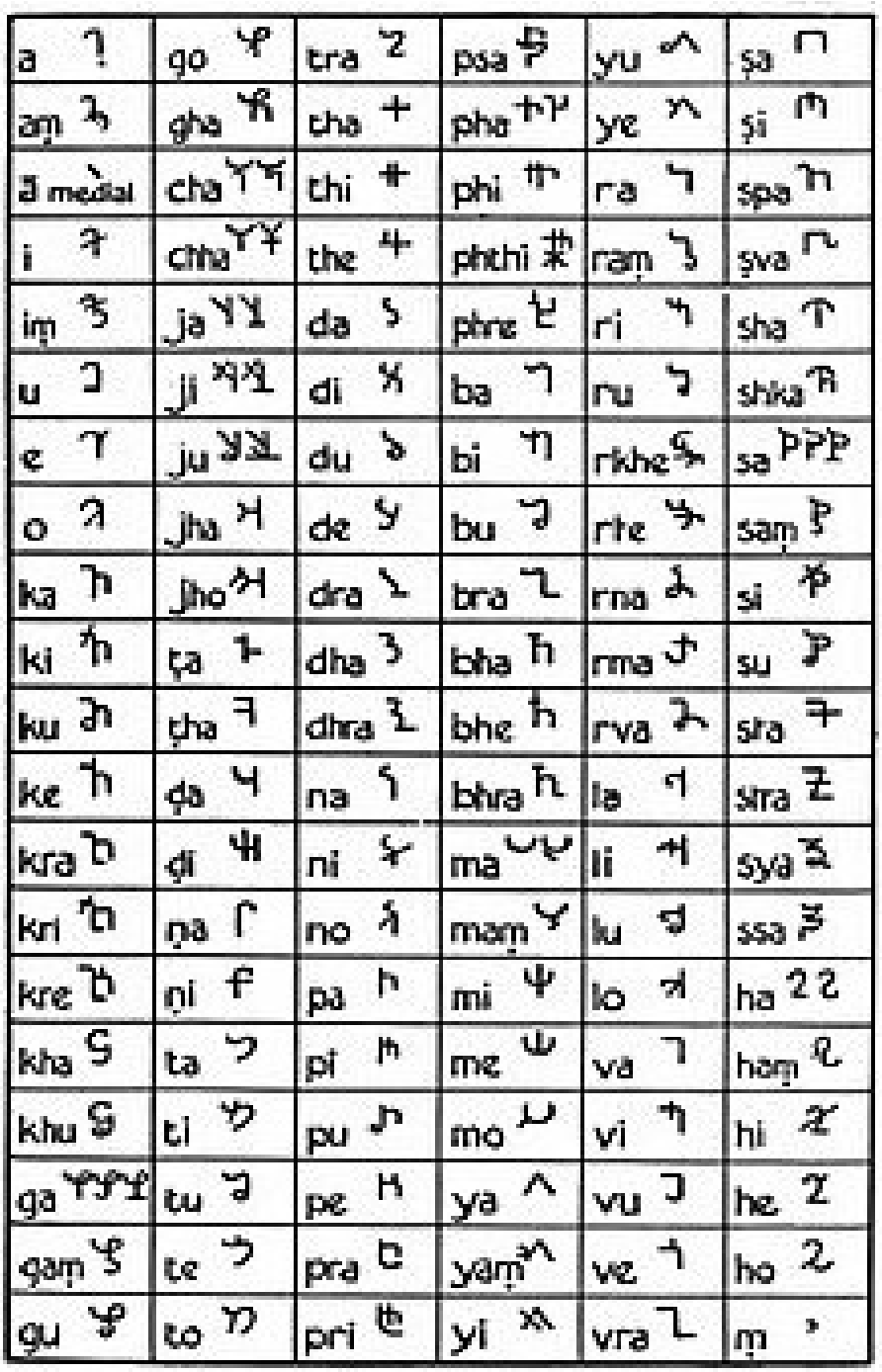

a	go	tra	psa	yu	ṣa
aṃ	gha	tha	pha	ye	ṣi
ā medial	cha	thi	phi	ra	ṣpa
i	chha	the	phthi	raṃ	ṣva
iṃ	ja	da	phre	ri	sha
u	ji	di	ba	ru	shka
e	ju	du	bi	rkhe	sa
o	jha	de	bu	rte	saṃ
ka	jho	dra	bra	rna	si
ki	ṭa	dha	bha	rma	su
ku	ṭha	dhra	bhe	rva	sra
ke	ḍa	na	bhra	la	skra
kra	ḍi	ni	ma	li	sya
kri	ṇa	no	maṃ	lu	ssa
kre	ṇi	pa	mi	lo	ha
kha	ta	pi	me	va	haṃ
khu	ti	pu	mo	vi	hi
ga	tu	pe	ya	vu	he
gaṃ	te	pra	yaṃ	ve	ho
gu	to	pri	yi	vra	ṃ

KHAROṢṬHĪ LETTERS ON GRAECO-INDIAN COINS

अशोक का लघु स्तम्भलेख (रुम्मनदेई)

RUMMINDEI PILLAR-INSCRIPTION

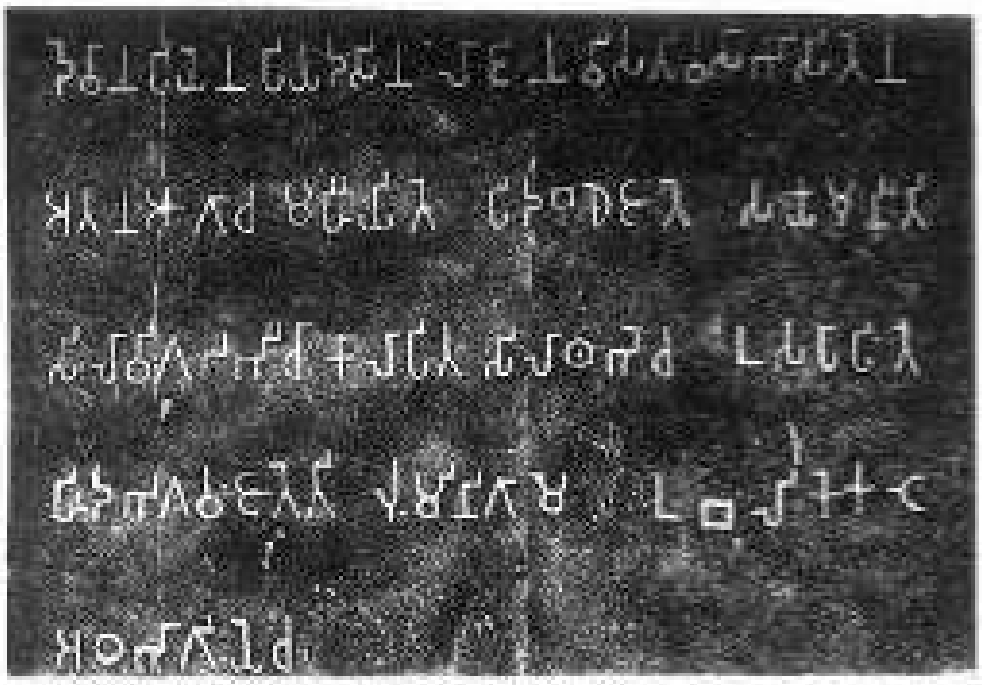

पिपरहवा बौद्धपत्र अभिलेख

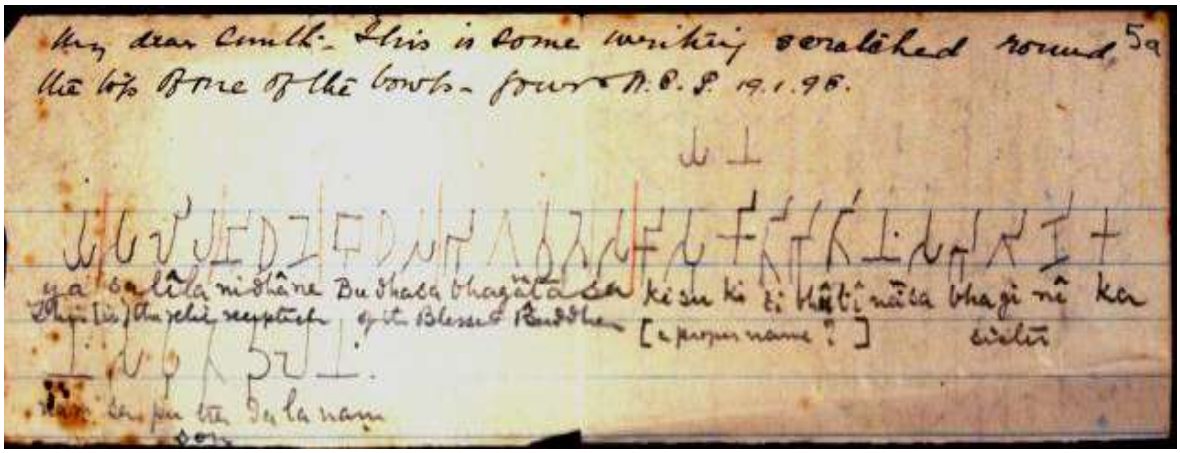

सौहगौरा अभिलेख

हेलियोडोरस गरुड़ स्तम्भ अभिलेख

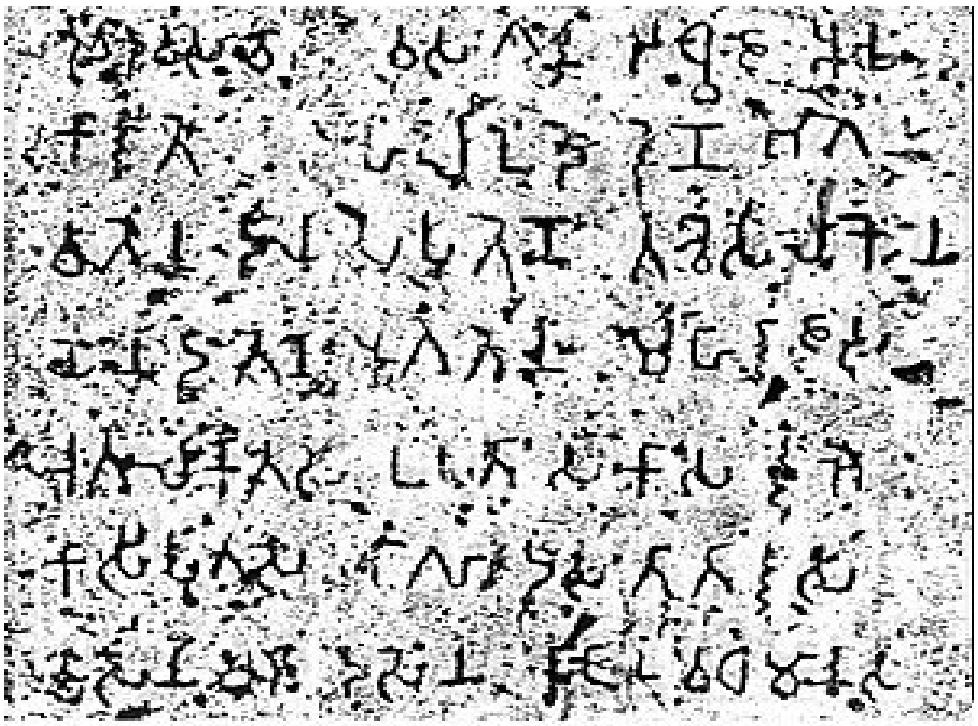

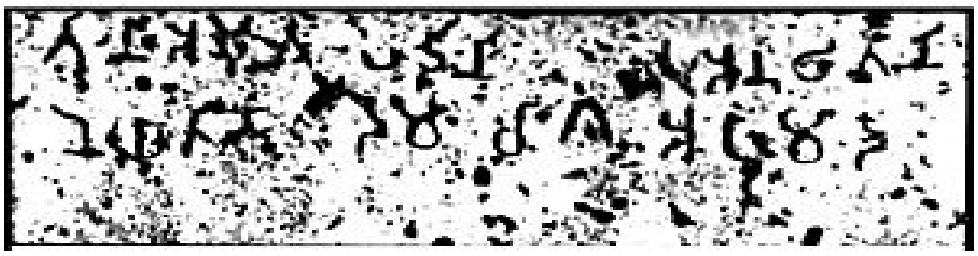

खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख

समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भलेख (प्रयाग प्रशस्ति)

छायाचित्र स्रोत

1. अशोक लघु स्तम्भलेख (रुम्मनदेई) – Inscriptions ofAsoka. New Edition by E. Hultzsch, p164
2. पिपरहवा बौद्धपात्र अभिलेख – Handwritten note by discoverer W.C. Péppe to VincentArthur SmithAbout the inscription, 1898m Wikipedia- The PiprāhwāStūpa, Containing Relics of Buddha, Willia-m Claxton Peppé, The Journal of the RoyalAsia-tic Society of Great BritainAnd Ireland, (Jul., 1898), pp. 573-588 (18 pages)
3. सौहगौरा अभिलेख – Proceedings of theAsia-tic Society of Bengal] 1885] p84
4. हेलियोडोरस स्तम्भ लेख – India-n Epigraphy:A Guide to the Study of Inscriptions in Sanskrit, Prakrit,And the other Indo-Aryan Languages, p. 265–267
5. खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख– Hathigumpha inscription of King KhāravelaAt Udayagiri HillsAs first drawn in "Corpus InscriptionumIndicarum, VolumeI: Inscriptions ofAsoka byAlexander Cunningham", 1827
6. समुद्रगुप्त का इलाहबाद स्तम्भ लेख (प्रयाग प्रशस्ति) – Inscription by Gupta king Samudragupta Photograph by Fleet, John Faithfull (1847 – 21 February 1917), wikipedia-

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013
www.uprtou.ac.in
टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333